

शिक्षा विभाग राजस्थान
के लिए
आधुनिक प्रकाशन, बीकानेर
द्वारा प्रकाशित



भीगी छाँ रेत

सपादन चित्रा मुदगल

© शिक्षा विभाग राजस्थान बीकानेर

प्रकाशक

शिक्षा विभाग राजस्थान के लिए

आधुनिक प्रकाशन

दाऊजी मंदिर, बीकानेर 334001

जावरण किनमिन

मूल्य इक्कीस रुपये मात्र

संस्करण प्रथम, 5 सितम्बर 1989

मुद्रक एस० एन० प्रिंटर्स,

नवीन शाहदरा दिल्ली 110032

BHIGI HUI RET

(Short Story)

Edited by Chitra Mudgal

Price Rs 21/

आमुख

राजस्थान के शिक्षक साहित्यकारों की सजन-यात्रा को शुरू हुए 22 वर्ष बीत चुके हैं। 1967 में शिक्षक दिवस प्रकाशनों की जिस शृंखला का सूत्रपात किया गया था, उसमें अब तक 106 पुस्तकें सामने आ चुकी हैं। सजन का शतक तो हमने गत वर्ष ही पार कर लिया था, जब हमारी यात्रा दूसरे शतक की ओर है—
उमबद्ध, गतिमान और पुन्ता। सजन-यात्रा की इस सफलता पर मैं राजस्थान के शिक्षक साहित्यकारों को बधाई देता हूँ। मुझे विश्वास है कि अपनी रचनात्मक प्रतिभा और मौलिक ऊर्जा से वे पीढ़ी को सस्कारित करने और मानव प्रवृत्ति को परिष्कृत करने में कामयाब होंगे।

शिक्षक साहित्यकारों की इन कृतियों को राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता और सराहना मिली है। अपने प्रकाशनों में हमने विविधता और गुणवत्ता दोनों पर ही ध्यान दिया है तथा देश के प्रतिष्ठित साहित्यकारों से उनका सम्पादन करवाकर उन्हें हर दृष्टि से स्तरीय बनाने का प्रयास भी किया है। जाहिर है कि उच्चकोटि के सम्पादन के कारण ऐसी रचनाएँ ही निखर कर सामने आई हैं जो युग की रचनात्मक संवदना का साथ-साथ अभिव्यक्ति दे सकें।

साहित्य-लेखन अपने आप में एक अनुष्ठान है। यह मध्य तक पहुँचने की मनुष्य की लतक का एक ऐसा यन्त्र है जिसमें धरन होने वाले 'अक्षर' की तथा चिरन्तन 'शब्द' की पूजा होती है। शब्द की यह अनुगूँज ही युग की अनुगूँज है। वर्तमान को सस्कारित करके एक आस्थावान उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करना ही इसका लक्ष्य है। मुझे आशा है कि हमारे शिक्षक साहित्यकार इस कसौटी पर खरे उतरेंगे।

गत वर्ष के आमुख में मैंने एक मुझाव दिया था। मैंने कहा था कि "साहित्य की सभी विधाओं में गति के साथ लिखने वाले कलम के धनी अध्यापकगण शिक्षक दिवस योजना के तहत प्रकाशित होने वाली पाँच पुस्तिका की अगली कड़ी को इतना स्तरीय बनायें कि उनकी रचनाओं पर राज्य के विद्यालयों में और साहित्य-संस्थाओं में गोष्ठियाँ आयोजित की जाएँ। इसके लिए वे अभी से प्रयत्न में लग जायें ताकि अगले वर्ष के प्रकाशनों में उनकी वर्ष के दौरान लिखी गई प्रतिनिधि रचनाएँ ही प्रकाश में आयें।" आशा है इस वर्ष की पाँच पुस्तिकाएँ इस कसौटी पर खरी उतरेंगी तथा साहित्यिक चर्चा का एक ऐसा माहौल बनगा जो लेखकों और पाठकों के बीच में एक साथ-साथ सवाद सिद्ध हो सकेगा।

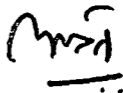
एक बात और। दिशाकल्प (जुलाई 1989) में मैं पुली विताव के शक्ति उपहार की चर्चा की थी। पुली विताव स जाण्य है अध्ययन का वह मुक्त वातावरण, जो अकादमिक घुटन का दूर कर, शक्ति ऊर्ध को मिटाय और बौद्धिक बोधिलता को हल्का करे। पुली विताव वह है जिससे दूसरी वितायें भी धुलें, जो पढ़ने पढ़ान का एक मुक्त वातावरण बनाये और चिन्ता व सजन का नय जायाम दे। इसने मयना विनास हागा—पढ़ने वाला का भी और पढ़ान वाला न भी। अध्ययन केवल ग्रेड और इन्ट्रीमेण्ट के तग गलियारो तक सीमित नहीं रहगा वरन् सरस्वता (ज्ञान जिणासा, रचनात्मक सजन) व प्रति समर्पित हागा। साहित्य भी तो इसी का एक रूप है। एक अनौपचारिक शिक्षण है यह। जीवन की विताव से बटोर हुए अनुभव जब गहरी सबदनाजा से जुडते हैं ता अच्छे साहित्य का जम होता है। मुझे विश्वास है कि गुरुजन खुली विताव के खुले चिन्तन के आधार पर जा सजन नरेग वह स्थायी महत्व का हागा और पीढी को सस्वारित कर मवेगा। मुझे उसी दिन की प्रतीशा है।

इस वप प्रकाशित होन वाली पाच पुस्तकें हैं—

- 1 माती मूये समुद्र का (विता सक्लन) स० कताश वाजपेयी।
- 2 अनुभव के स्फुलिंग (हिन्दी विविधा) म० गापाल राय।
- 3 पाचाग्नित (राजस्थानी विविधा) स० नानूराम सस्वर्ता।
- 4 भीगी हुइ रत (कहानी सक्लन) स० चित्रा मुग्गल।
- 5 पख पख रग (बाल साहित्य) स० अनंत कुशवाहा।

मैं इम अवसर पर अतिथि सम्पादको, रचनाशील अध्यापका, प्रकाशको एक उन सभी लोगो को धयवाद देता हू जो इस अनुष्ठान म किगी न किसी प्रकार से भागीदार वन है। जिन लेखन की रचनाए इस वप प्रकाशन मे नहीं जा सकी है व निराश न हा, बल्कि अपने लखन की धार को और अधिक तराशन का प्रयत्न करें।

शिक्षक दिवस, 1989



(ललित के पवार)

निदेशक,

प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा, राजस्थान
धीकानर।

ऐसी हो हमारी कहानिया

भूमिका

आज, जिस समय और परिवेश में हम जी रहे हैं वहाँ नये लेखन की भूमिका, दायित्व और प्रभाव पर चर्चा करना जितना महत्वपूर्ण है उतना ही अनिवाय भी। यह कहन के पीछे मेरा यह मतव्यक्तई नहीं है कि हम महज नये लेखन को तरजीह दे। दरअसल, मैं कहना यह चाहती हूँ कि समय के साथ-साथ विकासमान हमारी सेसिबिलिटी अपन समय, समाज, राजनीति और जीवन को प्रभावित करने वाली शक्तियों को जितनी बारीकी से पकड़ने में समय है, उसे अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए। परिवर्तन की रफ्तार जितनी तेजी से बढ़ी है, उसी तेजी से बड़े परिवार की सुरक्षा भी हमारे दायरे से बाहर चली गई। देखने में, ऊपरी तौर पर यह एक ऐसा सदन कहा जा सकता है जो बेहद सामान्य है, किंतु इससे जड़े प्रभाव, सुखद और दुःखद अनुभूतियाँ जितनी तेजी से जीवन पर नजर आती हैं वही आज के रचनाकार की जमीन भी उतनी ही तेजी से बनती चली जाती है। ऐसे में लेखन का जन-जीवन से जुड़ना सहज ही स्वाभाविक हो जाता है। क्योंकि छोटे परिवार में बाहरी जीवन और अदरनी जीवन की दीवार बहुत कमजोर होती है, बाहर हो रहे परिवर्तन तेजी से हमें प्रभावित करते रहे हैं तब दो ही सूरतें रह जाती हैं— हम इन परिवर्तनों को स्वीकार करें या अस्वीकार। यानी, नये समझ, चेतना और विचार की गति हमें भाग्य है, तो हम उसके प्रभावों को ग्रहण करना होगा। किंतु यह सब, इतनी सहज गति से होने वाली कोई सामान्य क्रिया नहीं है कि बाहर कुछ हुआ और हमने उसकी उपयोगिता को दखत हुए, उसे स्वीकार या अस्वीकार

कर दिया ।

नय लेखिका को इस सदम में नई सिसिलिटी, यानी विवसित होती हुई कला चेतना अपनी कलात्मक समझ का इस्तेमाल करते हुए ही साहित्य बनाना होगा । इस तरह की कुछ कहानियाँ इस दृष्टि में जिम्मेदार लेखन का प्रतिनिधित्व करती नजर आती हैं ।

आज जबकि पत्रकारिता बहुत तेजी से अपना महत्वपूर्ण प्रभाव बना रही है हमें देखना होगा कि रचना के संसार और पत्रकारिता के बीच अंतर कहाँ होता है । राष्ट्रीय जीवन का दखन का जो नजरिया पत्रकारिता का है उससे रचनात्मक लेखन के नजरिये को कहाँ अलग किया जा सकता है । मान लें, हमें कथा या कविता का तत्व पत्रकारिता के जरिये मिलता है और हम उससे अनुभूत यथायथ के जरिये ह्यूमन कंसन की कोई रचना कर लेते हैं तो मेरी समझ में यह एक बड़ी बात होगी ।

कहानी को माध्यम बनाकर चर्चा की जाय तो बहुत सीधे और साफ शब्दों में कहा जा सकता है कि आत्म-केंद्रित या जाह्नवारा जिया भोगा है उमी पर आधारित लेखन अत्र सामयिक नहीं कहा जा सकता । व्यक्ति के मानसिक जगत की खोज करने वाली श्रेष्ठ कहानियाँ बरिष्ठ कथाकार बहुत पहन ही कर चुके हैं । हमारी पीढ़ी के रचनाकार की चिन्ताएँ मनोवैज्ञानिक संसार की खोज बीन से उतनी नहीं जुड़ी हैं जितनी बाहरी जगत की परिवर्तन-वादी शक्तियों और उनके प्रभाव से । यहाँ हम यह स्वीकार करते हुए चलना होगा कि रचनाकार की अति रिक्त संवेदनशीलता ही उन नूतन चिन्ताओं में जुड़ने पर मजबूर करती है । यहाँ आकर नय रचनाकार का राष्ट्रीय चेतना के सही स्वरूप और उसकी आधारभूमि में परिचित होना जरूरी हो जाता है ।

आज की नय रचनाकार ने जहाँ मोहभंग को आधार बनाकर रचनाएँ प्रस्तुत कीं, वहाँ उनकी वह विशिष्ट मानसिकता काम कर रही थी जिससे तहत सभी यह भाँचा गया था कि हम अंधेरे से बाहर उजाले में साँस लेते बहुरहास, आठवें दशक तक आते आते हमने समय से बहुत कुछ सीखा । हमने जाना कि आजादी का सही अर्थ क्या है ? भारतीय नागरिकों के जहन में अधिकार और

वक्तव्यो की तस्वीर क्या है ? वे कौन-सी शक्तिया है जो हम एक होने से रोकती है । इस महान्देश की विविधधर्मी जनता की आत्मा को एतता के भ्रम में बाधने वाले पारदर्शी धागों का तोड़ने की साजिश बार-बार क्या की जाती है ? हम जानते हैं कि सामान्यत व्यक्ति कभी सांप्रदायिक नहीं होता लेकिन इस्तेमाल करने वाली शक्तिया उस ही अपना कच्चा माल बनाकर लडाती रहती हैं, आखिर क्यों ? प्रजातंत्र और आजादी तभी साथव हो पाती हैं जब हम अपना जीवन स्तर उठा सके ।

आग बढ़ने का ध्रम दिमाग में बना रहे, और हम अपनी जगह छोड़े होकर कदम-ताल करत रहे, तो अपनी अस्मिता और चेतना को कुद होन में अधिक समय नहीं लगेगा हम उपलब्ध यथाथ की गरिमामय झाकी कभी इतिहास तो कभी वतमान में देखत रहे जायगे और अपक्षित यथाथ का सपना हमारी आंखों में दम तोड़ देगा पर क्या सचमुच हो पाएगा ऐसा ! शायद नहीं, क्याकि हमारे शिक्षक और रचनाकार की आंख बराबर व्यापक जनसमुदाय की जोर लगी है उसकी चिन्ताए, समस्याए और सपने जकेले नहीं है । अब जादमी अकेलपन की अघेरी गुफाओं में कद नहीं है । इसकी वजह यही है कि हम आजादी के मूलभूत चरित्र को पहचानन की दिशा में कदम बढ़ा रहे है । यह हमारी राष्ट्रीय चेतना का मूल बिंदु है । उसे समझाने की दिशा में पहलकदमी शिक्षक ही कर सकते है ।

हमारी कलात्मक समझ पनी हो रही है और इसी के साथ साथ हमारे युवा रचनाकार अपनी रचनाएं दे रहे हैं और हम सामाजिक साथकता के साहित्य की जमीन भी बनती हुई देख रहे है । आज का रचनाकार महज लिखने के लिए लिख रहा हो, ऐसा नहीं है । ये कहानिया प्रमाण है क्याकि अपनी विशिष्ट जीवन दृष्टि और पण्यिक विचारधारा यहा लेखन का आधार है । व्यक्ति से गुरु होकर वह समूह तक समय मदभ का लेखा जाखा प्रस्तुत करता है । उसका विश्वास रोमांटिक प्राति में कम और आर्थिक शोषण से मुक्ति में अधिक है । त्रासद यथाथ से सबद्ध आदमी की जट्टेजेहद हो या मानवीय सबधों के बीच बडता हुआ फासला, हमारा रचनाकार निदगी के व्यापक अनुभवों को रचनात्मक अभिव्यक्ति दे रहा है ।

इस संग्रह की अधिकांश कहानिया इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं

वि अनुभव की ताजगी और अभिव्यक्ति के बच्चेपन की सौधी गंध इनमें बराबर
 दिखाई देती है। कही परिस्थितियाँ सँजून की हिम्मत सँजोई गई हँ तो कही
 टूटता हुआ मनुष्य भाँ मौजूद हँ। रिक्त होती जा रही मवदना हँ या गरीबी की
 मार सँ टूटता आदमी। समय की रफ्तार के साथ जाग जाता इसान हँ या खुद में
 परिवर्तन न कर पान के कारण पीछे छूटना इमान् अविवाहिता की समस्या हँ
 या नष्ट हान जा रहँ पारिवारिक सुखों का दाम्स्तान, सांप्रदायिक मद्भाव की कमी
 को रेखांकित करना हँ या अपनी मिट्टी में तगाव को ये कहानियाँ कुल मिलाकर
 हमारे समाज की समूची तस्वीर प्रस्तुत कर सकी हँ। यह दीगर बात हँ कि कुछेक
 रचनाकारों को छोड़कर शेष प्रायः रचनाकार बनने की प्रक्रिया सँ गुजरते प्रतीत
 हँ। और एम म कहानी, जाहिर हँ कही अधिक विस्तार लेती प्रतीत हाती हँ
 ना कही उसका कहानीपन फिमत जाता प्रतीत होता हँ, बावजूद इसके यह आभास
 बराबर बना रहता हँ कि हम जिम विराट रचना सँसार से हाँकर गुजर रहे हँ वह
 बेहद इमानदारी और मासूमियत से मरा हँ। इसकी सीमाओं म जीवन कँ प्रायः
 मभी रूप और रंग दख जा सकने हँ। कही विषय बहुत भाँकपक हँ ताँ निवाह
 कमजोर रह गया हँ और कही घटनाओं और विवरणों को ज्याँ काँत्या रज्जु दन से
 कथात्मकता पिछड़ गई हँ। एक ललक जो मवज देपन म जायी हँ वह हँ—बेहतर
 इमान बनने की तरफ। और इस ललक के ममक्ष कुछ भी छोडन काँ तैयार होना
 एक आँश स्थिति हँ।

शिवाय-नागत में प्रायी यँ कहानियाँ यदि सामाजिक समस्याओं को आधार
 बनाकर चलती हँ ताँ यह जनायाम नही हुआ हँ। शायद यही इन रचनाकारों से
 अपेक्षा भी हाती हँ। हमारे इन रचनाकारों की ममझना हाँगा कि सामाजिक परि-
 वतन की प्रक्रिया म अहम भूमिका अदा करन कँ त्रिए हम चीजाँ की जडाँ तन जाना
 हाँगा। जीवन कँ मत्व की गहरी पहचान कँ साथ-साथ अपन अभिव्यक्ति-माध्यमों
 काँ तरागना हाँगा। अपने मूल्यों की सँरक्ष के लिए अपनी आवाज काँ और अधिक
 बखनदार बान के साथ-साथ उमम नयापन ममाना हाँगा।

आँत्र जब हम मकट कँ दौर में गुजर रहे हँ। पूँट डालन याँ हर बनाँ ताँ
 सँगाँ ५५ रहा हँ। साम्प्रदायिक दगाँ काँ बहुशी और शोषनाक अजाम जानन हुए
 भाँ हम उँद हाँ हुए जब-तब त्यज रहे हँ। श्रेयीयता की सँवीण मानसिक्ता काँ

परिणाम हम पिछले कई सालों से अपन ही दश में बहुत करीब में देख रहे हैं। जातिगत संघर्ष, भेद भाव और प्रादेशिक विवादों के रहते हमारी राष्ट्रीय चेतना को उभारने की दिशा मिलनी ही चाहिए। जानि सदेह नयी लेखनी से ही संभव है मुझे किसी कवि की वह पंक्ति या स्मरण नहीं हैं। किन्तु उनका अर्थ है—“आओ, हम उन परदा को उठा दें जो हम एक-दूसरे से अलग करत है। आओ हम उनको मिला दें जो बिछुड़ गये हैं। हमारे दिल की बस्ती लय समय से वीरान पड़ी है, आओ, इस दश में एक नया शिवालय बना दें। शक्ति और शांति भवता के गीता में है और इस धरती के निवासियों की मुक्ति प्रेम और सद्भाव से ही हो सकेगी।”

उम्मीद करनी चाहिए कि ये रचनाकार आगे चलकर और बेहतर रचनाएँ देंगे।



(चित्रा मुद्गल)

300-डी, पॉकेट-2
मयूर विहार, फेज 1
दिल्ली 110091

अनुक्रम

टूटते क्षणों का बोध	17	सावित्री परमार
मुक्ति पथ	28	माधव नागदा
एक जोर द्रोणाचार्य	35	शीताशु भारद्वाज
अनवकाश	42	मुरलीधर शर्मा 'विमल'
अपनी मिट्टी की गंध	44	अरुनी रावट स
इस धरती की सतान	50	राधाकिशन चादवानी
चढ़ते दिन की गिरफ्त	56	पुष्पतता बश्यप
परिवर्तन	62	सुदर्शन राघव
पिहो-सी लडकी ने सोचा	68	रूपा पारीक
कफनचोर	77	सत्य शकुन
पेंडुलम	83	दीनदयाल शर्मा
चारपाई	89	गोपाल प्रसाद मुद्गल
धुधलाई पहचान	92	सलीम खा फरीद
नियति	96	श्याम मनोहर व्यास
अकाल के बाद	100	रामकुमार ओझा
नयी सुबह	105	कमर मवाडी
जिम्मेदारी का बोध	109	श्यामसुंदर तिवाडी
अतदहन	112	जगदीश प्रसाद सनी
शालिनी	120	नदलाल परसरामाणी
त्यागपत्र	133	कमलेश शर्मा
बैसाखिया	139	पूनाराम कमाणी

एक अदद पुत्र	144	घनराज पवार
अनुत्तरित प्रश्न	153	रामनिवास शर्मा
डा० डिसूजा	157	दशरथ कुमार शर्मा
नसीहत	160	रवि पुरोहित
ग्रहनाता चाद	167	श्यामसुन्दर भारती
लच बावस	173	प्रमिला शर्मा

भीगी हुई रेत

टूटते क्षणों का बोध

सावित्री परमार

चपा भोजी के पाव आज जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। पूरी देह तितली के रंगीन पखा-सी उड़ी जा रही थी। जो घर उनको जड़, मनहूस और पराया-सा लगता था, वही जैसे दूध में नहाकर दप्प से खिल उठा था। हर काम में अतिरिक्त उत्साह जाग उठा था।

आज आगन में खेलन बच्चे और बड़ा क ऊंचे बाल भी प्यारे लग रहे थे। खुद भी हरेक बातचीत, हसी दिल्लगी में जागे बड़-बड़कर हिस्सा ले रही थी। आगन, घर, दीवारी में मजीरे-से बज उठे थे। रमोई का पूरा काम उनके हाथ में हर दिन ही रहता था, लेकिन आज का मामला कुछ और था। हर चीज में मन धोले डाल रही थी। बरमात में धुले आसमान में फली चमकती धूप-सी करारी चौध उनकी आखा में लहरा उठी थी।

पूरे आठ महीना के बाद बाबू रामनाथ एक हफ्ते की छुट्टी पर घर आये थे। छुट्टी पर टगे कपड़ा में और बरामदे में उतरे जूतों में जैसे पूरे घर में चपा भोजी के लिए अपनी अलग दुनिया बसा दी थी। मुर्दानी बठक से उठने वाली उनकी आवाज ने उनके मन में पूरा बसत उतार दिया था। कब सुबह होती कब दोपहर, साचने-समझने का हिसाब रहा क्या? कहा मिली सास लेने की फुसत? पूरा हफ्ता हवा में उड़ते तिनके-सा कब बह गया, वे नहीं जान पाईं?

देही फिर लस्त पस्त-सी हो उठी। उदासी की मुर्दानी परत पुतन लगी। उनका क्या, यो ही बीराई रहती। वह तो धोबन आकर बोली कि—

“कपड़ा चार दिन में ही तैयार करके जल्दी भागी हूँ। बाबू कल जायेंगे न। आखिर बक्स बिस्तारा जमात वक्त सामान सामने नहीं हो, तो कैसी मुसीबत हो जाती है। लो गिन लो ।’

परन्तु एक-एक कपड़ा गिनते हुए ही काप उठी थी रुई की फुई से अच्छे उड़े दिन? गाड़ी भरा बुनबा होते हुए भी सारी उमर इसी चौबारे, आगन की

ढरौ-टुनी हवली म काट डाली ।

खुद ता बाबू बाहर नौकरी करन ग्ह और बुनब की गाडी छीचत रह । पसा पैमा बमा बचानर घर की इट-इट पर लगान रह । भाई-बहना के शादी-ब्याह, मौत नारज, पढाई-नौकरी, क्या नही बचा, जो मा-बाप के इशारे पर करत नहा रहे । जब से ब्याह कर इस घर में आइ, यही उमर गलाती रही । एक दिन भी चून्हे चक्की से पिण्ड नही छूटा । ज्यादा-से-ज्यादा पढ़ह-बीस दिन मायबे म घूम फिर जाइ । इधर तो डेढ़ साल म बहा भी जाना नही हुआ । मा-बाप की आखें मुदत ही भाई-भौजाइया के तवर गल म नीचे नही उतरें, ता चुप्पी छीच ती खुद । करती भी क्या ?

दोपहरी मर दिमाग म जाधी-सी गहराती रही । एक हूब भी मन का बाघ लेती कि बाबू कल चले जायेंग, फिर ? अचानक एक हिलार-मी उछली कि क्या न इस बार बह भी बाबू के साथ चल दे ?

उनकी नौकरी का राज भुगत आय । वैस भी नौकरी तिनारे पर है । मुशकल स पाच छ साल बच हैं । तब रिटायर हान म क्या न चार दिन बह भी यहा से निकल शहर म मौज कर आय ? कोई पहाड तो टूट नही पडेगा । कसा अच्छा लगगा । दो ही का काम तितना भी हसो, जोर से बोलो, कुछ भी याओ, घूमा, वायम्बाप दखा, तबीयत म सुबह जागो मन हां काम करो, नही आराम करो । तरस गइ इस सपन को पूरा करने के लिए । सोचत-सोचत कच्ची हिलोर पक्क इगदे का रूप लेन लगी । एक हठीली जिद्द अमर-बेल की तरह दिल दिमाग को कसन लगी ।

फिर उमर भी कौन-मी कस्तूरी गध रह गई है कि सी बातें बनेंगी ? हाथ म केवल आज की साझ है । अतिम रात है जो कुछ करना पूछना है, बह इन्ही क्षणा के बीच है । मन का पाखी डैने खोल उड चला । इसी ऊहापोह म साथ भी ढल गई ।

रात को बड़े जतन स चौक मे पांठी पर भोजन लगाया । खूब चाब से पास बैठकर खाना खिलाया । मुरादावादी कलई के डिजायनदार लाटे म पानी और फूल पनी गुद नय गिलास म मलाईदार दूध दिया । एक बोन मे देवरानी बठी बठक मे बैठे महमानो के लिए शरबत बना रही थी ।

दानो ननदें भी बही दहरी पर बँठी भाइ को थानी के ध्या क साथ-साथ घर-भीतर की बातें भी बतिया रही थी । मझली देवरानी नल के नीचे बतन साफ करती जा रही थी और बनखिया स जिठानी का जेठ के लिए जरूरत मे ज्यादा दुलार बरसता हुआ भी दख रहो थी । छोटी सामने कोठरी म जरूचा बनी हुई थी ।

भोजन-पानी कच्चे बाबू जी फिर बँठक म पुरया क बीच जा बैठ । थोड़ी देर बाद बाहर के महमान जब उठ गय ता भाइया के साथ आगत मे बिछी घाटा पर

सबको बठाकर खुद तख्त पर अधलेते हो गये। पूरन चाचा और विमन मामा भी आ बैठे।

पाच भाइया का भरा पूरा कुनधा। तीन यही वस्त्रे म लग हुए थे, छोटा बाहर पढता था। सबसे बड़े बाबूजी हैं, हमेशा बाहर नौकरी पर रहे। उही के बल-बूत पर सारे भाई पढे रोजगार बठाये। ब्याह शादी हुई। दो बहने ब्याही। मा बाप का कारज बिया। पिछली साल मा बराबर मौसी की बरसी की। विधवा होकर यही रही, यही मरी, तब श्राद्ध-गुप्प और कहा होता? बहनो के आय दिन खच लगे रहत। त्योहार-बार अलग, भात छोछक अलग। इसलिये इन्ही कुओ-पोखरा को भरने के लिए खुद बाहर मारे-मार जी-पट मुट्ठी मे कसे भागत-दीडत रहे और चपा भौजी यहा हलवान होती रही।

रात गहरी हाती जा रही थी और मर्दों की बाता का अत नही आ रहा था, चपा भौजी के जी मे उठव पटक मची हुई थी। ज्यादा दिन दूर रहने के कारण उनका रोम-राम उनके ऊपर आख कान बना रहता था। होनहार ऐसी रही कि दो बार काख हरी हुई, लेकिन जमीन छूने से पहले ही बच्च ठडे हो गय। फिर तो रामजी की ऐसी जाख फिरी कि हजार देशी-अंग्रेजी इलाज कराय, सब धरे के धरे रह गय। उनका मन भले ही इस छ्याल से दुखी रहा, पर बाबूजी न कोई गिला नही किया, भाग्य से या उनस।

भाइया की औलाद अपनी मान बर चले। इतनी उमर पार करके भी आज बाबूजी के जाग वही नई-नवली दुल्हन की तरह लजीली रहती है। न आख भर दखने की हिम्मत और न मुह भर बोलने का दम। बाबूजी की आवाज-आहट सुनते ही कलेजा धडक उठता है। सारें कण्ठ मे जम उठती है।

घर के पुराने बायदे कानून। बड़े छोटे रिश्ता की हजारो लक्षमण रेखाए। आखा तब आज भी घूघट। दिन म क्या काम बैठने-बतलान का! हसी-ठटठा! राम भजो। इसी कारण तो बाबूजी उनके लिये सबसे बड़ा प्रलोभन बन रह। उनकी देह के स्पर्शों से लेकर कपडा की मामूली सरसराहट तक उनका दम खीच लती थी। आज भी कसी कद बाठी वाल बाबूजी पान खात हुए, मलमल का कढा हुआ कुरता पहन आगन की चादनी में तख्त पर मसनद के सहारे अधलेते उह बड़े अच्छे लग रहे थे।

घाटी म गूजती तहदार आवाज, धीर धीर बोलकर खुलकर हसना, भरे भरे चेहरे पर करीने स कटी हुई मूछे, उठी हुई चुनटदार पलका वाली आख और लम्बी चौडी स्वस्य काया उनकी आखा को, मन को भमेरी बनाय रहती है। सामने भी और लम्ब बिछाह म भी।

वातें चल रही थी। उनके मन म झुझलाहट उभरने लगी। भला कोई बात हुई यह! अरे, आज की रात तो कम से कम या मजलिस न लगात। उनका एक-

एक पत्र उनका साथ पान का प्रतीक्षित हा रहा था, लेकिन उह वहा ध्यान ?

चपा भोजी का यह भी बग भारी दूगग दुख था कि माहम बटोर कर जब भी उहान मन का मीठा गाठे खोनी बाबूजी हमबर टाल गय, या इह बार-बार दुहराय जान पर ब्रह्मलान कि—

'तुम्हार हा मन है। तुम्ही ज्यादा दुखी हा ? अपन को ही नह का दबी तबता मानता हा। मत्रक बीच आन, उठन-बठन है, तो सो निगाहा, मिजाजा को भी दखना पग्यना हाता है कि नही ? फिर सो फिकर। हजार समस्याएँ। हमशा जादमी का मन एक जसा ही बना रहता है क्या ? तुम्हारी नजर के इशारे पर मत्र हाता = फिर भी अग्य काँ वान, हमारा चयन या बजा वान तुम्ह अबरगी, तो मम कम ल लो, कग्य ही नही भी बात की एम बात कि जिससे तुम्हारा जा दुख, वह नही हागा दो घडी मिल है तो उन घटिया को येकार खराब मत करा हमशा जारी बनी क्या भदती हो ?'

ला, मुनो जीर एकदम जमान म निगाली बात। आख भयभीत हिरनी-मी ठमक जानी हवा म मिहर्ती पागरी मी सास वाप उठती आठ नवजात कपाली के पत्रा का तरह खुले थम गह जात कस कहती कि उनके आठो पहर प्राबूजी क इद गिद छाया बन रहन है हरक सपना उही के हाथा गिरवी है। उनकी उमर, उनका जीवन, ससार सब वही हैं। वह जानती है उनकी मजबूरी से, पर अपन मन की विवशता, ललक और हर घडी भीतर उगन वाले शब्दा क अय कहा दूँ ? किसको दिखाने ?

ऐसे ही निमल आवेग पूण क्षणा म उनका सिर जब कभी भी बाबूजी को चौडी, भरी छाती पर टिक जाता या अपनी हथेलिया की अजुरी म उनका मर्दानी गद भरत चेहरा क टिका कर नेह की पागल धुन गुनगुनाकर टकटकी-सी बाध दखन नगती तभी प्राबूजी चौक पडने ।

"अहो-चपू ! होश खो बठती हो। कोइ भी बिघर स निवल कर आ सकता है थोडी दुस्ती से बठे। हा, हा तुम बोले जाओ हम सुन रहे है तनिक नजर जरूर बाहर रखेंगे चार दिन का आय है क्या कुछ कच्ची कनगोठिया बनाने का मौका है तुमरा को ?

और वह बजर जमीन-मी धू धू हो गत माटी हो उठनी अपमानित चुभन कोए चाच मार म भी बुरी बाबूजी जब बाहर की ओर नजर निगरानी करेंगे, तो वो किससे बतियाएंगी !

यहा भी चपा भोजी प्रचन बर्दाशत नही बाबूजी का यह रूप डह उठती बदली-मी भिगा डालती उनक कंधे घुटन नदी-भागर तलक उठने जाछा से हाथ जुड उठन माफी मागती। हर वान भूल बिलजिला उठनी। बाबूजी जरा सा हस दत या दुलार उठते कि कस निहाल हो उठती बिछ जाती फिर उनके

सकेतो पर लेकिन मन के महल का पूजा घर या ही घण्टिया बिना बजाए सूना-सूना प्रतीक्षित रह जाता, जिसकी चदन रची देहरी पर दौड़ती, हाफती, थकी-टूटी-सी आकर वे फिर बठ जाती नये पुरान तान-वाने उधेड़ती बुनती उमर के पाव यो ही घायल होत रहे, पर चपा भौजी की काया, उनका मन बाबूजी के नाम पर सदा परिश्रमा करता रहा । एक पूजा थी, जो अनवरत चल रही थी ।

रात पर कालिमा की एक और गहरी पत चढ चुकी थी । उनके मन की झुझलाइट ने अब क्रोध का रूप ले लिया था । आधी रात हा चली और यह है कि उठने का नाम नहीं । आर्येगे भी ता क्या । मुटठी म कितना-सा बक्त रह जायगा भला ? सुबह मुह-अधेरे ही फिर उठा दग भाइया और छोटी बहुआ के सामने कायदा-फानून जो रहना लाजमी है । ऊह । पूरे ही देवता वनत हैं । खुद को पता क्या कि छोटे भाई लोग पीछे म अपने बीबी-बच्चा के साथ कितने हसत-बालते हैं ?

दिन मे भी देवरानिया पचास बार कमरे दालाना म अपने-अपने आदमियो से मिलती है बाहर भी जाती है नुमायश, नौचदो, गगामेला कहा नहीं गई । मंदिर मे तो खैर जाने का नियम-भा है । एक वही वालू-पाट की नदी रही । पीछे अगुलिया पर दिन-हफत गिनती हुई । सारे घर का काम धंधा निबटाती हुई जनाय-सी । जिठानी-देवरानिया का घर बराबर का काम । खुद का करना क्या ? न वालक-बच्चे, न मद घर मे नखरे गुमान कहा करे । मख्त हिदायत, कि इह हमार भाई मत जानना बराबर के बेट जैसे है छोटे पचास कह लें, तो भी पी जाओ । तभी तो वे सिर चढे रहते हैं । चलो माना, पर घर वालो को चाहिए कि अब तो उठें पीछा छोड़ें ।

बाबूजी के पैर हिले । भौजी का दिल बल्लिया उछल पडा । जगले की किवाड छोड हटने को हूइ । एकदम जा जायेंगे, खडा देयेंगे, तो क्या सोचेंगे ? परन्तु यह क्या । उहाने तो कोहनी के नीचे तकिया रखकर और अच्छी तरह टिका लिया था ।

चपा भौजी का कलेजा कोयला ही उठा । खडे-खडे पाव अलग टूट गये थे । हे राम ! ऐसा मरदमानस किस काम का ? अरे, खुद के भीतर से जगर सारा खून निचुड गया है, तो दूमरा का तो ध्यान करें । काहे के बाबूजी, कोरे पत्यर के टीले । इन घर वालो को दखो जग, चात्र-नाक भिडाय बेकार की बातें कर रह हैं । एसे तो अब डूब सारे तार । भाड मे जाओ सब उन्होन खिडकी के पत्तो को भटाक से खाला और बद किया । झपट कर आगन मे जायी और घडौची के पास आकर घडो पर रसे गिलास-लोटा को जोर-जोर से अदलने-बदलने लगी, लकिन बाबूजी ने कमर फेरकर उधर एक बार भी गौर नहीं किया । आखिर उहाने जिठानी के लडके गोविंदा को बुलाकर कहा कि ताऊजी के कान मे उठने के लिए थाल द

और फिर खिड़की की फाव में जा खें जमा कर खड़ी हो गयी ।

इसक भी करीब जाधा घण्टा बाद बाबूजी उठें । लोट स भरकर पानी लिया । पीकर इधर उधर हातें रह । शायद इम इतजार म कि भाई लोग अपन छिन्नान हा तो वह अपन कमरे मे जायें ।

चपा भौजी ने धीरे स खिड़की बसी और बिस्तर क पाम बिछी खटोली पर बैठ गयी, बाबूजी भीतर आये । उनके मुह म दवे पान स बीमती तम्बानू की खुशबू मे मारा कमरा गमक उठा । जने घावो पर जंमे किसी ने नमक का लेप कर दिया । बिना उत्तर दिये भभक उठी और बाहर मे लोटा भर पानी कटोरे से ढक कर लाई, तिपाई पर रखकर झपाक मे दरवाजा बंद कर दिया ।

बाबूजी का शरीर सकोच से भर उठा । अस्त-व्यस्त से हाकर बोले

“अरे, अर, चम्पू ! यह क्या गजब करती हो ? देख रही हो अभी मिराली वाली बहू गोद के को लेकर नाली पर गयी है । दम्पू भी शायद आगन मे ही हैं । ठहरा जरा ! अभी दरवाजा बंद मत करा खोलो इमे ।”

परतु फिर किवाड खुने ही नहीं । चपा भौजी गुस्मे स भरी तोप हो रही थी । बाबूजी ने पूरी मनुहार की । गलती भी मानी और अन्त मे बही बिमा पिटा आदमवादी बहाना रखा सामने ।

“क्या समझती हो तुम ! तुम्ही यहा अकली परेशान थी । मैं अघा हू । कभी कोई आ रहा है, कभी कोई मिलू नहीं किसी से ? कंमे भीतर बैठ जाऊ सई-साझ से ? तुम्हारा मन नहीं पहचानूंगा क्या ! तुम भी तो मेरी मोचो खर, अब ठीक से बठा, बोला । देही म भी कुछ बकाबट-सी है, ये हठाबामी छाडो जी ।”

बस हा गया मान घमड ! हसकर बडे आराम से उहोने तो पा ली छट्टी ! चपा भौजी क्या बठी रह अब कमर फेरे ? बठना है तो बठी रहो वेशक बाबूजी तो नीम म बकाबू हा जायेंगे टमरका किसको दिखायेगी ? छोडो, जाने दो । ठीक ही ता कहत हैं ये भी क्या करें ? बाबूजी न कोई दिलली की और वह हस पडी, बादल पट गये ।

बातो की रिमझिम शुरु की उहाने आठ और नाक चढ़ाकर । आखा म नई-पुरानी रिजनिवा खीच कर कुछ एस अदाज मे अपन दिन के जले-भुने टुकडे रखे कि बाबूजी का बफ स भी ज्यादा टण्डा दिल अलाव या भभक उठा ।

शिरामना की सीनिया पर चढ़कर पूरा मन उडल दिया गगा-जमुनी धाराए बहाकर यह भी बह दिया कि—

“इम बार चाहे कहर दूने या मौत आय, वह जन्म जरूर उनने साथ जायेंगी नहीं तो जिंदा नहीं रहेंगी । बटुनगी जहगी छान जहें हैं फाट-भीमकर निगल लेगी अब दग ला गुद मरी का मुह देखना है या मग ल जाना है ? साथ त

9154
जाना हा, तो हा हू की खाली हामी से काम नहीं चलेगा। हथेली कमकर सींग-ध
देनी होगी।”

बाबूजी सुनकर सिफ मुसकराते रह। उनकी ओर करवट करके धीरे धीरे
कुछ बोल भी देने थे हम देते थे।

जान कब कसे लालटेन के मदे पीलियाए उजाले म चम्पा भौजी की नाक का
बसर एसा झमका मार के कौधा कि बाबूजी जाखें फँलाकर रह गय। नई रगीन
चूडिया के भार स ठसी गुदाज कलाइ जान ले बठी। झीनी गुलाबी रगत वाली
घोती से आकत बुदो के लटकन कलेजे मे कोचा मारने लगे। भादा से उमडते
आचल की वार जाने कब खिसक गइ थी सासो की शाय पर कैसे पखेरू फड-
फडा उठे थे। बाबूजी की देह सना गइ। वे ठगे हुए-से लुटे-नुट हो उठे।

चालीस पार करके भी बदन की एसी गठी कसावट पर और भवखनिया मुद-
कारे चेहरे पर उनकी नजर अब तक कयो नहीं गइ थी। घण्टा मुह फाडे एसे देखत
रहे, जैसे हारा घवा पथिक मीलो के धूल काटे भरे सफर के बाद अचानक
हृगियाली पा जाये। प्यासे हिरन को रंगिस्तान म लवा-लब झील मिल जाये।
चपा भौजी ऐसी नइ-निक्वोर ता कभी लगी ही नहीं वाह। और इही कमजोर
क्षणो म उहाने साथ ले जाने की स्वीकृति द दी पत्नी मोहर के साथ सपन
लहरा उठे। नीद कसी। पलको म रतजगा हो गया।

सुबह पूरा घर हैरान, कि कोई जिन्न नहीं, तयारी नहीं और एसी तावड-तोड
जाने वाली बात एकदम कैसे जम गयी? बडे भैया चपा भौजी को नौकरी म भग
ले जायें? ऐसी असभव बात इतनी पुख्ता? किसी का दिमाग काम नहीं कर रहा
था। धरा उठाइ शुरू हा गयी, दोपहर की गाडी हर हालत मे पकडनी थी।

चपा भौजी फिरकनी हुई भाग रही थी। देवरानिया, ननदें राह-नाँल का खाना
चनान म जुट गयो। वह अब कयो देखें चौका? बला से, कुछ भी साथ बाधो, चाहे
रहने दो। जाने कितनी जगह सौ तरह के नाश्ते-खान? अब किसकी री-री, झी-
झी डिब्बा खोल जेवर निकाले। पायजेव बिछुए खूब निखार तार वाले बुरश
म। गुलबद चपाकली, दानमाला पहनी। चूडिया के आग शेर के मुह वाले बडे
दबाम। गूज-अगूठिया पोरआ पर चढाई। गुच्छेदार तगडी पहनी। चमकनी बिंदी
और नोकदार बाजल डालकर बालो म खुशबू वाला तेल थपक माग भगी फिर
माला मोतिया स गुथा झब्बे वाला चुटीला। बेला नाइन म महावर रचवाई।
पढोस की विट्टो से लेकर नाखून पालिश रगी। सुनहरी पूला घात्रे किनारे की
रेशमी लाल घोती पहनकर बडे जतन से कपडे म लिपटी-धरी चप्पलें चार-पटकार
कर पहनी। ऊपर से भूमिया झलक लगी गोटा टकी बायल की चहर आउ घुपट
घीप लिया। जी का उछाह ममटा नहीं जा रहा था।

ममय हा गया था चलन का । दवरानिया १ पाव छुए । उहाने बाल-बच्चा क सिर पर हाथ फेरा । दूर रिश्न की बचिया साम न दग-बीस अच्छी मलाह दी । नाइन न मजी लुटिया म पानी भर कर दिया । दो घूट पीनर उसम घनघनान दा रूपय डाल । नाइन न आसीम दन हुए वह पानी उनवे तागे पर सिग दिया ।

मन हाथ म बाहर हुआ जा रहा था । सडक-बस्ती पाव होत ही धादर उतार कर चार तह करके घुटना पर रख ती और बाबू जी पर काजल भगी चितवन म एक निगछी मुस्कान फेंक दी । उहान भी उसका मगपूर जवाब आघ्रा-ही-आवा म दे दिया ।

अपनी माहमिक विजय पर वह निहाल हो उठी । हमेशा बहकान रह कि—

“क्या करोगी साथ जाकर ? ज्यादा ही जो उचाट हो रहा है तो गाव चली जाओ, महीना-बीम दिन क लिए । बाबू और ताई खुश हा नगे । हमारे लिए ता वही बडे-बूडे हैं । अपनी चार-बीघा सती हैं । डार-डगर है । दूध पानी ही बदलेगा, बुजुर्गों की मेवा का पुरस्वार अलग । गाव-मल क आदमी भी तारीफ करेगे । दूसरी बात यह है कि जान कैसा मौका जाये । रिटायर होकर कहा देही खटानी पडे । अपना घर गाव तो देखना ही है न ।”

और चपा भोजी विद्रूप भरी हसी हसकर टाल देती थी—

“घनेर की ! बाह, वही मिली है घर का कूडा क्या ! जायें बहूए कापी क पास । उही ने जगन की सेवा का ठेका लिया है न ! जायगे रिटायर होकर गाव ? बडे देखें यही । सारी उमर घिसा दी जकले दावागे म सिर फुडवा कर, अच जाओ गावर माटी म निबडन ।” रैन की खिडकी से सिर निकाल कर बाहर बड चाव से देखा । गाव खेत, पड दौड जा रह थ ।

नौकरी क जानद पाकर वह हगदम झूमती रहती । दो आत्मियो का क्या काम ? मन पसद पाना, पहरना । आजाद मना-मी कुदकती रहती छोट म कवाटर म । शाम का बाबूजी का हाथ पकडकर दूर तक घूमन जाती । लगानार चार पाच सितमा देखे, ता लगा कि जिदगी का बहुत-सा अनदघा पूरा कर लिया ।

बाबूजी काम पर चले जात, तब कवाटर के चबूतरे पर बठकर बाने करती । श्रोशिया से बाबूजी की जाली के फूना वाली बनिमान चुनती । अपन भरे पूरे कुनब का, बाबूजी क त्यागा का बडा चढाकर बणन करती । दिन यो ही फुर हा जाता । सई-माझ स लेकर दसरे दिन दम ग्यारह बजे तक खूब तवीयत के साथ बाबूजी की संगत रहती ।

दिन दिन जाड लगाकर बय ममय के पखो पर पलक झपकत तैर गये । अतिम बय रह गया बाकी । इसी बीच उन्हाने चार-छ नम पणन की माडिया और हल्के

फुलके दो-तीन गहने बनवा लिए थे। विद्यालय की नौकरी इससे अधिक वैभव और क्या देती भला ?

घर के व्योरेवार किस चिट्ठियों में आते रहते थे, परंतु यह भी उनकी नजर में छिपा नहीं था कि उन चिट्ठियों में जिस आदर, प्यार और इतजार की गुनगुनी गर्मी वाजूजी तलाशत है, वह नहीं मिल पाती। यह भी कि वह गाव में भी खत-पत्री इन दिनों ज्यादा डालने लग हैं, खर, यह ता व भी जानती हैं कि खेती-बाड़ी और गाव की हवा उन्हें हमेशा खींचती रही है। कहत रहे हैं कि चार पसे की नौकरी शहरियों को क्या ? दो दिन खाओ और अट्ठाइस दिन खड की तरह खींचत रहो। उधर भाटी में मुट्ठी भर दाने छितराओ और सार कारज जो खालकर पूरे करो।

रिटायर होने का दिन भी आ गया। सारा सामान समेट दोना घर की ओर लोट चले। अपने छोड़े हुए बस्त्रों के स्टेशन पर उतर चपा भौजी को बड़ा आश्चय हुआ।

अजीब सा नयापन। या कहे तो अजनबीपन। तागा सड़कें गलियों को जब पार करन लगा, तो उन्हें महसूस हुआ कि वह किसी दूसरे नगर में था गई है। सड़क, बाजार, रास्ते सब नई पहचान लिए लगे। यहाँ तक कि अपनी गरी के नुक्कड़ तक यही भ्रम बना रहा। हालांकि सामने दीवानजी की हपेली के जागे नीम और पीपल के पेड़ बदस्तूर खड़े थे। वही हनुमानजी की छोटी गुमटी। वही पीरखा का चबूतरा। कौने में वह रहा लाला बनवारी लाल का किलेनुमा ऊचा फाटक " लेकिन फिर भी कुछ था, जो बहुत उलट पलट नजर आ रहा था।

दरवाजे पर तागा रक्का। इधर उधर खिड़कियाँ-दरवाजा में छोट-बड़े चेहरे झाकने लग। परिचित-अपरिचित से

पंद्रह दिना में ही घर में बसी उदासी और परायेपन के कारण का पता लग गया। इस उसके मुह में बात आई कि भाई लोग अलग चूल्हा करना चाहत थे। क्या ? बेटे की तरह पाते पोसे इनके भाई ? छोट देवर ? यह कानखजूरी सीख किसने दी ?

बाबूजी इस घर के लिए इनके लिए बहू-बच्चा के लिए, सारी सुख-सुविधाओं के लिए आख, कान, मुह बंद करके बुर्बान हाते रह और अब ? आखिरी उमर में आकर चूल्हा अलग करेगे अपना ? बेटा-बटी की तरह मानकर जिस आदमी ने बुढ़ाप तक कायदा, लाज शम आखा में मोड़ी, उसी का आज इन तागा ने आखों में तिनके की तरह छिटककर फेंक दिया। पर किससे वह यह बेहयाई ? मुनेगा भी कौन ? और जिस निलज्ज दो-टुकपने से बात चली थी, उमी दो टुक तरीके में दस बडों के बीच घर का बटवारा हो गया।

बाबूजी और भी ज्यादा घामोश हो गये। एक छत के नीचे बसा पोसला स्वार्थी नाखूना ने मोच-खसोट कर बारह वाट कर डाना। चपा भीजी क्या करती? घुटने कमर ही टूट गये। उनके बाबूजी बट पड की तरह ढहकर पड गए। अब जी कहा चैन पाये?

घरवाल मार मनबुन हा उठे। बहूआ की घूघट-गाती उठने लगी। बच्च जिनके पेट जाप किय थे, बूक-लार पलने से पाछे थ, वही उनकी और बाबूजी की खिल्ली उडान लगे थे। शिकामत करो ता कौन-बीच म फुसफुसाहटें उठन लगी थी ये दोनो तो सटिया गये है। कुछ समझत ता है नहीं। बकार काय काय करना। रोटी खा ली, मतलब नौकरी पीट ली और मा लिए। दुनिया क्या है, कहा जा रही है, इसका अदाज क्या? मा चाप की खुम पुम सुनकर उन्चे खिलखिल दात फाड देते मन तो करता कि पीचकर एक मारे हाय और पूछें कि माठिया पन क्या होता है? अपने मा चाप को भी नाली-गटर म दबाच दना अच्छा। लकिन बाबूजी की आखो का सकेत पाकर यून का घट पीकर रह जाती।

चपा भीजी दख रही थी कि बाबूजी दिन पग दिन रिसने ही जा रहे थे। हलका सा बुखार और खासी ताडती रहती है। बँच जी की पुडिया कोई असर नहीं कर रही थी। क्या करे। दूसरे डाक्टर को दिखाये? उह दखवर उनके हाय परो का सत अलग म निवल गया था।

भीतर बाबूजी खास रहे थे। कराहने की आवाज आइ। वह दीडकर गई कमर छाती महलाने लगीं हाथी-मा बदन सिवड कर बास बराबर रह गया था। बदलाव का गम क्या कम हीलनाक होता है? फिर एक ता बात चीखकर दद फाड ल, कहा कुछ बह ता जाना है, लकिन जहा बूद-बूद पी ली जाये मन की टीस, बहा का जहरी तालाब देही को ही चाटगा।

चपा भीजी की पतके तालाब बन गई, झरझर कर बाबूजी की छाती पर बिखर गई। उहोने कापने हाय उनके मिर पर रख दिए— अर बाबली! नू क्या आधी हुई जा रही है। अभी मैं जिंदा हू अचानक हात्सा गुजरा है, सा हिल गया हू, टूटा तो नहीं हू ना?" वह छाती पर सिर टिकाये मुबकती रही। बुघार शामद तज था। तवे की तरह खाल तप रही थी।

'अब चुप कर चपी। जी सम्भाल। उठने-बठन लायक होने दे, तव अपने गाव चलेंगे। बाबू मर गये। बाकी अकेली जिस तिस म जाध-बटाई पर हल साझा करवा रही है। बूटी चापा भी मुख पा लगी चार दिन। सारी जिंदगी बाहर दूसरा के मिर की छाया के लिए बिता दी, चल अब माटी का वज भी उतार दू क्यों? मुझ क्या पता था कि आगल यो दगा द जायेगा।'

चपा भीजी की आवा म जुगनू चमक उठे। "आपसे आज बहू, पहल डर

था । एसा पता होता ता बाहर दो ईंटो का झापडा छा लेते ।

“खर, चिट्ठी डलवाये दे रही हू गोमू से कि जठवाडे बीच हम आ रहे हैं ।
दवाई लेके सो जाओ दो घडी ।”

सचमुच कइ दिन बाद बाबूजी को बडी गहरी नीद आइ । सिर ऊपर जो
शहतीर झुका चला आ रहा था, लगा कि नही, अभी सिर पर छत की छाया बनी
हुई है पाव तले की जमीन अभी ज्यादा बिखरी नही ह कोइ नया अबूझा-मा
सपना उनकी पुतलिया को थपकन लगा था । □

मुक्ति-पथ

साधव नागदा

वह जब तली क घर लाया गया तो छाटा सा था। महज तीन महीन का। तेनी उसे अपन दोस्त करमा सुधार म दस रुपये म लाया था। चकि उस रोज शनिवार था, यानी थावर, इसलिए तेनन ने उसका नाम रखा थावर। थावरा था बहुत प्यारा और चचन। ममबदार भी इतना कि जब तली पुकारता 'थावरा' ता वह कूदता-कूदता जहा-का-तहा एक जाता और कान खड़े कर गले से हैंड-हैंड की मद्धिम आवाज निकालता।

घर म थावरा के अलावा एक बड़ा बैल भी था जा आखी पर पट्टी बांधे लकड़ी के एक ढोखे क चारा ओर गान-गाल घूमता रहता। थावर को उसका मू एक ही दायर म घूमन रहना ममज म नही आया। तेनी उम मरियल से बल को हरदम धमकाता रहता और कभी-कभी तो घेरहमी स पीट भी देता। परंतु थावरा का इस सबसे कुछ लेना-देना नहीं था। वह ना गलता-कूदता, चौक म चौकनिया भरता खाता और पमर जाता। कभी-कभी तली कृता "कर ते प्यारे मौज जितनी करनी हो। तरा भी नम्बर जान वाला है।"

इसी मौज-मस्ती मे बकत गुजरता गया। फिर एक दिन ऐसा भी आया कि दो आदमी बूढ़े बैल को घसीटकर ल गय। बस, तभी म थावरा पर मुसीबता का पहहाड टूट पडा। तीन साल का होगे न होन घाणी म जात निया गया। लगभग एक बप हा गया है, उम इसी तरह चलत चलत। पता नही कितना सफर तय हो चुका है कितना शेष है। राज मवर तेनी उमकी आया पर अधा चरमा चडा दना। दिन भर बह चलता रहता चलना रहता। जब चरमा खुलना तो थावरा पाता कि रात हो चुकी है, और वह जहा म सवर चना था अब भी वही है। शोध ही उमकी ममज म आ गया कि आर्थे मू एक ही क्षमरे म बार-बार तय किय जा रह अनजान सफर की यत्रणा कमी हानी है।

'टिच टिच टिच। तली ने टिचकारी की। थावरा का बहद सवान अनुभव

हो रही थी। मगर कम्बख्त तेली था कि उसे पल भर का भी विश्राम नहीं देता। उसे तली की शकल से ही नफरत थी। कितने क्रूर और कितने बेदग होते हैं, य मनुष्य। घाणो की लाट की तरह लम्बे। न झिग मिर करती पूछ, न बदन पर मुलायम मुलायम रोये, न माथे पर सींग।

बाप र सींग नहीं है, तो भी तेली कितना मारता है, सींग होत तो। थावरा बाप गया। उमके पैर अनायास ही तज हो गये। हालाकि तेली घर के अदर चला गया था।

कुछ देर तक कोई आहट न पाकर थावरा को विश्वास हो गया कि तेली आस-पास नहीं है। उसन राहत की सास ली। वह रुक गया।

बस, एसे ही वह दिनभर म कुछ क्षण चुरा लेता है। यह चुराया हुआ वक्त ही उसका अपना होता है।

“गधे के बच्चे। नमकहराम। अब तेरी घण्टी बाधनी ही पडेगी।” तेली माना जमीन फाडकर निकला। थावरा चैन की दो सास भी नहीं ले पाया कि तेली का हथौडे जैसा हाथ उसकी पीठ पर आ जमा। ऊपर से बेहूदी गाली। थावरा को यह गाली सबसे नागवार गुजरती है। वह तो गऊ का जाया है। विशुद्ध साड-पुत्र है। और तेली-राजा उसे गधे की सतान घोपित कर रहा है। वह इतना अनजान नहीं कि गधे से परिचित ही न हो। पाम ही कुम्हार का घर है, जहा गधा रात को गला फाडकर बंसुरा राग अलापता है, और सार दिनभर नजरें झुकाये बाझ ढाये चला जाता है। विरोध की कोई कोशिश तक नहीं।

तेली के प्रति उसके मन में श्रेोध भर गया। वह फुकारा।

“गुस्सा करता है, ले। और कर गुस्सा।” तेली ने एक और जमा दी। फिर एक और। एन और।

“मार ही डालोग क्या, बेचारे अनबोल जीव को?” अदर से तलन चिल्लायी।

थावरा को अपनी स्थिति पर बहुद क्षाभ हुआ। ये दो पैर वाले जानवर हम चार पैर वाला पर कितना अत्याचार करते हैं। क्या इससे छुटकारे का कोई उपाय नहीं है?

‘ठहर जा, अभी तेरी नमकहरामी का इलाज करता हू। कमला की मा, वो घण्टी लाना तो जो मैं कल बाजार स लाया था।’

घण्टी? हा, याद आया। थावरा ने खेतो पर काम करने वाले बैलो के गले में देखी थी। तेली उस रोज कुए पर ले जाता है, पानी पिलाने। उस समय थावरा की आखा पर मनहूस चश्मा नहीं होता। वह कान खडे करके और पूछ हिला-हिलाकर चारो ओर बडी उत्सुकता से देखता है। हरे भरे पड। पेडो की छाव तले जुगाली करती खूबसूरत और मुवा गायें। खेतो में काम करते मेहनतकश गठील

वदन के गन । बला के गन म रनझुन करती घटिया ।

य बल कितन गुशनसीब ह । जय य हल म जुतन है, ता मातिक इनकी आघा पर पट्टी नहीं बाधता । हावत बक्त इह 'गधे क बच्च' या 'नमरहगम' जसो गदी गालिया नहीं दता । भाईड, बापूड जस प्यार नाम दता है । उसरी वाली म तेली की तरफ टुच्चापन नहीं हाता वलिक एक मिठास होती है । स्नह-पगा स्वर । और इन बलो का आराम क क्षण चुरान नहीं पडन । किमान स्वय उह विधाम की छुट्टी दता है । हरी-हरी बवली-बवली पास डालता है । थावरा का तो रोज रोज सूखी खली खानर हाजमा ही खराब हो गया है ।

थावरा इन भाग्यशाली बला को हसरत भरी निगाहा म दयता । दोपहर क बक्त बाड के उस तरफ के श्रापम मे सीग लडाते ठिठोनी करते या फिर एक-दूसर को चाट रहे हात । हर भर धान के भना पर पसगी नुनगी धूप म उम रश्व हाता । थावरा का दयकर खेतिहर बल आकाडत, मीग म जमीन कुचरत, घु पटकते मानो थावरा का आह्वान कर रहे हो कि आआ, गुलामी री जजीरें ता" कर आआ और हम शरीक हो जाओ । फिर कोई तुम्हारी आघा पर पट्टी नहीं बाध सकगा तब तुम राशनी का भरपूर आनन्द उठा सकोग ।

बाड के इस पार थावरा छटपटाता । वरण स्वर म अब-अब करता । बाड को सूध-सूधकर देखता कि कहां पर वह कमजार है और किस तरह इस चीग्वर वह अपने हमजोलिया म शामिल हा सकता है । उसका जी होता है कि किसान क बना की तरह वह भी खुली हुवा मे सास ले, सेता म जल उपजाय और जी भरकर दुनिया को निरखे । उसके गने म भी किमान के बल की तरह पीली-पीली सी घटी हा और जब जब वह खुल भेनो मे बुदडकी लगाए तो रनझुन रनझुन

तली ने उसके गल म घण्टी बाधकर पुट्टे पर एक लल जमायी, "बल, अब कस चकमा दगा, मैं भी देखू ।

ठन-ठप ठन-ठप ।

थावरा को लगा कि इस घटी म वह रनझुन नहीं है, वा जा खता पर तरा करती है । तेली कबाडी क यहा स एक बहुत पुरानी, फूटी हुई घटा ल आया था । उसस अजीब-सी बगुरी ठन ठप आवाज निकल रही थी ।

अब तेली थावरा को चलता करके घर म तलन के पास जाकर बठ जाता । घटी अपना वेसुरा राग अलापती रहती 'ठन-ठप ठन ठप' । मानो थावरा को चिडा रहा हो । थावरा जसे ही सुस्ताने लगता, तेली करता, 'हड-हड हुरामखोर' उसक धके कदम फिर तेज हो जाते ।

थावरा बसमसाकर रहे जाता । उसके भीतर लावा इकटठा हा रहा था । वह तली को देखते ही फुफकारने लगता । जब-तब मीग भी मार देता । परतु तली हर बार अपन का बचा लेता और बडबडाता तुसे डेड फाडे, मारना सीखा है ।

ठहर जा इसका भी इलाज है, मरे पास ।”

क्या तली के पास उसके हर कदम का काट मौजूद है? दो पर का यह जानवर इतना तावतवर क्याकर है? कहत है, इन लोगो के पास दिमाग नाम का एक अचूक हथियार होता है, उसी के बूत पर य हम पर शासन करते है। तो क्या इस अनचाहे जन्मेपन से कभी छुटकारा नही मिलेगा? थावरा सोचता और तिल-मिलाकर रह जाता ।

पैर जबाब देन लग थे। तेली के डर के बावजूद वह रुका और गरदन को झटके देकर आस पास भिनभिना रही मक्खियो को दूर भगाया। और यह क्या घटी बज उठी ठन ठप ठन-ठप। जोह, ता खडे-खडे भी घटी बजायी जा सकती। थावरा को मुखद आश्चय हुआ। उसने इस बार महज परीक्षण के तौर पर अपनी गदन झटकायी। फूटी घटी फिर बजने लगी। तेली घर में बैठा था। इस बार उसने नही किया—“हू-हू, हरामखोर।”

थावरा को लगा कि रोशनी की कोई क्षीनी-सी किरण चश्मे को भेदकर अनायास ही झिलमिला उठी है। अब उसके पैर थक जात ता खडे खडे गरदन हिलाता। गरदन थक जाती तो चलन लगता। हा, इस बात की पूरी चौकसी रखता कि तेली जासपास न हो। और उसके कान अब तक तली की पदचाप सूघने के अच्छी तरह अभ्यस्त हो चुके थे।

थावरा को यह नया प्रयोग बहुत मजेदार लगा। उसमें विश्वास भर गया कि वह इस अजूबे जानवर में बराबरी का मुकाबला कर सकता है।

परंतु उसकी खुशफहमी बहुत दिना तक टिक नही पायी। आखिर एक दिन तेली ने देख ही लिया, “अरे-अरे थावरा, तू इतना बेईमान हो गया? मैं भी सोचू कि आजकल तल कम कैसे बठ रहा है। हरामखोर नातायकी करता है। घाघा चौपट करन पर तुला है।”

तेली ने दो चार लातें जमा दी। थावरा के नथून बजने लगे। मुझे हरामखोर कहता है। अरे हरामखोर ता तू है, जो मेरा कमाया खा रहा है। मैं तो खरी मेहनत का पाता हू। सारे दिन अ धरे का पहाड खोदता हू, और तेल का झरना पी जाता है, तू। मुझे तो यह भी पता नही कि तेल का रंग काला होता है या पीता। मेर हिस्से तो निचुडी हुई खली हैं—तरी गालिया है तरे डण्डे हैं।

थावरा यह सब कैसे कहे। इसान के साथ रहते रहत वह इसानी भापा समझ तो लेता है, परंतु बोलना नही आता। तो फिर कैसे अपना विरोध प्रकट करे?

उसके भीतर का लावा कसमसाते लगा।

दोपहर को जब तली ने उसे खोला तो लावा फट पडा। वह झपटा और लगा भेटियाने। एक तरफ दीवार आ गयी थी। दूसरी तरफ थावरा का सिर। दे भचीका दे भनीका।

“अरे, जरे थावरा । मार डालेगा क्या ? हाय रे, मरा रे ।”
भीतर से तलन दौड़कर न आती तो तली की गत ही विगड जाती । तलन ने सोटा उठाया जोर लगी थावरा को धबीकने ।

“ल जोर मार । ल मार । हा हो । तेरे पर बडका पडे । तुझे गोयरा काट ।
ढेड की हाडी म दू तुझे । मैं तो हिमायत करती हू कि अनबोला जीव है । मत मारो । जोर यह तो उल्टे ।

तली हाय र हाय र कर रहा था । थावरा भीचक्का था । वह कुछ समझ नहीं पा रहा था । तली को भेटियाने का उसे दुख नहीं था । अपसोस था तो इस बात का कि तलन ने उसे पहली बार इस बुरी कदर माग था ।

तलन अपन पति को सहारा देकर अदर ले गयी । तल-हल्दी की मालिश की । गम गम चाय पिलायी । बोली ‘ अब सो जाओ तनिक । उस ढेड को मैं आज न तो पानी पिलाऊंगी और न चारा डालूंगी । अभी जोतती हू जाकर । ’

आकर देखा तो पाया थावरा जस-का-तस खडा है । चमडी काप रही थी । गदन झुकी हुई । खुला था फिर या खडा था जस खूटे से बधा हो । चारे का तरमा तक नहीं तोडा । चुपचाप और गमगीन, गोया किसी गहरे सोच म डूबा हो ।

मालकिन को देखकर थावरा ने हील से सर उठाया और कान खडे करके इस कदर कातर दृष्टि से दग्रा कि तलन की सारी बठोरता नारियल के तल की भाति पिघल गयी । वह जाकर थावरा की गदन से लिपट गयी, “पगल, बलद की जीवा जान म आकर इतना गुस्सा करता है ? य तो अपनी-अपनी देह के दण्ड हैं, भोगने ही पडेंगे । जीना तब तक सीना । हम इसान हैं, तो भी कौन-स सुयी हैं । एक दिन भी घाणी न चलायें तो दूजे दिन खाने के भी लाले पडे । अब तो सुना है, गाव का सठ बिना बल की घाणी ला रहा है । विजली चलायगी उसे । फिर तो पडी घाणी लक्क-वरावर । तरी आखो की पट्टी हम अपने पेट पर बाध लेंगे । तू आजाद हो जाना, बस । थोडे दिना के लिए गुस्सा काहे को करता है । ’

तलन न उसकी गदन सहलायी । थावरा कुछ समझा, कुछ न समझा । परन्तु तलन के भीग स्वर न उस आत्मीयता से सराबोर कर दिया । वह अपनी घुरदरी जीभ से मालकिन का हाथ चाटन लगा ।

इस घटना के बाद दो-तीन रोज तक तलन न ही घाणी हाकी । वह मारती कम थी । उसकी मालिया अग्ररन वाली नहीं होती । परन्तु अघेरा तो महा भी बरकरार था ।

और जब उसकी पीठ पर मुक्क और पट पर लात का एक साथ प्रहार हुआ तो थावरा समझ गया कि तली आ पहुचा है । उसने भी नयून बजाकर अपनी प्रतिश्रिया प्रवट की ।

‘ ठहर जा, तरी बिद्या तो मैं अभी गोटे करता हू । ’ तली के स्वर की शूरता मे

कोई अंतर नहीं आया था।

जब आधा स पट्टी उतरी तो थावरा न देखा कि तली के साथ तीन जन और भी है।

उन्होंने थावरा को रस्सिया से जकड़ दिया। एक ने गम सूजा लेकर नथूनो के बीच की मुलायम चमड़ी को छेदा। दूसरे ने इस छेद में पतली मगर मजबूत रस्सी पिरो दी। थावरा दद के मारे बुरी तरह छटपटाया। तली की क्रूरताओं का मानो कोई अंत नहीं था। उसने तीसरे को इशारा किया। तीसरा थावरा के सींग पर या आरी चलाने लगा जैसे सींग न होकर वेजान लकड़ी हो। खरर-खरर ।

थावरा का सींग बट गये। थावरा नथ गया। अनबोले जीव को बचाने वाली तलन भी इस दौरान जान बूझा गायब हो गयी थी। अब थावरा जब भी तली के खिलाफ अपना आक्रोश उगमन का हाता, तली नाथ पकड़ लता। थावरा का सारा आक्रोश धुआ हो जाता। तली फिर भी घमकाता “रस्सी जल गयी पर बट नहीं गया। साते को कबी मारकर बागरा कर दूंगा। समझता क्या है।”

तो तली के तरकश में अभी भी तीर बाकी है। कर ले करना है जो, कसर मत रख। देह के दण्ड है, भोगने पड़ेंगे। थावरा को तलन की बात याद जा जाती। परतु कब तक? आखिर कब तक? थावरा आशा और निराशा के झूले में झूलने लगा।

धीरे-धीरे तली की ग्राहकी कम होती गयी। स्थिति यहाँ तक जा पहुँची कि दो दो तीन-तीन दिन तक ग्राहकों के दशन तक नहीं होत। थावरा का चश्मा घाणी की साट पर टगा रहता। तेली दिनभर मक्खिया उडाता, चिलम स धुआ छोडता और धीमे स्वर में भुनभुनाता, “इस डेड फाडे, मरा घ-घा चीपट कर दिया।” दबे स्वर में फकी यह गाली सेठ के नाम होती।

अब तेली के स्वर में तुर्र्शी गायब थी। एक दिन वह मोची से कह रहा था, “कैसा पाजी जमाना आ गया है। बनिया घाणी चलाने लगा।”

मोची तिल की घाणी कराने आया था। तीन दिन में आया एक मात्र ग्राहक। बोला, “वह तो जूत भी बचता है। लोग प्लास्टिक फ्लास्टिक के पहन लेते हैं। मुझे कौन पूछे। सच कहता हूँ, गोनद्धन भाई, दाई से पेट क्या छिपाना, खाने के भी लाले पड रहे हैं।”

जवाब में तेली ने एक लम्बी सास छोडी।

घाणी होने पर एक हाथ में तल की पीपी और दूसरे में खली की गाठ लते मोची बोला, “चलू कावा। पस बाद में पहुँचा दूंगा। शाम को आटे-दाल का भी जुगाड करना है। बनिया तो एक पैस की भी उधार नहीं करता।”

तेली ने जाते हुए मोची पर बेबस नजर डाली “मुझे भी जब यह घ-घा नहीं

पोसाता भाई। वच दुगा इस लक्क को।'

सबमुच एव दिन कुछ लोग आये और घाणी की लाट निकालकर ले गये। तेनन झीकती रही, बाप दादाभा का धधा है, इस तरह बेचत शम नहीं आती? लोग क्या कहें?"

"बाप-दादा का ह, तो क्या करे? घाणी में तने या मेरे हाथ-पैर दू? मैं तो इस नानायक थावरा को भी बच रहा ह।

थावरा भी उब गया था। ये निठल्ले दिन तो और भी दुखदायी थे। खाने को भी भरपेट नहीं मिल रहा था। और जो मिल रहा था वह भी बैठे-ठाले। तेती अब अगर उसे गाली देता 'हरामखार, निक्ममे' तो वह बुरा नहीं मानता। लेकिन तली मानो, अपनी सब गालिया भूल चुका था।

फिर वह दिन भी आया जब एक किसान स दिखन वाले बादमी न थावरा व पुट्टे ठवकार मुह खोनकर दान गिन और पूछ मरोडकर उसकी चुस्ती को परखा। फिर बोला, "ठीक है, माढ़े तीन सौ म सौदा तय।

जब किसान उस से जान का हुआ तो तलन थावरा से लिपट गयी, "थावरा, तूने हमको बहुत कमाकर दिया र। अब तेरे दिन उजले, हमारे अघेरे। बाबजा, मेरे थावरा को मारना-बूटना मत, वचार ने बंस भी बहुत मार खायी है।"

तली बोला "हरामखार, थावरा। अपनी मरखनी आदत छोड देना। गुस्सा मत करना समझ।

तली के मुह स बहुत दिना वाद अपने नाम छूटी गाली थावरा को अच्छी लगी। उसकी आखा म रगीन सपने झिरमिलाने लग।

रास्त म बाड व उस पार सेती की मेड पर बल हरी हरी घास चरते हुए एक दूसरे से सींग लटा रह थे, और ठिठोली कर रह थे। उनके गले की घटिया बज रही थी रनझुन रनझुन। थावरा न जाज बाड का सूधा नहीं। न ही करण स्वर म 'अम्ब-अम्ब' किया। बल्कि गहरी आवाज म ओनाडा और अपन चारो खुरो से खूब धून उड़ायी। थावरा आज बहुत खुश था। □

एक और द्रोणाचार्य

शीताशु भारद्वाज

पूर्वी क्षितिज से बाल रवि उगने लगा था। नित्य कम से निवृत्त हाकर धमदत्तजी छज्जे पर आ खड़े हुए। हाथ में तावे की जलधरी गडवी लेकर मन-ही मन सूय मंत्र का जाप करने हुए वे मूय नारायण का जल-धार चढ़ाने लगे। तभी कहीं से उनके कानों में शिब्यू की आवाज पड़ी—बाजू !

बेटे का वह स्वर उन्हें कण-श्रुत लगा। उनकी पूजा-अचना में व्यवधान उपस्थित हो आया। देखा तो शिब्यू सीढ़िया चढ़ता हुआ ऊपर उड़ी की ओर चला आ रहा था। खाली हो आई गडवी को नीचे रखकर वे उसे प्रश्नसूचक दृष्टि से देखने लगे।

—बाजू क्या न मैं यही कही कोई छोटी मोटी ठेकेदारी करने लगे ! शिब्यू के मुह से दारु के भभाके उठ रहे थे।

तडाफ से उठे बेटे के गाल पर एक तमाचा जड़ दिया। वे उसके लिए आँखें तरेरने लगे, कम्बल ! सुबह सुबह ही नशा करके आ रहा है ?

शिब्यू गाल सहलाने लगा।

—हरामखोर ! धमदत्तजी उमके लिये दात पीसने लगे, जब दखो, पिनक में ही डूबा रहता है !

शिब्यू जैसे आया था वैसे ही लडखड़ाते हुए पावों से चौपाल की ओर चल दिया।

धमदत्तजी वहीं छज्जे पर बैठ गये। दोनों हाथों से माथा पकड़े हुए वे अपने भाग्य को कोसने लगे।

जैता बाप-बेटे की बातचीत सुन चुकी थी। छज्जे पर आकर उसने पति के कंधे पर हाथ रख दिया। क्या, क्या हुआ ?

—सुअर की औलाद ठर्रा चढ़ाकर आया था। उनका मन खराब होने लगा।

वर्षों पहले एक बार उनके विद्यालय का निरीक्षण हो रहा था। उस विद्यालय निरीक्षक बाई शिल्पकार थे। उनके लिये उठोने विद्यालय की रसाई में स्वयं अपन ही हाथों से भोजन तैयार किया था। शरीर पर मात्र धोती और जनऊ धारण किये हुए ही उन्होंने उनके लिये दाल-भात बनाया था। एक अध्यापक से उन्होंने उन्हें भोजन करने के लिए कहलवाया था।

किंतु उस विद्यालय निरीक्षक महादय काट पेंट में ही बिना किसी सूचना के जूते पहने हुए ही रसोई घर में चले आये थे। उनके जातीय दण्ड में जार का उवाल आ गया था। उन्होंने आँव देखा न ताव और उनकी ओर जलती हुई लकड़ी लेकर दौड़े थे। वे साहस्य वहाँ से भाग खड़े हुए थे। उसी करनी का फल उन्हें आज तक भुगतना पड़ रहा है। तब ऊपर से उनकी जवाबतलबी हुई थी। उनकी सेवा-पुस्तिका में कुछ ऐसी प्रविष्टि कर दी गई थी कि उनका पेंशन का मामला आज तक अधर में ही लटका हुआ है।

गाव की शाला से धमदत्तजी घर आ गये। पत्नी के साथ वे फिर से विचार-विमर्श करने लगे। जैता बोनी, शिबू को किसी स्कूल में ही लगवा देत।

—देखो! धमदत्तजी सिर धुजलाने लगे, ननीताल जाके अधिकारी से बात करूँगा।

अगली सुबह धमदत्तजी बस से ननीताल चल दिये। पत चौक पर जाकर दुविधा में पड़ने लगे। कौन जाने, नये अधिकारी उन्हें मुह लगाये भी या नहीं! हरीराम को कभी उठोने ही पढ़ाया था। शिल्पकार जाति का वह किशोर इतने ऊँचे ओहदे पर जा पहुँचेगा, इसकी तो वे कभी कल्पना तक नहीं कर सकते थे।

उन दिनों वे काशीपुर इंटर कालेज में सत्कृत के अध्यापक हुआ करते थे।

—सास्नाब! नवी कथा में अपने बेटे को प्रवेश दिलवा आये हुए जीतराम लोहार ने उनके पावा पर जपन सिर से टोपी उतारकर रख दी थी, मेरा हरिया जब आपके ही भरोसे है। उसके माता पिता, भाई बंधु सब कुछ अब आप ही हैं।

—जरे रे! ब दो कदम पीछे हट गये थे ऐसा न करो भई! तुम्हारा बेटा होनहार है। तभी ता वह सरकारी बजोफा लेकर इस विद्यालय में आया है।

—हूँ! जीतगम सिर खुजाने लगा था, अकेली सरकार ही क्या कर लेगी? हमारा उद्धार तो तभी होगा जब आप जैसे ठाकुर-सयानों का हमारे सिर पर हाथ होगा।

—विधर के रहने वाले हा? उन्होंने पूछा था।

—हम लोग मनस्यारी के हैं। जीतराम न बताया था, कभी मर बीजू ने बिना पानी का घट्ट (चक्की) चलाया था।

धमदत्तजी चौंक पड़े थे। अंग्रेजी शासन-काल में कभी मनस्यारी के शिल्पकार बचुवा लोहार ने एक ऐसी चक्की का आविष्कार किया था जिस पर एक

—छाडो भी ! जेता न उननी उदासी पाछनी चाही, बयो मन खराब करत हो !

पत्नी क साथ घमदत्तजी छज्जे म अदर चन दिय । जेता मुज्ह का बनवा तैयार कर चुकी थी । चीने म पाल्थी मारे हुए व कलवा करन लग । पुत्र को लवर उनका चितन फिर स प्रखर होने लगा । शिव्बू उह कितनी तपस्या के बाद मिता था । शिव भक्ति क बाद श्रौद्धावस्था म वह उह प्रसाद क रूप म मिता था । तब उह क्या पता था कि बडा होकर वह उननी छाती पर मूग दलने लगगा, कि वह उनका जीना ही हराम करने लगेगा ।

—शिव ओम् ! शिव ओम् ! घमदत्तजी मा-ही-मन पुत्र के भविष्य को लकर चिन्तित हान लग ।

अपन उस इयनीत पुत्र को लेकर वे दोनो ही तो अपनी आखा मे कुछ अनोभे ही मपन पालन आ रह थे । वह उनकी बुढाप की लाठी जा था । किन्तु अब उह उल्टे लने-के-देन पड रह है । बी० ए० क बाद म वह घर म बठा-बैठा रोटिया तोडता आ रहा है । मगनि भी तो उमनी गाव भर क उचकन-बदमागा की ही है । उन्हान नई बार उसे किसी नौकरी पर लगाने के भी अन्नक जुगाड किये । किन्तु कही भी ता बात नही बन पाइ ।

घमदत्तजी कलेवा कर चुके थे । पत्नी न उह दूध का गिलाम धमाकर पूछा, फिर क्या कहत हा ?

—सोचता हू, ननीतान का एक चमर और लपा आऊ ! घमदत्तजी बोर, सुनत है, बहा कोई नय शिक्षाधिकारी जाय हैं । शिल्परार बताते है ।

—बुछ-न कुछ तो करना ही होगा । जेता बही परात म हाय धीन लगी, एमा कब तक चलेगा ।

बच्चा भी जब तक रोता नही, मा उम दूध नहीं देती । घमदत्तजी इन मिडान का भली भाति जानत हैं । घर स निकलकर वे गाव की शाला की आर चल दिये । बहा व प्रधानाध्यापक से पूछनाछ करने लग कयो हो, शिक्षाधिकारी कोई नय जाय है क्या ?

—हा हा । प्रधानाध्यापक न बताया, कोई हरीराम जाय है । सुनत हैं निणय लन म मिनट भी नही लगात ।

—फिर तो मेरी पेशन का मामला भी सुजट ही जायेगा । घमदत्तजी का आशावादी स्वर था ।

—कयो नही । प्रधानाध्यापक मुस्करा दिये, आप जाइये तो सही ।

घमदत्तजी काटाबाग के जूनियर हाई स्कून की हंड मास्टरी स दो वष पहन ही मया निवन हुए हैं । जातीय दप जब-तब उनकी सेवाआ म व्यवधान पहुचता रहा है ।

वर्षों पहले एक बार उनके विद्यालय का निरीक्षण हो रहा था। उप विद्यालय निरीक्षक कोई शिल्पकार थे। उनके लिये उहोत विद्यालय की रसाई म स्वयं अपने ही हाथों से भोजन तयार किया था। शरीर पर मान धोती और जनऊ धारण किये हुए ही उहोने उनके लिय दाल-भात बनाया था। एक अध्यापक से उहोने उन्हें भोजन करन के लिए कहलवाया था।

किन्तु उप विद्यालय निर्गमक महोदय कोट पेंट मे ही बिना किसी सूचना के जूते पहने हुए ही रसोई-घर मे चले आये थे। उनक जातीय दप म जोर का उवाल आ गया था। उहाने आव देखा न ताव जोर उनकी ओर जलती हुई लकड़ी लेकर दौड़े थे। वे साहब वहा से भाग खड़े हुए थे। उसी करनी का फल उहें आज तक भुगतना पड रहा है। तब ऊपर से उनकी जवाबतलबी हुई थी। उनकी सेवा-पुस्तिका मे कुछ ऐसी प्रविष्टि कर दी गई थी कि उनका पेंशन का मामला आज तक अधर मे ही लटका हुआ है।

गाव की शाला से धमदत्तजी घर आ गये। पत्नी के साथ व फिर सं विचार-विमश करने लगे। जेंता बोली, शिबू को किसी स्कूल मे ही लगवा देत।

—देखो ! धमदत्तजी सिर खुजलाने लगे, नैनीताल जाके अधिकारी से बात करूंगा।

अगली सुबह धमदत्तजी वस से नैनीताल चल दिये। पत चौक पर आकर दुविधा म पडने लगे। कौन जाने, नये अधिकारी उह मुह लगाय भी या नहीं। हरीराम को कभी उहोने ही पढाया था। शिल्पकार जाति का वह किशोर इतने ऊचे ओहदे पर जा पहुचेगा, इसकी तो वे कभी कल्पना तक नहीं कर सकत थे।

उन दिनों वे काशीपुर इंटर कॉलेज म सस्त्रुत के अध्यापक हुआ करते थे।

—मास्ताब ! नवी कक्षा म अपने बेटे को प्रवेश दिलवाने आय हुए जीतराम लोहार ने उनके पाबों पर अपन सिर से टोपी उतारकर रख दी थी, मेरा हरिया अब आपने ही भरोसे है। उसके माता पिता, भाई प्रधु सब कुछ अब जाप ही हैं।

—अरे रे ! वे दो बंदम पीछे हट गय थे, ऐसा न करो भई ! तुम्हारा बटा होनहार है। तभी ता वह सरकारी बजीफा लेकर इस विद्यालय मे आया है।

—हू ! जीतगम सिर खुजाने लगा था, अकेली सरकार ही क्या कर लेगी ? हमारा उडार तो तभी होगा जब आप जमे ठाकुर-समाना का हमारे सिर पर हाथ होगा।

—किधर के रहन वाले हो ? उहाने पूछा था।

—हम लोग मनस्यारी के है। जीतराम न बताया था, कभी मेरे बौज्यू ने बिना पानी का घट्ट (बक्की) चलाया था।

धमदत्तजी चौक पडे थे। अंग्रेजी शासन-काल मे कभी मनस्यारी के शिल्प-कार बचुवा लोहार ने एए एमी चक्की का आविष्कार किया था जिस पर एक

साथ ही उन भी कानी जा सकती थी और अनाज भी पीसा जा सकता था।
उहोत धूब गटककर धुछा था, ता तुम बचुवा लाहार क बट हो ?

—जी सैब ! जीतराम ने उनक लिए हाथ जोड दिम थे ।

हरिया सचमुच ही मधावी छात्र था । अध्यापको क ब्याख्यात ता उमक मन
मस्तिष्क पर छप ही जाया करत थे । एक सप्ताह बाद वह उनक पाम चला आया
था ।

—कहो भाई ! उहाने अपनी जवाहरकट की जेबो मे हाथ ठूमकर उसने
हान चाल पूछे थे ।

—सर, मैं मस्त्रुत लेना चाहता हू । हरिया ने अपनी इच्छा प्रकट की थी ।

—सस्त्रुत ? उनकी आँखें फटी-की फटी रह गई थी । अदर अतडिया म
कहा मगोड-नी उठी थी ।

—जी । उसने सफाई दी थी, इससे मेरी अच्छी डिवीजन जा जायगा ।

हरिजन मानसिकता से ग्रस्त उस समय भी क कुछ नही कह पाये थे ।

—सर !

—अच्छा, सोचेंगे । उहाने उसे टाल देने की गरज मे कहा था ।

दा दिन तक वे हरिया के ही बारे म सोचत रहे थे । वे इस बात को नहा
पचा पा रहे थे कि एक क्षिप्तकार का पुत्र सस्त्रुत का पठन पाठन करे ! अतत
उहोंने उस मनाही कर दी थी, हरिया, तुम मस्त्रुत नही ल सकत ।

—कयी सर ?

—हर क्या का उत्तर नहीं दिया जाता हरिया । वे उस पर कुछ युक्तता पने
थ, कह जो दिया कि नही ले सकते ।

—तकिन सर, मैं ता आपको अपना गुरु मान चुका हू । हरिया भी ता जस
उनके पीछे हाथ धोकर ही पडा था ।

—मानने रहो ! कहकर क वहा म स्टाफ रूम की ओर मुड गये थे ।

दसवी के फॉम भरते समय हरिया न सस्त्रुत को एक अतिरिक्त विषय क रूप
म लिख दिया था । कुजिया जीर महायक पुग्गको के महार ही वह सस्त्रुत का
अध्ययन करता रहा था । अर्द्ध वार्षिक परीक्षा म वह उसमे शत प्रतिशत अक
लाया था ।

—धमदत्तजी ! विद्यालय क प्राचाय न उह अपन जाफिम न बुलवा कर
कहा था, यह बच्चा ता हीरा है । इम सस्त्रुत न देकर आपने अच्छा नही किया ।

वे वही बगले हाकने लगे थे । मन मारकर उह उम सस्त्रुत पढानी ही
पडी थी । बाड की परीक्षा म उसने उसम शत प्रतिशत अक प्राप्त किये थ । वही
नही बाड म भी उसे पाचवा स्थान प्राप्त हुआ था ।

दिन-मास बीतत गये । धमदत्तजी भी सब-कुछ भूल चुक थे । सात ाठ कप

बाद उनकी पदोन्नति हो गई। उह कोटाबाग के जूनियर हाई स्कूल का प्रधानाध्यापक नियुक्त कर दिया गया था। एक दिन हरिया उह मिलने वही आ पहुँचा।

—सर, मुझे पहचान रहे हैं? हरिया न उह दबवत प्रणाम करन के बाद पूछा था।

—अरे भाई! वे सचमुच ही उस गब्रू जवान को नहीं पहचान पाये थे, न जाने कितन ही।

—मैं हरीराम हूँ सर। मुस्कराकर उसने स्वयं ही उह अपना परिचय दिया था, कभी आपने।

—अरे हा। वे ठीक से बठ गये थे, कहो भाई, इन दिनों क्या कर रहे हो?

—जी, मैं पी० सी० एस० में सिलेक्ट हो गया हूँ। हरीराम ने बताया था।

—अरे! उनकी कुर्सी थोड़ी-सी हिन उठी थी, आओ, बैठो न!

हरीराम से उन्होंने कुर्सी पर बठन का बहुत आग्रह किया। किंतु उसने निवेदन किया था, गुरु के सामने कोई कुर्सी पर कस बठ सकता है सर?

धमदत्तजी एक रिक्शे स टकरात-टकराते रहे गये।

—देख के साब! रिक्शे वाला आगे चल दिया।

जिला शिक्षाधिकारी का कार्यालय आ गया था। उसवे अहाते म प्रवेश कर फिर से दुविधा में पडने लगे।

—क्यो हो! उहान कमरे के बाहर स्टूल पर ऊपते हुए चपरासी के कंधे पर हाथ रखकर पूछा, माहब है?

—हा, है। चपरासी फट बास से स्वर में बोला।

—मुझे उनसे मिलना है। वे अपने सिर की टापी ठीक करने लगे, कहो कि धमदत्त मास्टर आय हुए हैं।

—आप सीधे चले जाइये। चपरासी बीड़ी सुलगाने लगा, उह विचौलिय पसद नहीं हैं।

कमरे की चौखट पर जाकर धमदत्तजी खास-खखार दिये। अंदर काम कर रहे हरीराम की निगाह उन पर पड़ी तो वे कुर्सी से उठकर मुस्करा दिये। उन्होंने उनका हार्दिक स्वागत किया, आइय सर, चले आइये!

धमदत्तजी अन्दर कमरे में चल दिये।

—विराजिये! हरीराम न उनमें सोफे पर बैठने का अनुरोध किया।

उनके बैठने पर हरीराम भी बैठ गये।

हरीराम के उस ठाट-बाट को धमदत्तजी देखत ही रहे गये। चमचमाती हुई मेज! बड़िया चिस्म का फर्नीचर! फश पर बालिष्ठ भर मोटी वालीन! उनके सामने व अपने को एकदम बौना समझने लगे।

—कहिये सर! कैसे आना हुआ? हरीराम उनकी कुशल-खेम पूछने लगे,

घर म तो सब कुशन मगन हैं न ?

—हा । वे अपने मुख्य हाटा पर जीभ फेरन गये, मत्र गुशल ही ठहरा ।

ट्रिन् ट्रिन् । फान की घटी बजन लगी ।

—हैला ! लपककर हरीराम न फोन बाना न मटा निया । व फोन पर बतियान लगे । इधर, धमदत्तजी को अपनी व्ययता का बोध होन लगा ।

—ठीक है वो सब हो जायगा । फोन पर बात कर रहू मञ्जन मे कहकर हरीराम न फान का चागा श्रद्धिल पर रख दिया । वे धमदत्तजी की आर घूम गय, हा सर, फिर कम कष्ट किया ?

—मरी पेंशन का मामला दो वरम न अटवा पडा है । धमदत्तजी उनके आगे अपना दुस्तडा रान लगे, तुम जानो न आज की महगाद म ।

—छोटिये भी मर ! हरीराम मुस्करा दिय अत्र तो आप राम नाम की माला जपा कीजिय । आपकी देख रख आपके बेट-बटी किया करेगे ।

—अरे मर, यही तो राना है । धमदत्तजी न गहरा उच्छ्वास भरा, औला के नाम पर मेरा एक ही तो बेटा है । सो वा भी प्रेम्पुएशन के वाद से आवारा हो आया है ।

—अरे ! हरीराम चीन् पडे, आप ता ।

—मैंन कभी उसकी आर ध्यान ही नहीं दिया । धमदत्तजी पछताव की आग म दहवने लगे, जब इस बुढापे मे हम दोना ही ता उसकी सजा भुगत रहू हैं ।

हरीराम का पाव घटी के बटन पर जा लगा । अगले ही क्षण अदर कमरे म चपरासी आ गया ।

—बडे बाबू का भेजो ! हरीराम चपरासी म बान ।

बुछ ही क्षणो मे बडे बाबू अदर आ गय ।

—इनकी फाइल लाइये । हरीराम हड क्लक स बोन, पेंसिंग फाइला म कहा दबी पडी हांगी ।

—जी, आप ? हेड क्लक धमदत्तजी को दखने लग ।

—मैं धमदत्त हू । व धानी क छोर से अपना चश्मा साफ करन लगे, कोटा बाग के जूनियर हाइ स्कूल का ।

—आ, समझा ! कहकर हेड क्लक कमरे स बाहर चल दिया ।

—दखिए सर ! हरीराम न अपनी पीठ कुर्मी की पीठ स सटा ली, आपके मामल म मुयमे जो भी बन पड़ेगा, मैं कोई कसर नहीं छोडूंगा ।

धमदत्तजी सज्जित हाग लगे । उन्हाने गहरी माम छोडी, ठीक है बेट ! कर भला, हा भला ! नकी कर कुए मे डाल ।

—ये लोकोक्तिया तो बहून पुरानी हो आई हैं । हरीराम मुस्करा दिय, आज तो ।

बड़े बाबू उनकी फाइल को हरीराम की मेज पर रखकर बाहर चल दिये। व उस फाइल का अध्ययन करने लगे। एस म उनके चेहरे पर जनन भाव आ-जा रहे थे।

—टेढ़ी खीर है। हरीराम न वह फाइल रेक पर रख दी, आपने वर्षा पहले का दुब्यवहार जापकी सेवा-पुस्तिका में दज है।

—वही तो। वे वही बगलें झाकने लगे, कभी कभी आदमी।

—देखिये सर! हरीराम न वह फाइल फिर से उठा ली, मैं अपनी ओर से इस एट्री को दूर करने की कोशिश करूंगा। और कोई सेवा बताइये?

—बताया न कि मेरा इक्लीता बेटा घर में बड़े मक्खिया मार रहा है। धमदत्तजी के चश्मा पर लालच की परत चिपक आई, उसे अगर किसी स्कूल में।

—अनट्रेंड टीचर के रूप में लगा देंगे। हरीराम ने हामी भर ली, आप उमकी जार से एक आवेदन पत्र भिजवा दीजिये। मैं किसी महायता प्राप्त विद्यालय में लगवा दूंगा।

—ध-यवाद बेटे! धमदत्तजी कुर्सी से उठ खड़े हुए, बठिये न मर। हरीराम भी सीट से उठ खड़े हुए। माफ करेंगे। मैं तो आपको जलपात भी नहीं करवा सकता। क्याकि आप तो।

—नहीं नहीं। उहान हाथ हिलाकर मनाही कर दी, इसकी जरूरत नहीं है।

—ठीक है सर! आपका काम ही जायगा। हरीराम उह छोडन कार्यालय के गेट तक चल दिये। उहाने झुक्कर धमदत्तजी को अभिवादन किया।

—सुखी रहो! धमदत्तजी उह गदगद भाव से आशीर्वाद देने लगे। फूलो फलो!

जिला शिक्षाधिकारी का कार्यालय ऊपर रह गया था। धमदत्तजी अब माल रोड पर पंदल ही बस स्टैंड की ओर चले जा रहे थे। उनके मन मस्तिष्क पर महाभारतवालीन द्रोणाचार्य की छवि उभरन लगी। उसी को विश्लेषित करन हुए वे अपनी नाक की सीध में चलने लगे। □

अनवकाश

मुरलीधर शर्मा 'विमल'

एक दिन प्रातः हमारा नया पडोमी विरायदार कहता है—“भाई साव आपके इस मुहल्ले में भी चार रहत हैं।

बात सुन मुझे हसी आ जाती है। मैं कहता हूँ—“भाई इस चोर युग में शायद ही कोई ऐसा घर हो जिसमें इस युग धर्म की अनुपालना करने वाले न रहते हों।

‘जाप बात तो खरी कह रहे हैं मर घर में चोरी हो जाती तो कोई बात नहीं थी पर मरी इस सरकारी गाड़ी में स पेट्रोल की चोरी एक गंभीर मामला है जो मरी रोटी रोजी से जुड़ा है।’

‘आह तो गाड़ी में स पेट्रोल निकाल लिया किसी ने।’

यही तो बात है। गाड़ी में स यू पेट्रोल निकलता रहा तो मेरे साव कब तक मुझ पर भरोसा करेगा। भरोसा क्या एक दिन में कमाया जाता है?’

मुझे ड्राइवर अत्यंत समझदार लगता है। कुछ और सुनने की मुद्रा में मैं उसका मुंह ताकता रहता हूँ। वह आगे कहता है—‘भाई साव, एक निबंदन है आपसे गाड़ी आपका कमरे के सामने ही खड़ी रखा करती है, कृपया आप भी थोड़ी नजर रखना। मैं तो खैर सतक-सावधान रहूंगा ही।

वचन उस सरकारी ड्राइवर के प्रति मरा मन सहानुभूति से लवालब भर जाता है। चोर को रंगे हाथ पकड़ने में पूरी सावधानी बरतने का मैं उसे आश्वासन देता हूँ। मन-ही मन जनात चोर को गालियाँ निकालता हूँ। मरा मन एक अपराध-बोध में घिर जाता है। मरी नजर मर स्फूटर पर जा टिकती है जिसके लिए पेट्रोल, पेट्रोल-पम्प से कभी-कवार ही खरीदना पड़ता है। ज्यादातर तो पेट्रोल बचने वाले घर पर ही दे जाया करत है।

उस दिन के बाद गत विरात जब भी उठना हाता था उसकी गाड़ी खड़ी होने पर मैं अवश्य ही उस ओर चाखी तरह साक लता था। साचता था किसी

को रगे हाथ पकड़ लू तो मजा आ जाये, लेकिन कई दिन गुजर जाने पर भी मेगे पकड़ में न कोई रग आता है और न ही कोई हाथ !

एक दिन सुबह जब वह गाड़ी की सफाई कर रहा होता है, मैं ही पूछ लेता हूँ—“क्या भइ, तुम्हारी गाड़ी का पेट्रोल फिर तो नहीं चुराया किमी न ?”

वह खिला खिला-सा मेरी ओर बढ़ आता है।

“भाई साब, जब कोई नहीं चुरा सकता मेरा पेट्रोल। कल से मैं एक तरकीब निकाल ली है, वो डाल-डाल तो मैं पात पात। अब रात्रि को गाड़ी खड़ी करते ही पेट्रोल मैं स्वयं निकाल लेता हूँ और सुबह जाता हूँ तब पुन डाल देता हूँ। बस, न रहेगा वास न बजेगी बामुरी। वीन रातें वाली कर। आज से आप भी बफिक रहना-सोना।”

उसकी बात सुन मैं खुश हो जाता हूँ। पर मेरा अपराध बाध फिर भी कम नहीं होता। यदि मैं चोर को पकड़ पाता तो कितना अच्छा रहता ? मैं शका की दृष्टि से न देखा जाता, एक उपकार भी लाद ेता।

एक इतवारी शाम को टी० वी० फिल्म के मध्यांतर में मेरा एक परिचित आ टपकता है।

“तुम्हारे सामने यहा एक ड्राइवर रहता है ना ?”

“हां, कटो क्या बात है ?”

“उसके घर पर ताला लगा है। आय तब यह जरिवन उसे दे देना, कहना जयपुर वाले शर्माजी रख गये थे, बाकी वह सब समझ जायेगा।” इतना कह वह एक रहस्यमयी मुस्कान बिखेरता वहा में चला जाता है।

मैं अपन आपको हल्का फुल्का सा महसूसन लगता हूँ। उस दिन उपजा मेरा अपराध-बोध जान वहा तिरोहित हो जाता है। मैं खुश मूड में टी० वी० पर आरट विज्ञापनों को देखने लगता हूँ। मेरे दिमाग में पेट्रोल-चोर के रग और हाथ दोनों उभर जाते हैं, जिन्हें पकड़ने का इरादा त्यागता मैं उन्हें एक निराले अदाज में निहारने लगता हूँ। उसी समय वाइफ चाय ल आती है।

चाय पीत समय मेरे अपन रग मुझसे रूबरू होना चाहत है। मैं उन्हें भली प्रकार परख पाऊँ इसमें पूव ही फिल्म का शेप भाग चालू हो जाता है। मजबूरन मैं उन्हें लौटा देता हूँ अबकाश के क्षण आने तक। □

अपनी मिट्टी की गंध

अरनो राबर्ट्स

प्लेनम प्रवेश होने में पहले अकिता ने एक बार फिर पीछे मुड़कर उस ओर देखा जहाँ उसकी बहुत-सी महलिया और दास्त, मम्मी पापा और सुमित हाथ हिलाकर उसे विदा दे रहे थे। वह अदर आगर यान परिचारिका द्वारा बतलाई गई सीट पर आकर बैठ गई। वह अदर थिलिंग लग रहा था उसे। बचपन से ही उसके मन में साध था कि वह विदेश यात्रा पर जाय, प्लेनम उड़े—दूर बहुत दूर वादनी के ऊपर और लव-चोडे समुद्रा की पार कर त्रिदेगा में पहुँच जाय—नई मस्कृतियों और नए लोगो के बीच। उसे पता नहीं था कि एक दिन उसका यह सपना सच हो जायेगा। उस अमरिका को एक यूनिवर्सिटी की ओर में चाइल्ड सायकालोजी में आग की शिक्षा के लिये छात्रवृत्ति मिल गई थी। यह महज एक सयाग ही था कि उसने आवदन पत्र भजा था और उस डम एडवांस स्टडी का ऑफर मिल गया था।

अकिता एक गल्म कॉलेज में मामकालाजी में व्याख्याता थी। उसने एक वय पूव यूनिवर्सिटी टाप की थी और तुरन्त ही उसे व्याख्याता पद मिला गया था। उही दिना उसकी भुनावात डाक्टर परेश से हुई थी। बहुत ही हसमुख और जोली किस्म के डाक्टर परेश ने पहली भुनावात में ही उस गृह प्रभावित किया था। परेश स्थानीय अस्पताल में फिजिशियन था। कुछ ही दिना में परिचय दोस्ती और दास्नी प्यार में बदल गई थी। अकिता को यह मालूम था कि यह परेश को बेहूँ मिस करगी पर किसी तरह मना लिया था उसने स्वयं का। हालांकि परेश अकिता के विदेश जान के प्रति बहुत उत्सुक नहीं था पर वह अकिता के उत्साह को भग करना भी नहीं चाहता था।

जिम दिन अकिता ने परेश से विदेश जाने की बात कही थी तो वह भावुक हो उठा था। कुछ दर में मथत हान के बाद उसने कहा था—“म तुम्हारे उत्साह को भग करना नहीं चाहता पर जिम काम के लिए तुम वहाँ जाना चाहती हो वह

हमारे देश में गी हो सकता है और फिर तुम्हें वहाँ बहुत अच्छा नहीं लगेगा। मैं जा चुका हूँ विदेश। यहाँ जगा अपनापन, आत्मीयता और एडजेस्टमेंट वहाँ नहीं है। सब-कुछ बनावटी और बोगिल सा लगता है।”

“मैं अपना आप को एडजेस्ट कर लूँगी परेश। तुम मेरा इंतजार करना। तीन वफा यही चुटकी बजाने ही निम्न जायेंगे।”

एक बार पुनः समझाना का प्रयास किया था परशु न—“अकिता मैं तुम्हारे स्वभाव को जानता हूँ। तुम्हें वहाँ सब-कुछ अजीब और अटपटा लगगा। वे लोग जिन्दगी को सिर्फ पैसों से तोलते हैं और पैसों से ही परिभाषित करते हैं। हम लोग जिन्दगी के लिए जिज्ञान मानवीय गुणों को आवश्यक समझते हैं—जैसे नतिकता, चरित्र और सतोष, ये सब बातें उनके लिए अथहीन हैं।”

अकिता ने हसकर कहा—“इसमें मुझे क्या फर्क पड़ेगा? तुम चिंतित मत होओ परेश और फिर बहुत कुछ उन लोगों के बारे में अतिशयोक्तिया भी तो हो सकती हैं।” जाखिर परशु चुप हो गया था। वह जानता था कि अकिता ने जो कुछ सोच लिया वह उसे जरूर पूरा करेगी—वह स्टेट्स जरूर जायगी। वह अपनी धुन की पक्की थी।

सारे रास्ते अकिता मोचती रही थी अमेरिका जैसे भव्य देश के बारे में। डूबी रही मधुर कल्पनाओं में। और जब अमेरिका की धरती पर प्लान उतरा तो उसे लगा वह किसी स्वप्निल और मायावी नगरी में आ गई है। डेर सी भीड़ के वावजूद हर जगह अनुशासन और व्यवस्था दिखाई दी। लोगों के बात करने का तरीका बड़ा शालीन था। कोई ऊँचे स्वर में बालता या झगड़ता नजर नहीं आया। सड़कों और बाजारों की सजावट और सफाई देखते बनती थी। लोगों का कपड़े पहनने का तरीका, उनका स्वास्थ्य और उनकी विनम्रता से बहुत प्रभावित हुई।

एयरपोर्ट पर सायकलोजी विभाग के कुछ शोध छात्र छात्राएँ और जूनियर प्रोफेसर्स उस लेन जाये थे। उनसे मिलकर वह बहद प्रसन्न हुई। उमें ठहरने के लिए कॉलेज हॉस्टल में फ्लट दिया गया, जहाँ अधिकांश रिसर्च स्कॉलर्स ही थे। छोटे से फ्लैट में सभी आधुनिक सुविधाएँ थी। कुकिंग के लिए भी साधन उपलब्ध थे।

दो-एक घंटा साथ रहकर उसे रिसीव करने आये लोग चले गये। स्नान आदि से निवृत्त होकर अकिता ने डायनिंग हाल में जाकर खाना खाया और वापस अपने फ्लैट में आकर सो गई। लंबी यात्रा के कारण वह काफी थक चुकी थी इसलिए वह पूरे पाँच घंटे मौसी रही। जब सोकर उठी तब शाम ढल रही थी—अजीब-सी घामोशी व्याप्त थी पूरे हास्टल में। भारत में हास्टल्स में जो शोर-शराबा और रौनक होती है और बात चीत के दौर चलते हैं या खाली समय में गप्पें मारी जाती हैं—हसी मजाक के दौर चलते हैं। यहाँ वैसा कुछ दिखाई नहीं

दे रहा था अकिता को। शायद अधिकतर लोग बाहर जा चुके थे या अपने-अपने कमरा में बंद थे। उस बात दिग्ग गया था कि वहाँ कोई सर्वेंट नहीं था—सब कुछ अपने ही हाथों करना पड़ता था—मलफ़ मविग। इसलिए उसे उठकर बेफ़टरीया में जाकर काफी पीनी पनी। यह काफी उम्र एकदम बेस्वाद और उमजा लगी—सुबह के खान की तरह। अकिता को कुछ अटपटा लगा पर उमन साचा वह जल्दी ही इन सबकी आदी हो जायगी।

दिन-भर लाइब्रेरी में मोटी-मोटी पुस्तकें पढ़ना और हर तीसरे दिन ग्रुप में डिस्कस करना। शुरू में तो यह काम रोचक लगा पर बाद में यह सब मोनोटोनम लगन लगा। लाइब्रेरी में हा या लान या कारीडोर हो—जहाँ मौना मिलता अमरिगन युवक-युवतियाँ व अन्य यूरोपीय देशों के लोग एक-दूसरे का चुम्बन लन में नहीं चकते थे। अकिता को यह सब बड़ा अटपटा और हास्यास्पद लगता था। भारत में ऐसा कहीं देखने को नहीं मिलता था— यहाँ आकर उस महसूस हुआ कि ये परतिशील बड़े जान बाले दश सावजनिक शानीनता में कितने पीछे थे। उम दिन तो वह हयको-बक्की रह गई जब एक नीप्रा युवक ने बात करन करन उमका हाथ अपने हाथों में लेकर दबा दिया। वह छिटक कर दूर खड़ी हो गई।

बाट हैप्पड ? दिस इज आल कामन हीयर !”

अकिता की इच्छा हुई उसका मुँह नोच ले और कह— भाड में जाओ तुम और तुम्हारे तरीके !” प्रत्यक्ष में बोली—“वी इडियस डाट लाइव एंड फालो सच थिंग्स !” उसका मूँह आफ ही गया और वह अपने फलट में आकर बिस्तर पर लट गई। रह रह कर उम अपना देश भारत याद में रहा था—जहाँ हर चीज में अपनापन होता है और इतना दुस्साहस तो किसी में नहीं हाता कि किसी का भी हाथ पकड़ ले काइ। एकदम जकलापन-मा लगा उमे और बेहद बोझिल हा उठा उसका मन।

दोपहर की डाक से परश का पत्र आया तो अकिता को लगा जम बोझिल वानावरण में ताजगी भरा एक ठंडी हवा का झंका आ गया हो। उसने पटपट पत्र खोला—बेहद प्यारा-सा, आत्मीयता और प्यार भरा पत्र था। डेरा सलाह दी थी परश ने—हर पब्लिक में फिक्र झलकती थी। अकिता ज्यादा परिश्रम मत करना रात दर गय तक पढ़ाई मत करना सहत का ख्याल रखना सरदी से अपना बचाव रखना कोई भी प्रॉब्लम हा तो मरे मित्र बेंजामिन से सम्पर्क कर लेना वह थोस्टन में डाक्टर है ! डेरा सलाह और फिक्र वाला वह पत्र अकिता को बहुत अच्छा लगा। भावावेश में वह पत्र को बतहाशा चूमन लगी फिर सहसा ही उमे अपने इस पागलपन पर हामी आ गई। पम से परेश का एक घूबमूगन फोटो निकाल कर देखने लगी वह। साँचे लगी वह—सचमुच जमीन और आसमान का फज है पूरब और पश्चिम में। महा प्यार का अर्थ कुछ और ही

या। एक परेश है जिमन अपनी भीमा और मर्यादा या उल्लघन करने का प्रयास कभी नहीं किया।

पत्र उसने लिफाफे में रखकर दडहम की खिड़की खोल दी। बाहर बड़ा सा बगीचा था। तरह-तरह के फूल खिले हुए थे हल्की-सी धूप बिखरी हुई थी सार माहौल में। उसकी इच्छा हुई जपन बाला को धोकर बाहर लॉन में जाकर सुखाये। तभी उसकी सहेली मनसी की सलाह याद आ गई जिसने हिदायत दी थी कि वह अपन लव और घन वाले बालों को बाहर न सुखाया करे वरना किसी की नजर लग सकती है। अमेरिका के लिये तो विशेष रूप में उसने हिदायत दी थी कि वहाँ अपने खुल बाल किसी को न दिखाये पर विदेशी जल मरेंगे एम घटाआ जैसे बाल देखकर। अकिता को लगा—अपने देश में चने आये ये छोटे माट अग्रविश्वास भी जिदगी के जैसे अहम हिस्सा बन चुके हैं—यदि इनको निरर्थक समझकर जिदगी से निकाल दिया जाये तो शायद जिदगी का रंग कुछ कम हो जाये।

फूला और पड़ा के अलावा नीला आकाश अकिता को अच्छा लगा—पर उसे अनुभव हुआ यह आकाश भी विदेशी है। भारत में अपने कमरे की खिड़की से वहाँ के नीले आकाश का देखना कितना अच्छा लगता है—वह आकाश आत्मीय लगता है।

कुछ एक लागा का छोड़कर अकिता की घनिष्ठता किसी से नहीं हुई। पाकिस्तान से जाई सुरैया ने उससे घनिष्ठता का प्रयास किया, पर कुछ ही मुलाकातों में अकिता को लगा सुरैया और उससे विचारों में जमीन-आसमान का अंतर था। उसने सुरैया से किनारा कर लिया। वैसे भी अकिता रिजब नेचर की थी। मित्रता के मामले में उसके अपने मानक थे। उसके विचारों से मेल खाता कोई नहीं मिलता तो वह रिजब रहना ही पसंद करती थी।

गहरी नीली आँखों वाली सिम्पी बानर अकिता का बहुत अच्छी लगी। शीघ्र ही दोनों में घनिष्ठता हो गई। सिम्पी बहुत भावुक लड़की थी—वह एक मध्यम परिवार की थी। वह अधिकांश पढ़ाई की बातें करती या फिर इडिया की। अकिता का साडी पहनना और सादगी से रहना सिम्पी को बहुत भाया। उसने अकिता को अपने प्रेमी जकरसन शाप के बारे में भी बताया। वह इजीनियर था।

एक दिन सिम्पी अकिता के फ्लैट में उदास सी आई। कुछ देर वह शांत बठी रही फिर सहसा ही अकिता से चिपटकर बच्चों की तरह रोने लगी। 'क्या हुआ सिम्पी बाप आर यू वीपिंग ?' अकिता ने सात्वता दी तो सहम कर सिम्पी ने बताया कि वह प्रेगनट थी और उसका प्रेमी शाप उससे शादी करने के बजाय चाहता था कि वह एवाशन करा ले। अकिता यह सुनकर सन्न रह गयी। उसे लगा उसका मस्तिष्क काम करना बंद कर दगा कसी अजीब कट्टी है यह भी

जहाँ काम सम्बन्धों की उम्बुक्तता ने सारे समाज का खोखला कर रखा है जहाँ एवाशन और तलाक रोजमर्रा की जिंदगी का अंग बन चुके हैं डेटिंग के बगर वहाँ किसी के दिल में प्यार बनपता ही नहीं है । जहाँ रफ और हत्यायें माघारण सी घटनायें हैं जहाँ नैतिक मूल्यों का कोई अस्तित्व दिखाई नहीं देता जहाँ रिश्ता का कोई धरातल नहीं है जहाँ माता पिता और बच्चों में प्रेम नहीं मात्र शब्द औपचारिकतायें हैं जिस दिन ये औपचारिकतायें टूटती हैं—सगरे रिश्ते भी टूट जाते हैं । बहुत तरस जाया उस सिम्पी पर । उसे समझ में नहीं आया कि वह कैसे सिम्पी को सात्वना दे । फिर भी उसने सिम्पी को ढाढस बधाया । लेकिन उसी शाम उसे हृदय विदारक समाचार सुनने को मिला—सिम्पी न जहर पीकर सूसाइड कर लिया । अकित्त जट रह गई । उसका मन में डेर सारी करणा उमड़ आई दिवगत सिम्पी के प्रति । वह साचन लगी—प्रगतिशीलता के नाम पर नैतिक मूल्यों की कैसी धज्जिया उड़ रही हैं यहाँ पर नारी कितनी टूटी हुई और विवश है । अपने दान्नीन वर्षों के नवे प्रवास के दौरान पता नहीं क्या-क्या और उस देखना होगा—एस हादसे घटनायें सम्बन्धता के नाम पर भोडापन, आधुनिकता के नाम पर पाणविकता कितना अच्छा है अपना देश जहाँ जीवन के हर क्षण में नैतिक मूल्यों का अस्तित्व है । क्या वह यह सब कुछ देखकर पढ़ पायगी ?

एक प्रोफेसर की नटकी की बडिंग पार्टी में अकितता की जाना पडा । वह यही सोचकर चली गई कि वहाँ के कुछ सामाजिक तौर तरीकों में सम्बन्ध में कुछ जानकारी मिलेगी । बडी भय पार्टी का आयोजन था । सजावट देखते ही बनती थी । शराब के दौर चल रहे थे । अकितता को जकताहट होने लगी । तभी पाप म्यूजिक पर नृत्य का दौर चलने लगा । नशे में डूबे लोग उल्टे मोध हाथ पाव फेंककर नाचने लगे । कुछ लोगों ने अकितता को भी बाहा में लाने नाचने की पेशकश की । लेकिन वह छिटककर अलग हा गई । लोग उस पर हसन लगे । अकितता को रलाई फूटने लगी । गुस्से में काप गया उसका शरीर । वह तुरन्त वहाँ से रवाना हो गई । अपने कमरे में आकर वह बिस्तर पर गिर पडी और फूट-फूट कर रोने लगी । कितनी घबरा और अकली थी वह कोई स्नह का एक शब्द कहने वाला तक नहीं था । रोने-रोते सोचने लगी क्या आत है योग अपना दसा छोडकर यहाँ ? क्या मिलता है यहाँ आकर ? उस रह रह कर अपना घर अपना भारत अपना परस याद जान लगे । सहमा उसने एक तिणम लिया और आमु पाछ दिया ।

सप्ताह भर बाद भारत सौट रही थी । छोड आई अकितता अमेरिका और वहाँ की कट्टु यादें बही । जल्दा से अपने दस पढ़कर वह उम्बुक्त साग लना चाहती

थी, उस नीले आराण को देखना चाहती थी जो बेहद अपना था और सबसे धड़कर वह परेश को आश्चर्यचकित कर देना चाहती थी जो उससे अमेरिका जाने के विलंबुल पक्ष में नहीं था। परेश से मिलकर कहना चाहती थी कि वह कितना सही था और वह कितनी गलत थी। जो यहाँ भारत है वा बहाँ नहीं है—हो भी नहीं सकता—क्योंकि वे जिंदगी नहीं जीते—वे बल घसीटते हैं जिंदगी को भौतिकता के गुलाम बनकर। □

इस धरती की सन्तान

राधाकिशन चादवानी

मैंने जैसे ही घर में प्रवेश किया कि मरी वहिन परमजीत ने सूचना दी—“आपका दोस्त जशोक जाया है और आपका इन्तजार कर रहा है।” मैं फौरन ड्राइंग रूम में चला गया। जशोक सोफा पर बठा कोई मँगजीन देखने में यस्त था। मुझे दखत ही वह मुस्कराया और उठकर खडा हो गया। मैं जागे बढकर उसे अपनी बाहा में भर लिया— ‘आज कितने वक्त वाद देख रहा हूँ तुम्ह, अशोक।’

हम दानो सोफा पर बठ गए उसन एन ‘इनवीटेशन काड देत हुए कहा— ‘मधु की शादी है, तुम्हे ‘इनवाइट करन आया हूँ, सुरजीत।’
‘जच्छा। मैंने बहा और इनवीटेशन काड लकर खालकर देखा, बहुत सुदर था—‘मधु इतनी बडी हो गई,’ मन कहा—‘मेरी गोद में आकर बठती थी।’

‘हा सुरजीत, मधु अट्ठारह साल की हो गई है। तुम तो जानत हो बाबूजी के बाद मैंने ही मधु को अपनी लडकी की तरह पाला-पोसा है। मा की इच्छा है कि उनकी आख बाद होने से पहले ही वे मधु की शादी कर द।’
‘और तुम्हारी।’ मैंने पूछा।

‘वह भी हो जायेगी यार। तुमने तो घर आना जाना ही छोड दिया है सुरजीत। कुछ समय पहले हुए सांप्रदायिक दगो व कारण बडी तजी से बदली हालता न हिंदू और सिक्खो के मन में जो जहर का बीज बोया है उसे जड से उखाड फेंकन की कोशिश करने की बजाय कुछ स्वार्थी लोग उस हिंदू और सिक्खो व खून में सींच रहे हैं।’

‘कहत तो तुम ठीक ही अशाक। पर हम भी तो बचपन के दोस्त है। एक ही स्कूल में साथ साथ पढे, कॉलेज में साथ रहे और हॉस्टल में भी एक ही कमरे में भाइयो की तरह रहे। हा, उसक बाद मैं अपन धधे में लग गया और तुमने

नौकरी कर ली। आना जाना एक दूसरे के यहाँ और मिलना जुलना जरूर कम हो गया, पर हमारी दोस्ती में तो कोई फर्क नहीं आया।”

“हाँ, सुरजीत, बाहूँ गुरु हमारी दोस्ती की तरह सब हिन्दू और सिक्खा के सम्बन्ध जो सदियों में मधुर रहते आए हैं सदा कायम रखें। अच्छा, मैं चली।”

“अर! ऐसा कैसे होगा? बाता में तो मैं भूल ही गया।” सुरजीतसिंह ने कहा और अपनी बहन को आवाज दी—“परमजी ओ ए परमजीत।”

“आई वीरजी।” कहते परमजीत रसोई से निकलकर उसके पास आकर खड़ी हो गई—“क्या है वीरजी?”

“ओ ए परमजीत, अशोक घातर कोई लस्सी बस्ती ल्या भई।”

“अभी लार्ई वीरजी।” कहकर वह जल्दी से अंदर चली गई और थोड़ी देर में लस्सी के बड़े-बड़े दो गिलास लाकर उनके सामने रख दिए।

अशोक कुछ क्षण तो परमजीत को देखता रहा, फिर बोला, “परम भी तो अब बड़ी हो गई है।”

परमने अपने सम्बन्ध में सुना तो एकदम से शरमाकर अंदर चली गई। दोनों दोस्ता न लस्सी पी और फिर उठ खड़े हुए—“चल यार अशोक, मैं भी तुम्हारे साथ बाजार तक चलता हूँ।” और दरवाजे तक पहुँचकर सुरजीत सिंह ने आवाज दी—“परमजीत, ओ ए परमजीत, दरवाजा बंद कर देना हम जा रहे हैं।”

परमजीत शायद कमरे के अंदर दरवाजे के पीछे ही खड़ी थी। वह एकदम से सामने आकर खड़ी हो गई और जब तक अशोक ने अपना स्कूटर स्टार्ट नहीं किया, वह दरवाजे के बीच में खड़ी उँहें देखती रही, मुस्कराती रही।

घर वापस आत आत अधेरा हो चुका था। आगन में परमजीत तबूँर में रोटी सेंक रही थी और बेबे सिंगडी पर से सरसा के साग की देगची उतार कर उसमें लहसुन का छौंक लगा रही थी। पापाजी बरामदे में रम्ये रेडियो के पास बैठे ऑल इण्डिया रेडियो जलधर से पजाबी में आ रही खबरें सुनने में व्यस्त थे।

मैं आकर बरामदे में पड़े एक मुडके पर बैठ गया। परम ने मुझे देखते ही कहा—“वीरजी, आज जलधर से चाचाजी की चिट्ठी आई है।”

परम की बात मैंने सुनी और देखा कि बेबे की आँखों में कुछ अधिक चमक आ गई है। मैंने पूछा—“शाम को तो मुझे नहीं बताया?”

उत्तर परमजीत ने ही दिया—“आप तो वीरजी जाएँ और अपने दोस्त अशोक के साथ बाता में लग गये और फिर उसके साथ ही चले गये, जिसके अब आ रहे हैं।”

“यह अशोक, लाला भगवान दाम का ही पुत्र है न? बेबे पूछती है।”

“हाँ बेबे। मैं संक्षिप्त सा उत्तर देकर चुप हो जाता हूँ।

“पर पुत्र, आज देश में पानी जल रहा है। हिन्दू और सिक्खा के पुराने

सम्बन्ध तो घटम ही हो गये हैं। तू इस तरह मैं वय की बात बीच में ही काटकर कहता हूँ—'नहीं अब, सम्बन्ध तो वे ही है, सिर्फ कुछ स्वार्थी लोग का ही काम है जो आपस में द्वेष पदा करा रहे हैं।' 'लो वीरजी। परमजीत शायद अन्दर से घत साकर मुझे द रही थी। 'पुत्तर।' पापा जी अपना चश्मा ठीक करत हुए बहन है। 'तू घत पढ़न, तब तक मैं जलघर से खबरें सुन लू। सुना है, आज फिर बहा पर कुछ हत्याए हुई हैं।'

'ओ हो। एसा भी क्या? आप तो हर वक्त रेडियो स चिपक हुए हैं।' वेवे कुछ नाराज सी होती हुई कहती है 'पढ़ पुत्तर, तू पढ़, देख क्या लिपा है तरे चाचा ने।

पापाजी नाराज होकर रेडियो बन्द कर देत है। म घत पढ़न लगता हू। घत म दो बाते विशय लिखी है—'परमजीत के लिए अच्छा लडका देखा है, और उन्होंने मुझे बहा आकर धधा करने की सलाह दी है।' 'मैं तो यहा दिल्ली मे ही चगी हूँ मैं पजाब नही जाऊगी।' परमजीत एतान करती है।

यह सुनकर पापाजी एक गहरी सास खींचत है। अब परमजीत की तरफ कुछ शोख नजरों से देखती है। मैं भी अपना ऐलान करता हूँ—'मैं भी बहा जाकर कोई धधा नही करना चाहता। हम लोग यहा ही रहग दिल्ली म।' परमजीत मेरा ऐलान सुनकर गुलाब के फूल-सी घिल उठती है और मैं मुस्कराने लगता हू। वेवे कुछ नाराज होकर मुह फुलाकर बैठ जाती है, पर पापाजी कुछ भी नही कहते, वे बिलकुल शांत आखें बन्दकर, कुछ गहरी सोच म डूब जाते हैं।

वेवे कुछ नाराज सी कहने लगती, 'इहे क्या है, यहा रहगे। यहा किसी दिन वाहपुर् न करें भले ही कुछ हो जाए पर य यही रहेग हुह।' वह रोने लगती है। पर पापाजी शांत हैं। पर पापाजी की एक बात समझ म नही जाती। एक तरफ पजाब से इतना मोह कि आँल इण्डिया रेडियो जलघर से पजाबी मे समाचार सुन बिना आराम से बठ भी न सके और पजाब म हिंदू और सिक्खों की हत्याओं की बातें सुनकर उनकी आखें आब बहाना शुरू कर दे और प्रात उठकर गुधदारे जाकर मत आत्माओं की शान्ति क लिए प्रायना करें। पर अगर वेवे उहे पजाब चलने क लिए कहे तो वे कहत हैं— पुत्तर। पजाब से मुहम्बत इस एक दिन मैं उनस पूछता हू तो वे कहत हैं—

पुत्तर। पजाब से मुहम्बत इस लिए कि वह हमारे शरीर का टुकडा हैं। शरीर को अगर कोई सुई भी चुभ जाए तो कितना दद होता है। यह तो स्वार्थी लोग का रचाया हुआ तमाशा है पर तमाशा बन गय हैं हम हिंदू और सिक्ख। हा कुछ परिवार जरूर पजाब चले गए

हैं पर उनके सम्बन्ध क्या यहाँ रहने वालों से खत्म हो गए ? तो फिर तुम ही बताओ हमें उनकी चिन्ता क्या न होगी ? तुम्हारी बेव कहती है हम भी पंजाब चलें, पर मैं पूछता हूँ आखिर क्या ? आखिर क्या अपना यह शहर और बाप-दादा की ज़ायदाद बेचकर पंजाब चलें ? आखिर क्या ?” वे शायद भावुकता के बहाव में बहते जा रहे थे कि उन्हें खासो न आकर तग किया और उनके शरीर का खून सिमट कर उनके चेहरे पर फैलन लगा ।

एक दिन शाम को अशोक अपनी बहन के विवाह की मिठाई देने के लिए हमारे घर आया । मैं ड्राइंगरूम में बैठा उसके साथ बातें कर रहा था कि परमजीत ने चाय और विस्कट की ट्रे लाकर मेज पर रख दी और फिर मेरे पीछे आकर खड़ी हो गई ।

चाय पीते-पीते मैंने नोट किया कि अशोक बार-बार मेरी तरफ देखकर मुस्करा रहा है । अचानक विजली के करेण्ट का एक विचार मेरे मस्तिष्क में कौंध गया—“मेरे पीछे परमजीत खड़ी है, शायद वह भी अशोक को देखकर मुस्करा रही हो !” और यह विचार आते ही मैंने कहा—“परमजीत ” पर शायद परमजीत ने सुना नहीं ।

मैंने कुछ ऊँची आवाज में कहा—“परमजीत !”

“जी जी वीरजी !” मानो उसने नींद से जागृत हुए कहा ।

“जा बेबे को बुलाकर ला,” मैंने कहा, वह अदर चली गई और थोड़ी देर में बेबे को साथ लेकर आई । मैंने मिठाई का डिब्बा बेबे को दाने हुए कहा—“बब, अशोक अपनी बहन के विवाह की मिठाई लेकर जाया है ।”

बेबे ने मिठाई के डिब्बे को ऐसे देखा मानो उसमें बिच्छू भरे हुए हों और फिर अशोक की तरफ उसे देखा माना वे उसे जानती ही न हों और पहली बार देख रही हों ।

मैंने कहा—“बेबे, यह अशोक है मेरा दोस्त, लाला भगवानदास का लडका । हम दानो कॉलेज तक साथ पढ़े हैं । तुम इसे पहचानती नहीं क्या ?”

“हा हा पहचानती हूँ ।” उसने व्यग्न से कहा “पहचानती हूँ ।” उसने दीवान पर बैठते हुए मिठाई का डिब्बा कुछ दूरी पर रख दिया । उसके ललाट पर कुछ रेखाएँ उभरीं और अशोक ने बड़ी गहरी नज़र से देखते हुए कहा—“अब तो हिंदू और सिक्खों के पुराने सम्बन्ध ही खत्म हो रहे हैं ।”

“ऐसा न कहिए बेबे !” अशोक ने धीरे से कहा, “हिंदू भी वही हैं तो सिक्ख भी वही हैं काँई फक नहीं और न ही फक सम्बन्धों में आ सकता है ।

“खर, तुम क्या करते हो ?” बेबे ने पूछा ।

“मैं यूनीवर्सिटी में लेक्चरर हूँ ।” अशोक ने कहा ।

“मैं भी इस साल यूनीवर्सिटी में दाखिला लूंगी।” परम बोली।

“क्या करागी इतना पढ़कर।” बबे ने कुछ डाटत हुए स कहा, “बहुत पढ़नी, अरु घर में रहकर काम-काज सीखा।”

बस उस दिन बात आई गई हो गई।

उस बात का कुछ ही दिन बीत हागे कि एक दिन शाम के समय अशोक अपनी माँ के साथ हमारे घर आया। पापाजी उम समय घर में नहीं थे। मैं, बबे और परमजीत थे। हम सब डाइंग रूम में बैठे बातें कर रहे थे।

कुछ समय से हिंदू सिक्खों के बीच सम्बन्धों में कमलापन कुछ अधिक बढ़न लगा था। बबे के मन पर भी हिंदुओं के लिए कुछ बदलापन आने लगा था। वह अनमनी-मनी अशोक की माँ के साथ बातें कर रही थी।

दरवाजे पर कुछ जाहट हुई। लगा कि पापाजी घर में दाखिल हो चुके हैं। थोड़ी देर बाद पापाजी ने खामकर डाइंग रूम में बंदम रखा। अशोक और उसकी माँ उठकर खड़े हो गये।

अशोक की माँ ने सिर का पल्लू ठीक करने हुए दाना हाथ जाडकर कहा—
“नमस्तो भई साहब।”

पापाजी ने ध्यान से देखा “अशोक की माँ हैं।” बबे ने कहा।

“लाना भगवानदास की घरवाली?” पापाजी ने पूछा।

“हां।”

“भई लाला के साथ तो हमारे बहुत सोहण रमूंगे थे।” उन्होंने सोफे पर बैठन हुए कहा।

अशोक की माँ कहने लगी—“भई साहब, आज मैं आपमें कुछ मागने आई हूँ। पूरे विश्वास के साथ कि आप मुझे नाउम्मीद नहीं करेंगे।”

मैंने राजभरी दृष्टि से परमजीत की तरफ देखा तो उसने शरमाते हुए मुस्कराकर सिर झुका लिया।

अशोक की माँ कहने लगी—“मैं आपमें आपकी परमजीत मागने आई हूँ।” और उन्होंने अपना पल्लू फँसा लिया, “उस मेरी ओनी में डालकर मेरी झाली खुशियाँ भर दीजिए भई साहब।”

पापाजी कुछ माँच में डूब गये। बबे की तरफ देखत हुए बात—“तुम्हारी क्या राय है देवेन्द्र?”

बबे भी बहुत विचारमग्न और गम्भीर थी। वह बोली— इस वक्त जबकि हिंदू और सिक्खों के बीच रजिज बढ गइ है, हम सिक्ख परिवार की लहकी का क्या हिंदू परिवार में करना उचित होगा?”

पापाजी बबे की बात सुनकर बाल—“देवेन्द्र तुम यह क्या भूल जाती हो कि

इस देश की मिट्टी में दुश्मनी का बीज बोने से वह कभी परवान नहीं चढ़ सकता। पगली, इस मिट्टी में वह तासोर है जो विन्शी जातियाँ की दुश्मनी को भी जड़ों से उखाड़कर अपने मजबूत कर लेती है। बाकी इस घरती की सन्तान में, एव ही माँ के बेटों में कैसा वैर, कैसी दुश्मनी! भाई-भाई का झगडा ता पानी के बुलबुले सा होता है। बाहगुर न परमजीत के लिए घर बैठे ऐसा योग्य वर भेज दिया है। हमारी परमजीत भागा चली है।”

इतना सुनत ही परमजीत शरमाकर उठकर अन्दर दौड गई।



चढते दिन की गिरफ्त

पुष्पलता कश्यप

आज जब वह साँवर उठा ता उसका मूड बहुत अच्छा था। रात उस अच्छी नींद आई थी। हवा होने से मच्छरो ने भी ज्यादा तग नहीं किया था। उसका हाजमा भी दुस्तन था।

तीन साल की सोनू उसे जागा हुआ देखकर उसके पास आ गई। उसने हस कर 'गुड मॉनिंग' करत हुए उसका स्वागत किया और बड़े प्यार से अपन पास बिठा लिया। सोनू न भी उसका अनुकूल रख दखा, तो उसको अपनी 'पप्पी नकर' लाड किया और उसके इद गिन् ठुमक-ठुमक कर इतराने लगी। सोनू लगातार कुछ-न-कुछ बतियानी जा रही थी।

'कितनी प्यारी बच्ची है। कसी प्यारी-प्यारी बातें करती है। कमी ता चवल चुलबुली और शोख है। कितनी मीठी महीन आवाज म वालती है—बोयल सरीखी, मधुमिथित।' उसन साचा।

उसन सोनू को पकडकर उसे ढेर-सा प्यार कर डाला।

'सोनू बट चाय बन गई क्या? जाकर अपनी मम्मी से बाल ठा।'

सोनू उसकी गिरफ्त से छूटी तो भागकर भीतर सीधी रसोइ मे पहुची।

'पापा उठ गए पापा उठ गए।'

सोनू की मम्मी न कहा "चाय तयार है। सोनू, पापा को बुला ता। अगुली पकडकर लाना।'

सानू मस्ती म झूमती सी उसके पास आई और उसकी अगुली पकडकर रसोई की ओर खीचने लगी। वह भी कच्चे धागा म बधा मा पीछे-पीछे बढा।

'शुभप्रभात हुजूर।' पत्नी ने नहा।

'शुभप्रभात सरवार।' उसने मौज म आकर प्रत्युत्तर दिया।

'आज ता साहब बडे मूड म हैं।'

'आपकी दुआ है।'

“सोनू, पापा को गुड मॉनिंग की बेटे ?”

‘यह अदायगी हमम आपसे भी पहले हो चुकी है। आज उठत ही सोनू का मुह दखा है, दिन बडा अच्छा जाएगा। आज बहुत से जरूरी काम निपटाने है। सब फतह है। उसन उत्साह से भरकर कहा।

“अच्छा, अब मरे हाथ की बनी ‘चाह’ नोश फरमाइये।” पत्नी ने यह कहते हुए चाय की सुवासित प्याली उसके आग धर दी। उसका दिल वाग-वाग हो गया।

“पत्नी ही तो ऐसी।” उसने मन म सोचा।

“बबलू—बटी कहा है ?” उसन चाय की चुस्की भरते पूछ लिया।

“नहा घोकर, नाश्ता करके, पढने बठ गए है।”

“कितने मुलक्षण होनहार लडके हैं।” वह गौरवान्वित हो उठा।

चाय पीकर उमन शरीर को जरा सुस्ताने डाल दिया। उसी दौरान उसने आज का कायक्रम भी बना लिया। फिर झटके से उठकर लेट्रिन चला गया। बाहर आकर हाथ मुह धोये। तब तक गरमा-गरम चाय की दूसरी प्याली सामने आ गई थी।

उसके बाद वह गुनगुनात हुए बाथरूम मे जा घुसा। और देर तक ठंडे पानी से नहाता रहा। ताजादम होकर बाहर निकला। शरीर हल्का-फुल्का लग रहा था। कुछ ही देर म वह तैयार होकर चौके म पहुंच गया।

पत्नी न थाली मे सब्जी लगा दी और गरमा-गरम फुलके उतारकर उसे खिलाने लगी।

‘सब्जी बहुत स्वादिष्ट बनी है। तुम फुलक बहुत अच्छे सेवती हो, फूले-फले और करारे। खस्ता कचौरिया का-सा स्वाद देत हैं।’

पत्नी मुदित मन उसे मनुहार स खिलाती रही।

‘बस भई, पट भर गया। बहुत खा लिया आज।’

पत्नी, बबलू—बटी को खान के लिए आवाज लगा देती है।

“आकर खा ला दोना, स्कूल के लिए दर हो जायगी।”

सोनू न तो उसके साथ ही खा लिया था।

उसे आज बहुत स आवश्यक काय करने है। वह बाहर निकलने की तयारी म जुट जाता है। तभी सोनू पास आकर खडी हो जाती है। वह उमे माद म उठा कर प्यार करता है।

पत्नी भी हाथ पोछनी बाहर निकल आती है। सीफ साफ कर उस देती है।

‘सोनू, पापा का जाने दे बेटे, देर हो रही है। इसके लिए आप बहुत सारी पापिन्स, टापिया और बिस्किट्स खाना।’

“भई, जरूर लता जाऊगा, अपनी अच्छी-सी, बहुत प्यारी सी, गुडिया जैसी बेटे के लिए।”

सोनू—'पापा खिलीने और गुब्बारे भी लाता ।'
 'अच्छा बट पिलोन और गुब्बारे भी लाऊगा ।'
 फिर 'पप्पी के आदान प्रदान व साथ अपनी डेर-सी फरमाइशा पर उसकी
 स्वीकृति लती सोनू गोद मे नीच उतर आती है ।
 वह भी पत्नी और बच्चा को टाटा वरत साइकिल उठाकर बाहर निकल
 पडता है ।

निकलत निकलत वह 'अज्ञात स दिन अच्छा गुजरन और काम बनन की
 प्रापना भी कर लता है, सस्कार-वश । मन-ही मन अनायास ही कुछ गुनगुनाता
 है और आदतन नमन भी करता है । रास्त म जहा वही कोई मन्दिर, मूर्ति, किसी
 देवी-देवता का थान मुकाम नजर जा जाता है उमका सिर स्वत झुक जाता है
 मुह से कुछ बुदबुदाहट भी फूटती है, सस्कार-वश ही ।
 सबसे पहल वह जिला कोपाधिकारी (नगर) म मितन की सोचता है । भवन
 निर्माण ऋण अग्रिम व आवदन का दिए पाच साल स उपर हो गया । अभी हवा
 भी न लगी थी । कल उनक एक निकटस्थ व साथ उनम उनन घर पर मुलाकात
 की थी । सारी बात को बहुत अच्छी तरह मुनी गई और कार्यालय म आकर
 मिलने की हिदायत व साथ मुलाकात खतम हुई थी ।
 सयोग से आज उनके कमरे के बाहर चपरासी भी नहीं दिखाई पडा । लाइन
 क्लीयर देखकर वह चिक् उठाकर नमस्त कर सीधा अदर पहुंच गया ।

साहब ने अजनबीपन और रखाई स उसकी आर देखा ।
 "हा, कहिये ।"

उनके चेहरे की सद्यती और आखा का हिंसक भाव देखकर वह हकला गया,
 "सर, वो लोन के लिए आपस कल मिला था उसी सिलसिले म हाजिर हुआ
 हू ।"

"आज नहीं, आज मैं बिजी हू, फिर कभी आना । बहकर वे पुन वाबू स
 उलझ गए थे ।

उसे होश आया तो वह कमरे के बाहर खडा था ।
 आज इनका मूड ठीक नहीं दिखता । किसी बात को लेकर वाबू पर नाराज
 हो रहे थे । मैं ही गलत वक्त पर आ गया । खर, फिर देखूंगा । न होगा, तो उही
 को दाबारा पकड कर लाऊंगा ।
 वहा से प्रकाशक की दुकान की ओर कदम बढाये । काफी दिना की टालमटोल
 के बाद पुस्तक के पारिश्रमिक के बकाया पाच सौ रुपय का चक जाज जम्पर दे देने
 का वायदा था । बहुत-सी जखरतें वह इस चक के भुगतान पर टालता आ रहा
 था । आज चक का मिलना बहुत लाजमी था ।
 वहा पहुंचा तो नीबर न ब्रताया सठ साहब अभी तक पधारे नहीं हैं ।'

“घर पर है क्या ?”

घर स तो नौ बजे ही निक्ल जात है।”

“फिर कहा गये है ?”

‘पता नहीं।’

‘मुवह चाबी लान घर गए थे तब तुम्ह कुछ कहा था ?”

“नहीं, मुझे ता कुछ भी नहीं बोला।’

वह बहा घण्टा भर से ज्यादा प्रतीक्षारत बैठा रहा। लेकिन प्रवाशक को नहीं आना था, वह नहीं आया।

“पुस्तक छापकर छपया बनाते है लेकिन लखक को पारिश्रमिक देत इनकी नानी मरती ह।”

वह अनमना होकर दुकान मे बाहर आ गया। वहा से रास्ते मे पडन वाले सावजनिक वाचनालय म जा घुमा। एक सरकारी पत्रिका म इसी महीने उसकी कहानी छपनी थी। सूचना मिल गई थी। लेकिन अक अभी तक उसक पास नहीं पहुचा था।

“अब तक तो अक आ जाना चाहिए था। हो सकता है, डाक म ‘मिस’ हो गया हो। चलो, यहा दख लेत है। कहानी के पारिश्रमिक का पैसा आ जाएगा, कुछ तो सहारा लगगा।”

पत्रिका का चालू अक मेज पर मडा था। लपककर उसने उठा लिया और पन पलटने लगा। उसकी कहानी नहीं निक्ली थी। अगले अक के ‘झरोमे मे भी कोई उल्लेख नहीं था।

“यह क्या हुआ ? सूचना तो इसी अक के लिए थी।—साल भर से पडी है। अपने चहत्ता को तो हर दूसरे महीने छापते रहन हैं। यही हाल जाकाशवाणी का भी है।—’ वह बुझ गया।

एक लबु-पत्रिका को उठाकर दखने लगा। उसकी बहुत पहले की भेजी एक कहानी प्रकाशित होकर सामन थी। वाचनालय मे अक रजिस्टर होने की तारीख देखी तो चाक पडा, करीब बीस दिन पहले की प्राप्ति दज थी।

वह खीज गया। उसे न तो कहानी प्रकाशित कर देन की सूचना दी गई और न ही पत्रिका की लखकीय प्रति प्राप्त हुई थी।

“पारिश्रमिक नहीं दे सकते, चलो मान लेत हैं। लेकिन रचनाकार को सम्मान दना तो सीखो।”

वह खिन हो चला था।

बबलू-चट्टी की स्कॉलरशिप के आज ही परिणाम आने हैं। चलकर पता कर लू। नम्बर आ जाए तो काफी राहत हो जाएगी।

आशक्ति मन लिए विपरीत सूचना न डरन डरत, यह उनके विद्यालय पहुँचा। शाला-प्रधान न मिला।

‘सॉरी, आपके बच्चा को हम चाहत हुए भी लिस्ट में नहीं ला पाए। स्कालरशिप मिफ पाच छात्रों को दी जाती थी। दो हमार स्टॉफ में लागा के बन आ गए। एब के लिए डी०ई०ओ० माहव का फोन आ गया। अब दा किरि हमारे मनेजमट में सदस्यी की मिफारिश थी। अब बताइए, क्या करें?’

“इस देश का बेडा इमी तरह गक होकर रहगा।” उसने साधा।

उसका मूड अब एबदम आफ हो गया था। उद्विग्नता और हताशा बढ़ रही थी। उसने बाकी के सारे बाय असफरता की आशका के रहत आग व लिए मुअ्तिल कर दिए।

वह बेहद उदास हो आया था। इमम निजात पाने के लिए वह पाम व मिनेमा थियटर की ओर मुड़ गया। घर जान का उसका दिव नही कर रहा था।

“क्या लेकर घर जाएगा।”

लेकिन वहा भी उसे निराशा ही हाथ लगनी थी। पिक्चर शायद नई नगा थी, बेगुमार भीड़ पड़ रही थी। उसे टिकट मिलन का कोई सवाल ही नहीं था।

‘टिकट खिडकी बंद है। हाऊम फुन’ का बोड सगा है। उधर सारे टिकट ब्लक में बिक रहे हैं—पाच का पच्चीस में घड़ल्ले में जा रहा है।—”

अब तक वह बुरी तरह उखड़ चुका था।

घर पहुँचा तो पूरी तरह टूटा निबुडा हुआ, थका-हारा और बिडबिडा, बीमार सा। बुरी तरह निडाल और लस्त-पस्त हाकर।

उसे थाया देखकर सोनू दौड़ी आई और उसके पैरों से लिपटकर अपनी फर माइश की चीजें भागन लगी। वह बुरी तरह फट पडा। इस वकन उस सोनू बहू शरारती शैतान और हर समय बेबात गिटर पिटर करन वाली बातूनी लडकी लगी थी। उसका चीपना चिल्लाना सुनकर पत्नी बाहर निकल कर उसे देखन लगी। लेकिन इस वकन उसे वह काई सलीके की शौरत दिखाई नहीं पड़ रही थी जो बच्चा को भी ठीक से सम्भाल कर रख सके।

कमरे में जात-जात पत्नी पर फट ही तो पडा वह। वहा पडी कुछ पाठ्य पुस्तकों का दखकर उसे लगन लगा—दोना नडके बिल्कुल मूछ हैं। अपनी पुस्तकें तक तो ठीक से सम्भालकर रख नहीं सकत। कायदे में पढाई क्या करते हंग।

इस समय तक उसका मूड बुरी तरह उखड़ चुका था। वह बटखने कुत्ते का तरह हर सामने पहन वान को काट खाने का तमार बँठा था। सोनू डर सकही

दुबककर बैठ गई थी। पत्नी भी उसके सामने पडने से बचती रही थी। वह था कि बड़ा गुस्सा में उबलता, मन ही मन खीजते हलकान हुआ जा रहा था।

कुछ देर बाद उसने सोचा, "आज का दिन बहुत ही मनहूस था। एक दिन की ली गई छुट्टी यो ही बेकार गई। न कोई काम हुआ, न आराम ही हुआ—न खुदा मिला, न विसाले सनम ! वक्त बड़ा खराब चल रहा है। सब जगह गति रोध है। आजकल कोई काम सलीके से होता ही नहीं।—रसूख और तौर-तरीके ही बदल गए हैं।"



परिवर्तन

सुदर्शन राघव

“मे आई कम इन ?”

“ओ—यस-यस कम इन ।’ इतना वहन के माथ ही मिसज विडवाल्कर, कि छात्रो को ब्लकबोर्ड पर कुछ लिखकर दे रही थी, एकदम घूम पडी ।

“नमस्कार, दीदी ।

‘नमस्कार नमस्कार । वही भई आज किधर स रास्ता भूल गए ? पडाई कसे चल रही है तुम्हारी ?”

‘जी आपकी दया से बिलकुल ठीक चल रहा है । मैं जरा एक काम से—

‘जच्छा, मैं जरा वच्चो का ।” घडी की ओर निगाह डालती हैं, ‘बस पाच मिनट श्रेप हैं इस पीरियड मे । तुम जरा लायब्रेरी म चलकर बठो मैं अभी आती हू ।

“जी, म जरा जल्दी म ”

‘हा-हा अभी पाच मिनट म आई, नक्स्ट पीरियड वकट है ।’ और व बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किए एकदम बोर्ड की जोर घूम पडी और छात्रो को कुछ समझाने लगी । घटी बजत ही वे पुस्तकालय की ओर लपकी और नवीन को लेकर आफिस म आ गई ।

“हा भई अब वही, कसे आने का कष्ट किया तुमने ?

‘जी वो कुछ प्रोग्राम के बारे म कहने आया था । ऐसा है कि विवेक नाट्य शाला वालो की जोर मे एक ड्रामा खला जा रहा है । आठ तारीख रात को साठ आठ पर शुरू होगा आप भी आइएगा । और उसने अपने बैग म से एक रसी” बुक निकाली ।

“ये पाच-पाच रुपये के टिकिट है ।’

‘लेकिन नाट्यशाला वाले तो ।

‘ हा, दीदी आप ठीक बह रही है। मगर इस पसे से तो साहित्यकार मयक वा इलाज ।’

“कयो, क्या हुआ उह ?”

“वाह ! आपको मालूम नहीं मयकजी लगभग एक माह से हॉस्पिटल मे एडमिट है और उनकी हालत चिन्ताजनक है। उहे टी०बी० की शिकायत है।”

“हू, मगर साहित्यकारा को तो सरकार की ।”

“हा दीदी, सरकार की तरफ से मदद मिलती है मगर मयकजी ने मदद लेने स इबार कर दिया।”

“ऐसा कयो ?”

‘यह तो उहोने बताया नहीं, मगर उनकी धमपत्नीजी ने एक बार कहा था कि हम लोग विसी की दया के पात्र ।’

“आह, तब तो व इस ड्राम स हुई इकम को भी ।”

“नहीं दीदी, ऐसी बात नहीं। हम लोगो ने इसके लिए राह निकाल ली है। यह ड्रामा जो हम लोग खेलने जा रहे है न, यह असल मे उही का लिखा हुआ है और हम उनकी परमीशन मिल गई है। एवज मे हमने उहे तीन हजार रुपया देना निश्चिन किया है और इसमे उहे कोई आपत्ति नहीं।”

“यह ता बिजनेस है, क्या ?”

“जी।”

“हा, तो इसक लिय मुझे क्या करना होगा ?”

“ये पाच पाच रुपये के टिकिट है, आप इह अपन स्टाफ म बिकवा दें।”

“दिल्ला नवीन, मैं अपन स्टाफ मेम्बस से बात कर दखूगी, अगर कोई ।”

“दीदी, जाप उनसे आग्रह तो कर ही सकती हैं। जाप तो जानती है बात ही कुछ ऐसी है।”

“हा भई, आग्रह तो कर सकती हू लेकिन बाध्य नहीं कर सकती। कयो ठीक है न ?”

“जी, सो तो है। अच्छा, तो आपको टिकिट दे दू ?”

“नहीं, अभी रहने दो। बाद म ।”

“फिर क्या आऊ ?”

“एक-दो दिन म पता नहीं-नहीं तुम्हे स्वय ही सूचित कर दंगे।”

“अच्छा तो अब मैं चलू। नमस्कार।”

“नमस्कार।”

नवीन के चले जाने के बाद उहोने घटी बजाई। सुनते ही खपरसी रामदीन दौड़ता हुआ चला आया।

‘हुवम साहब ।’

‘एक गिलाम पानी लाओ ।’

‘लाया साहब । और बूझ रामदीन अपनी झुकी हुई कमर को जरा सानत की कोशिश करता हुआ एक ओर पिसव गया ।

पानी पीकर भी उनका दिल को ठंडक नहीं पहुँची । एक वश्मन्श भी उनके स्निग्ध मे पैदा हो गई । वे कभी सोचती नवीन से टिकिट न लेकर अच्छा नहा किया । वह कितनी आशा से आया था यहाँ । एक सस्या की प्रधान हाकर पाच रुपये के लिए कनी काटना अच्छा नहीं रहा । यह तो सरासर अपनी प्रतिष्ठा का अपन हाथा ठेस पहुँचाना हुआ । मयक जैसे साहित्यमयी के हित में तो उम कुछ करना ही चाहिये था । वैसे तो उसकी रचनाएँ सभी कितने चाब से पढन हैं, उसकी मराहना करत है । पर अब जब उस पर मुसीबत आई है ? नहीं नहीं, उसे टिकिट ले लेना चाहिये था । वह नवीन की नजरों में कितनी तुच्छ हो गई है । एक नवीन है जो निर्विकार भाव में इतनी तज गर्मी में मारा मारा फिर रहा है । अगर मेरी ही तरह पाच क नोट के लिए सभी लोग टिकिट खरीदन से इन्कार कर दें तो फिर तीन हजार रुपये । पर इतनी रात तक अवेन नौटने में भी तो ?

जब जाना ही न था तो फिर टिकिट लेकर ही क्या करती । वे अपने मन को सात्वना देती हुए उठ खड़ी हुई और कपड़ों को धुँझटवा मानो वे अपने मन में आए विचारों को झाड़कर साफ कर रही हा ।

दिन भर उनका मन काम में नहीं लगा । अन्तिम पीरियड में स्टाफ मीटिंग कॉल की गई । स्कूल सम्बन्धी बातों के दौरान मिसेज बिडवाल्कर ने साहित्यकार मयक के ड्रामे की चर्चा छेड़ दी और कहा कि आप लोग अगर जाना चाहें तो टिकिट मगवा लिय जायग ।

काफी देर तक खामोशी रही, अन्त में मिमज बिडवाल्कर ने ही चुप्पी को तोड़ा, “आप लोग साच लीजियगा अगर प्रोग्राम बन जाये तो कल तक मुझे बता दीजियगा, मैं टिकिटों का प्रबन्ध करवा दूँगी ।”

सभी ने अपने सिरों को धोड़ा-सा झुलात हुए मुस्कराकर मौन स्वीकृति दे दी और अपनी नजरें झुका ली । किन्तु चिकडोर के पास बठा रामदीन, जो मारी बातें मुन रहा था एकाएक उठ खड़ा हुआ और बोला—बणजी, टिकिट म्हार वाम्न् ईज मगा दीजो ।” और उसने अपनी जब में से कई तह किया हुआ पुराना सा नोट मिसेज बिडवाल्कर को धमा दिया ।

‘अरे रामू, नृ बडा शीरीन है र, नाटक देखने का ?’

‘ना बाईगा, नाटक-नाटक तो हू बड ईज नी देखू, पण ।’

‘फिर ये टिकिट ।’

“ओ तो मा गिणी विपदा मे पडचोडे भिनय री मदद री अनूठो ढग है सा । टिगट लिया कोर्द फासी नी हुवै क पटुचणो ईज पडतो ।”

उस वद चपरासी के विचारा को गुनवर सबकी जाखे शरम स झुक गई और मस्तन थदा से । ओह, कितना दरिया दिल है यह बुडढा ।

रामदीन की देखा-देखी सभी के मन म आया कि टिकिट क लिये वह दे पर अब उह कुछ शरम-सी महमूम हो रही थी । मन-ही-मन कल क लिये कुछ निणय करके सब उठ खडे हुए आर अपन-अपने घर की राह ली ।

मिसेज बिडवाल्कर न स्कूल म निकलकर मीजे हॉस्पिटल की राह ली । मयक के वाटेज का नम्बर उहान बातो ही बातो मे नवीन स पूछ लिया था । वे चली जा रही थी । एक तूफान-सा उनक दिलो दिमाग मे चल रहा था । न जान कव उनके कदम सहसा वाटेज नम्बर चार के आग आकर रक गय ।

आठ-दम साल का एक बच्चा बरामद म खेल रहा था । मिसेज बिडवाल्कर को देखते ही वह उठ घडा हुआ और दोनो हाय जोडकर नमस्ते की । फिर बोला, “आप पापा से मिलन जाई है न ?”

‘ हा, वेट पर तुम्ह केमे मालूम ?’

“रोज ही तो कितन लाग उह देयने आने है न । इसलिये ।”

“मैं भी उन्ही को देखन आई हूँ । जाओ अदर चले ।”

बड पर मयकजी को लट देखा, कितन बदल गय थे वे । दो साल पूर्व उहे किसी सभा मे देया था । पास ही उनरी घमपत्नी बैठी थी । बडी दुबली पतली, तीखे नाक-नकश और गौर वण के कारण काफी आकषक लग रही थी । पर चिंता की उजह से काले धब्ब से उभर आए थे उसकी आखो के नीचे ।

वह मिसेज बिडवाल्कर को देखकर शीघ्र ही खडा हो गई और मुस्करान की कोशिश करते हुए उनकी नमस्त का जवाब दिया ।

मयकजी न भी अपने दुपल हाथ जोड दिये । उन लागा से बातचीत करते हुए मिसेज बिडवाल्कर का ऐसा लगा कि वे लोग कितन विशाल हृदय और स्वाभिमानी हैं । उनकी पत्नी के साहस एव दढता को देखकर बडी हैरानी हुई पर एक् साहित्यकार की यह दशा देखकर मन बडा दुखी हुआ । कुछ दर इधर-उधर की बातें करक व कुशल रेम पूछन के बाद जब मिसेज बिडवाल्कर चलन को हुइ तो बोली, “मेरे लायक काइ सेवा हो तो बताइये ? अगर आप कुछ सेवा का मौका दें तो हमार लिये सौभाग्य की बात होगी ।”

‘ अरे बहिनजी, आपके मन मे हमार लिये इतना स्नह है, यह कोई कम खुशी की बात है ? हमार प्रति अपना स्नेह बनाये रखे, यही हमार लिए सबसे बडी बात है ।

मयकजी के स्नह म परिपूर्ण शब्द श्रीमती बिडवाल्कर के अन्तत तक छू

गये। मन भर आया। हाथ जोड़कर बाहर निदल आई।

बाहर आकर फिर उनका सामना उसी बच्चे से हो गया। वह उन्हें देखते ही कह उठा, 'आप्पी, मेरे पापा अच्छे हो जायेंगे न?' बालक की भोली सूरत देख कर मन भर जाया। उस अपने स चिपटाने हुए वे बोली, 'हा-हा देटा, तुम्हारे पापा अब जन्दी ही अच्छे हो जायेंगे।' और वे चल दी। उनके बटम अनायाम ही नवीन के घर की ओर उठ गए।

दरवाजे पर दस्तक देने के बाद वह जरा देर रकी, भीतर किसी व चलने को आहट हुई, शायद कोई आ रहा था। दरवाजा खोला एक बच्चा ने।

"नमस्ते माजी।"

"आओ बेटी, किसस मिलना चाहती हो?"

"मुझे नवीन स मिलना है। क्या वह घर पर नहीं है?"

"नहीं बटी।"

"अच्छा तो मैं"

"अर नहीं बेटी, अभी तो आई हो, बठा, वह अभी आता ही होगा।"

"।"

'आजकल वह बडा व्यस्त रहता है बेटी। सच दूर, सुबह स आज भूषा है, जन का दाना'

'अभी कहा गया है?'

'उसका परिचिन काई तखत है, बेचारा बीमार है उसको मदद क लिये कोई नाटक-वाटक कर रह हैं। टिटिटि रकी ह सा उसी का बचन के चक्कर म फिर रहा है। अच्छा है अगर कुछ मेहनत करने से किसी का भला हो जाय। बेचार की हालत खराब बतावें, घर मे अच्छा है जवान पत्नी है। पता नहीं भगवान को क्या?' और उनकी आँखें भीम गयी।

कुछ देर बैठने क बाद मिसेज बिडवाल्कर ने उठन हुए कहा, "अच्छा माजी, मैं चलती हू। उह कहना मिसज बिडवाल्कर आई थी, मन स्कूल म मुझमे मिल लें।"

'अच्छा बटी ठहरो मैं भी चलती हू। एक कापी मैं भी ली है उसस। मुहल्ले म टिकटें बेच आऊंगी।' और वह साठी के सहार लगडा-लगडाकर चलने लगी।

मिसेज बिडवाल्कर का दिल भर आया, उन्होंने झट उनका हाथो म टिकिटो की कापी छीन ली।

"साओ माजी आप आराम करो। य टिकिट मैं खरीद लेती हू। आप जन नवीन को भेजकर पम मगवा लें।"

"जोती रहा बटी, भगवान तुम्हारा भला करें। मुसीबत म किसी क काम

आना सबसे बड़ा पुण्य है बटी।" और उहाहे अपना बापता हाथ मितज विडवाल्कर के सिर पर रख दिया।

मिसेज विडवाल्कर उसके स्नेहिल हाथ के स्पर्श से गद्गद हो गई। हाथ म धमी टिकिट्टा को देखकर वे सोचन लगी; यह मन भी असा बहु प्रिय है; झट गिरगिट की तरह रग बदल लेता है। कभी परयर से भी बठोरता कभी मोम से भी नम। कहा ता सुबह एक टिकिट्ट के लिये सिन्नव रही थी और कहा पूरी बीस टिकिट्टा की जिम्मेवारी ले ली।

अगल ही दिन स्कूल स्टाफ रूम मे सभा बुलाई गई और दखत ही देखते टिकिट्टें बीस हाथो म बँट गईं। बूढा रामदीन उन सबके हृदय मे आए परिवतन को देख रहा था। वह गद्गद हो उठा। उसकी आखो से दो मोती लुढक कर झुरियो भर गाला म विलीन हो गये। □

पिद्दी-सी लडकी ने सोचा

रूपा पारीक

उसने गसोई स बाहर निरलकर वरामद म झाका—दीवार घडी छ बजकर पाच मिनट का समय बता रही है। नाड सात बज नाटन शुरू हा जायेगा। विशुदा न कहा था जल्दी ही आ जाना उस दशका का प्रवश शुरू होने स पहल ही पहुचना है। तीन रोटी और बनानी रही है—एन तवे पर, एक चकल पर और तीसरी का लोआ परात म पडा है। वह गुनगुनान लगती है। पूर तीन महीने सप्रह दिन बाद मिलेगी सबस—जगदीश चाचा मुनीता दीदी—ऊह। उह दीदी कहने का मन नही होता उसका। वह बुरी नकचगी लडकी नही है कि किसी का आदर ही न कर सके—बस, यू ही मुनीता उसे कभी अच्छी नही लगी। उसने मन-ही-मन विश्लषण शुरू कर दिया—क्या वह मुनीता दीदी से ईर्ष्या करती है? राम जान क्या सोचने लगी वह भी—तवे की रोटी बुरी तरह जल गयी है। उसने रोटी का कटोरदान टटोला। तीन जन है खाने वाल—पिताजी सुपमा और गुडडू अन्नू भाई तो शो के बाद घर लौटने या नही कहना मुश्किल है। नाटक व प्रदशन के दिन प्राय वे नही लौटते हैं या लौटन है तो इतनी देर से कि तब खान-पीन का ध्यान नही रहता—शायद वे बाहर स खाकर ही लौटत है। अन्नू भाई भी विचित्र हैं। मा कितना परशान हाती है उह लेकर और वे हैं कि परवाह नही करते। अर। नाटक करते हा तो ठीक है मगर घर पर तो ठीक म रहा करो—वह सोचती है लेकिन अन्नू भाई हैं कितन अच्छे उनकी आवश्यकताए कितनी सीमित है। कही मा बेवार ही तो परशान नही होती?

घर छोडो भी यह झमला। उस तयार हा जाना चाहिय फटाफट। बहुत खुश है वह। सबस मिलना हागा। मिस्टर अमर को अपनी पत्रकारिता स फुसत मिली तो व जरूर आयेंगे नाटक दखन। उनम ता वह दा बार ही मिली है। पहली बार चाचा के घर मिली थी। विशुदा के साथ बहम कर रही थी कि बीच म टपक पडे — विशु। य विडुपी क्या कहा स पघारी है? अमर न कहा था जो दरवाजे

पर खड़े उसकी जोर विशुदा की बहम सुन रहे थे। वह भी नहीं चूकी थी। पलटते हुए उसने कहा था—‘बौन है ये कबाब म हड्डी?’

‘कबाब म हड्डी नहीं, दाल में ककर में ाकाहारी हूँ।’

‘आओ दादा। दादा ये है कामिनी, ताऊजी की लडकी, आनंद की बहन। कामिनी ये हैं अमर दादा।’

‘जी हाँ! मैं अमर उफ दान में ककर।’ फिर देर तक उनका ठहाका कमरे में गूँजता रहा।

कामिनी को लगा वह तो पिघलकर बह जायेगी। ऐसा ही व्यक्तित्व था अमर का। वह बेचारी मिर झुकाये फश ताकने वाली, स्कूली लडकी जिसने स्कूल की सभाओं में रटे रटाय और महापुरुषों की उक्तियाँ से भरे भाषण तो दिये थे लेकिन जिसकी दुनिया केवल स्कूल और घर-परिवार के सदस्य है।

विशुदा अमर से बात करने लग—‘और दादा बँसा चल रहा है अबवार?’

‘एमा।’ और अमर ने राकेट उड़ाने का अभिनय किया।

‘और।’ विशुदा ने जटकत हुए और शरारत से पूछा—‘अजली?’

‘अजली?’ अमर ने लापरवाही से कहा—‘जो! अजली रिवाँसिबल रियेक्शन ना गन ना लास।’

विशुदा कुछ उदास से लग। अमर हस रहे थे और वह बुढ़ू-सी सिर झुकाये बठी थी। बनखिया से अमर दादा को दखते हुए।

पीने सात बज गये हैं। दर न हो जाय। वह जल्दी जल्दी वाला पर कधा फेरन लगी। उसे जल्दी ही पढ़चना है। कितने अच्छे हैं विशुदा। मा तो उसे कही जाने ही नहीं देती हैं। आज सुबह ही चाची के साथ गंगा-स्नान के लिए गयी है। कल सोमवती अमावस्या है। सुबह का स्नान करके कल शाम तक लौट सकेंगे वे लोग। विशुदा न अच्छा जवसर देखकर उस बुला लिया है। पिताजी ता मना करेंगे नहीं और एक अन्नू भाई हैं कभी जपन साथ नहीं ले गये। दूसरी वार जायेगी वह नाटक देखन। पहली वार गयी थी तब बहुत छोटी थी। चाचा ले गये थ उस। अब तो वह कॉलेज में पढती है। क्या समझत हैं सब उसे? वह भी किसी से कम नहीं हैं। अन्नू भाई न जाने क्या समझते हैं अपन आपको? माना उनके जिननी अबल नहीं है लेकिन नाटक तो देख ही सकती हूँ—अभिनय तो समझ ही सकती हूँ। विशुदा तो बड़ी तारीफ करत है अन्नू भाई की। दोपहर को नाटक देखन के लिए बुलान आये थे तब उसने विशुदा से कह ही दिया था—‘आप कितने अच्छे हैं मुझे समझन हैं। अन्नू भाई तो ढग से बात तब नहीं करते।’

विशुदा मुस्करा दिये—‘कामिनी की बच्ची बड़ी अजल वाली हो गयी है स्कूल से निकलत ही।’ फिर कुछ खबर बाने—‘मैं भी ता कभी रिया का

नाटक दिखाने नहीं लाया । ' विशुदा दूमरी ओर दृष्ट रह 4 ।

कामिनी ने सोचा—ठीक ही तो कह रह है विशुदा । मैं ही पागल हू । कलाकार और उमरा जीवन उमक द्वारा जिया जान वाला पात्र । कितना अन्दर हाता होगा स्वयं कलाकार और उसक द्वारा अभिनीत पात्र म । अपन आपना छुद स बाहर निकालनर किमी अमूल की मूल करना वह साचती जा रही है । सच, कितना आनन्द होगा अन्नू भाई की दुनिया मे । उमने एक कहानी पढ़ी थी बचपन म जादू के गाव वाली कहानी । वसा ही कोई गाव होगा । मैं कभी उस गाव म पहुच भी गयी तो मेरे पैरा की अपरिचित और बमुरी आहट स उस गाव का जादू टूट जाय ।

“क्या सोचने लगी ?

‘ मैं बुद्ध हू ?’

‘ नहीं, बुद्ध कोई नहीं होता । बल्कि तुमसे तो बहुत उम्मीद है ।” विशुदा चुप हा गय । कामिनी का क्या लगता है कि विशुदा पहले म कुछ छोट और वह पहले म कुछ बड़ी हो गयी है ? कामिनी मन ही-मन कहती धन्, पगली !

“कामिनी आओगी ना नाटक देखने ।’

“हा । उसन गदन हिला दी ।

कामिनी तैयार हो गयी थी । पिताजी बाजार स लौट आये हैं।

मे जाऊ ?”

“हू ।” पिताजी का ठंडा-सा स्वर सुनायी दिया ।

वह जल्दी से रिक्शा करके थियेटर पहुच गयी । सवमे पहले विशुदा से, फिर चाचा म मिलूंगा, उमने सोचा । शाम का हल्का अधेरा फौन रहा था । गट के ऊपर लगी बत्ती जल रही थी । इसी म रोशनी ने शकु मे बाहर अधरा और गहरा गया था । वह हात म दाखिन हो गयी । त्रिन्कुल खाली हाल, गहरी शान्ति, मगर फिर भी एक गज क्या जाखिर क्या फुसफुसा रही है हवा ? वह टिठकी खडी रही और साचा कि किसी स नहीं मिलुगी ।

दो पल रुककर वह अपन जान एक अच्छी कुर्सी की ओर बर गयी—जहा से उमका अदाजा था कि सब कुछ साफ और अच्छा दिखायी देगा । हात का दर बाजा चरमरा उठा, वह पलटी । दशक आने नग है । उसे लगा कि पिछली अधेरे म डूबी कुर्मिया की तरफ स एक छाया गैलरी स हात हुए मच क पीछे की ओर जा रही है । शायद विशुदा हू । वह आवाज द उमका मन हुआ । नव तक छाया तनी से उसने बहुत पाम वाल खम्भ क पीछे स हानी हुई उसम दूर हो गयी थी । अचानक श्रामी हो गयी वह—किननी अकेली हू मैं । उस क्या लगा कि वह छाया । उम अच्छा नहीं लग रहा है—शायद इमे ही उगामी या दु ख की छाया । वह धम्म म मबम पाम वाली कुर्मी पर बैठ गयी ।

हाल में अब पहले सी फुसफुसाहट नहीं थी न ही शांति। अब कुछ आवाज सरसरा रही थी। धीरे धीरे सीटें भरने लगीं। उसने घड़ी देखी—सवा सात। अभी पाँच मिनट है।

“दी दी ! आई !

उसने सिर उठाकर देखा। ये सुधीर हैं। चाचा का छोटा लडका। उसका हम उम्र ही है शायद दो-तीन महीने छोटा। कामिनी को उसका आना अच्छा लगा।

“घोड़ी देर यही बठना।”

“नहीं, मैं भी काम कर रहा हूँ, अमर दादा इधर ही आ रहे हैं। आप आयी हैं विशुदा ने अभी बताया।”

कामिनी का मन हुआ पूछे—“उह क्या हुआ ?”

“ये आनन्द की बहन है ना ?” तब तक अमर आ गये थे।

“आनन्द भाई की ही नहीं, मेरी भी, विशुदा की भी लेकिन आप इसे बहन मत बना लेना वरना बुरा मान जायेगी।”

यह सुधीर का बच्चा भी कैसी बेहूदी बातें करता है—कामिनी चौखला-सी गयी। सुधीर जानता था कि अब यहाँ ठहरा तो उसकी खर नहीं।

“अच्छा दादा चलो, शो के बाद मिलत है।” कहकर सुधीर भाग लिया।

कामिनी चुप बठी रही। अमर हस रहे थे—“ऐ लडकी ! मुह लटकाकर मत बैठो।”

नाटक शुरू होने का संकेत मिला। हॉल भर चुका था। मंच पर रोगनी हुई और गणेश बन्दना के साथ नाटक शुरू हो गया। सुनीता जीजी को तो पहचान गयी वह लेकिन आनन्द भाई की तो आवाज से ही पता चला। लगता ही नहीं था आनन्द भाई हैं।

कामिनी ने ता पूछ ही लिया—“ये अन्नू भाई है न अमर दा ?”

उन्होंने कहा—“हूँ।” शायद उह कामिनी का बीच में बालना अच्छा नहीं लगा। वह चुपचाप बठ गयी। सुनीता जीजी का अभिनय बहुत बढ़िया है तभी तो चाचा इतना मानत हैं इनको। सुना है, बहुत पैस वाला के घर की हैं लेकिन घर छोड़कर इलाहाबाद आ गयी हैं। कस छोड़ा होगा घर कामिनी को, सोचकर अजीब-सा लगता है। अन्नू भाई तो बहुत ही अच्छे लग रहे हैं। पर विशुदा ? इह क्या हो गया है ? कामिनी को पूरा नाटक समझ में नहीं आ रहा है, पर चुपचाप सब कुछ देखना अच्छा लग रहा है। वह लगभग बीना-सा, कूबड वाला अष्टावक्र नाटक में फकीर बना है। चाचा इह कुम्भ के मेले से साथ ले आये थे। नाम भी चाचा का दिया हुआ है अष्टावक्र। कामिनी को उनकी बातें खूब अच्छी लगती हैं। चाचा के घर ही रहत हैं ये। चाचा की भी अजीब कहानी है—साझे में घघा शुरू किया था दादाजी के कहने पर। लेकिन व्यापार की बुद्धि कहा थी। सच्चा बला

कार नाटक गहा कर पाता है वास्तविक जीवन में। सायदार न वो यामा दिया कि चाचा ता बैरागी हो गय। विश्वास उठ गया दुनिया में। दादाजी समझा चुकाकर, मनाकर बापम घर लिवा लाय— 'चल जगदीश मर्जी, आय जस रहना। नेकिन रह घर पर हो—बच्चो के साथ, बहू के साथ।' बटी मुश्किन से लौट के चाचा बरना आज कही धूनी रमाय बठे होत।

नाटक खत्म हो गया था। वह चुप बैठी रही। हॉल धीरे धीरे घाली हो गया।
'कैसा लगा?' अमर दादा न पूछा।

वह कुछ बोल ही नहीं पाई।

'तुम पहली बार आयी हो ?

'एक तरह से पहली बार। अनू भाई कभी जाते ही नहीं।'

अमर मुस्करा दिए। कामिनी को ध्यान आया विशुदा न कहा था—अमर ने बी० एस०सी० जी० एम० ए० दोना में गोल्ड मंडल लिया है जरूर अफसर बनगा। कामिनी का मन हुआ कुछ बात करे उनमें।

"तुम आना चाहती हो यहा ?"

"हां। उसन सिर हिला दिया।

अमर फिर मुस्करा गये। उस बार कुछ जलम तरह में। उनमें ओठ कुछ इन तरह से खुले जैसे कोई रहस्य खालने वाले हो। फिर इस तरह बोले जस कोई चेतावनी दे रहे हैं—"नाटक देखकर नाटक के पानो का जीने की इच्छा नहीं होनी चाहिय।"

"मतलब ?"

"नाटक देखना एक बात है और एक पात्र को जीना एक दूसरी—बिल्कुल जलम बात है।" वे धीरे से बोले।

कामिनी बुझू-सी देखती रही।

"एक पात्र को जीना—मतलब रोना। आप चाहें हम रहें हो अपनी भूमिका में लेकिन यह अहसास कि कोई एक है जिसकी पीडा ही बहुते की हसी का बीज है, अमर मुस्कराये "खर छाबो।"

"क्या मैं नहीं समझूगी ? आप एना रामझते हैं।"

अमर चुप रहे। कामिनी जैसे अपने दिमाग में घूमनी किसी पहेली के हल तक पहुँचने वाली है। अभिप्राय कला वह सुख महसूस करती है हॉल की चुप्पी का पुमफुसाहट का रहस्य धूलन-बुलन को है। अमर उठ गया है। मुधीर बुलाने आया है।

'आप भी चलिय लीदी। चाचा बुला रह हैं। वे लोग मंच के पीछे वाले कक्ष में आ गय। सब यही है। छान का सामान पास ही रखा था।

“आज विटिया भी देखने आयी थी।”

वह चाचा के पास बैठ गयी। लेकिन यह क्या—सब यूँ मुह लटकाये बैठे हैं जैसे दशका की चप्पलें और सड़े टमाटो का सामना करना पड़ा हो। विशुदा तो जैसे रोना ही वाले हैं। कामिनी को लगा कि विशुदा के छोटे और उसके बड़े होना का सिलसिला जो दोपहर को शुरू हुआ था। अब तक जारी है। क्या उदासी में आदमी छोटा लगने लगता है? उदासी—उसने यह क्यों सोचा?

एक अजीब तनाव था कमरे में। चाचा कुछ अतिरिक्त उत्साह से बोले—
“आज सुनीता ने तो कमाल ही कर दिया।” सुनीता जीजी ने हसने की कोशिश की—ऐसी भरपूर कोशिश की कि कामिनी आतंकित हो उठी। चाचा सक्पका गये और सुनीता जीजी। क्या हो गया है इन्हें? व चाचा की गोद में सिर रखकर बिलख रही है। लगता था, उड़त हुए परिदे छत से जा चिपके हैं और शेष है उनकी निरीह फडफडाहट का अहसास। कामिनी की धड़कनें रुक-रुककर चल रही हैं। उसने सुधीर को देखा। सुधीर उठा और बाहर निकल गया। कामिनी भी धीरे-से उठकर बाहर आ गयी।

“मुझे घर जाना है सुधीर।”

“साथ ही चलियेगा। बाबा ने आपके घर कहलवा दिया है।” सुधीर बाहर खुली जगह में पसर कर बैठ गया।

“सुधीर आज क्या हुआ? कुछ बताओगे?”

“बताने जैसा कुछ है भी या नहीं—पता नहीं।” सुधीर दो क्षण बाद बोला—“आप !”

कामिनी को लगा यह भी यही कहने वाला है—“आप नहीं समझेंगी”—क्या मैं सबकुछ इतनी बुद्धू हूँ? वह सोचती है।

“आप प्रोफेसर सिंहा को जानती हैं? आप कैसे जानेंगी? विशुदा के पी-एच० डी० के गाइड हैं—उन्होंने ही कुछ उल्टा-सीधा कह दिया है यही कि कहा-वहा से चले आते हैं पी-एच० डी० करने—और विशुदा के सारे नोट्स हथिया लिए हैं—आप समझ रही हैं?”

कामिनी इतना जरूर समझी कि विशुदा के साथ बुरा हुआ। उनका विश्वास टूट गया है। “और सुनीता दीदी एक सज्जन हैं इसी शहर में—बलाप्रेमी बनते फिरत थे। सुनीताजी ने सब कुछ उह ही सुधीर चुप हो गया। कामिनी को अच्छा नहीं लग रहा है। अब सुधीर कुछ न बाले तो ठीक रहें। सुधीर चुप ही रहा। फिर अन्दर चलने के लिए खड़ा हो गया—“उनकी सगाई हा गयी है, काफी पैसा मिलेगा दहेज में सुनीता दीदी को नौटकी वाली कहकर चलत बने।” सुधीर ने साचारी से हाथ धटके—“अजीब-अजीब लोग होते हैं। सुनीता दीदी क्या जानती थी कि हम तो स्टेज पर ही नाटक करते हैं और दुनिया हर कदम

पर नाटक करती है।'

कामिनी सुधीर के साथ अदर चली आयी। चाचा खाना तैयारियों में लगा रहे थे। विगुना और आनंद भाई मकअप उतार चुके थे। अष्टावक्र चाचा की सहायता कर रहे थे। सुनीता जीजी अनमनी बैठी थी। अमर वहीं नहीं दिखे। कहा हागे ? उसने सोचा और पानी लाने के वहाने बाहर आ गयी। इधर-उधर अमर दा के दूदा। फिर खाली हाल की तरफ चली गयी। उसका अनुमान सही था। अमर हाल की अंधेरी कुर्सी पर बठे थे। उस देखकर सीधे बैठ गये और धीमे-से हस पड। 'आप हस रहे हैं ?' कामिनी ने कहा। अमर ने मुह फेर लिया। उनकी पीठ बाप रही थी। कामिनी वहीं खडी रही, फिर अमर के कंधे पर हाथ रखकर बोली— चलिए अदर सब इतजारकर रहे हैं। अमर उठे और तेजी से चल गये। कामिनी न मुडकर खाली हाल को देखा। मन हुआ चीन्हे— अजली ! रिक् सिवल रियेक्शन नो गेन नो लास। क्या यह सही है ?' उस लगा हवा सरसरायी — लास। लास !!

वह भीतर आकर चाचा के पास बठ गयी। उसने उदास चेहरा पर नजर डाली। जो होता है सबको एक एक थप्पड लगाय। वह चुपचाप कौर निगलती रही धोखा उदासी कितने कमजोर हैं सब और मैं ? वह आगे सोच नहीं पायी। सब सामाय हो रहे है लेकिन वह—उसने फिर इधर-उधर नजर दौडायी —अष्टावक्र—इतनी कुरूपता लेकिन है यह सच्चाई और सच्चाई क्या कुरूप हो हो सकती है ? मुरूप मुखाटो के जजाल ।

चाचा मुझे घर जाना है उसने अचानक कहा और किमी की ओर भी देखे बिना वह बाहर निकल गयी। सुधीर उठा और उस चुपचाप घर पहुंचा आया ।

कामिनी ने कपडे बदलकर हाथ-मुह धोये। पिछवाडे का और सामने का दरवाजा ठीक स वद किया। घर की बतिया बुझाकर वह सोने के लिए कमरे में आ गयी। पिताजी सुपमा और गुडडू सो चुके थे। उसने चादर ली और बत्ती वद करके बिस्तर में घुस गयी। कामिनी न महनुम किया उमकी टांगो में हल्का दण है कंधे की नस भी खिच रही हैं। मा आज घर पर नहीं है। वह मुबह से काम में लगी है। मा भी रोज इतना ही थक जाती हागी—उसने साचा। उसे याद जाया कि वह दूध गम करना भूल गयी है। दही भी जमाना है। वह फिर रसोई में पहुंचकर काम में लग गयी। बापस सोने लौटी तो देर तक चित लेटी छन पर घूमन पम को दंपती रही। दिमाग में थियेटर की घटनायें घूमन लगी— आज मव दु खी थ। क्या कभी वह भी दु खी हुई है ? वह याद करन की कोशिश करती है। कितना सरल है उसका जीवन। उसने बाहर कुछ देखा ही कहा है अब तक। क्या रो रहे थे सब ?

सुख ? और सुख भी क्या उसे कभी हुआ ? उसे लगा वह सुख-दुःख कुछ भी नहीं जानती । वह बुद्धू है बिल्कुल कमजोर, मरगिल्ली-सी लडकी । उस झपकी आ गयी । थोड़ी देर में नींद खुल गयी । बदन पसीन से चिपचिपा रहा था । वह उठ बैठी । सब बेखबर सो रहे थे । वह उठकर बैठक वाले कमरे में आ गयी । टेबिल लैम्प जलाकर उसने दर्राज में से एक डिब्बा निकाला । इसमें वह दूमरो में मिले छुटपुट उपहार रखा करती है । बाला में लगान की पिनें, बढाई के रूमाल, कान क बुदे और इन सबके बीच एक छोटी सुनहरे कवर वाली डायरी भी पडी थी । कामिनी को चाचाजी ने दी थी यह डायरी । तब कामिनी को यह सबसे बेकार चीज लगी थी । उसने डायरी निकालकर मेज पर रखी और पहला कोरा पन्ना सहलाकर लिखना शुरू किया—

बाहर भीतर

19 मई

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में दो दुनिया होती है । बाहरी दुनिया में दिखावा है । भीतरी दुनिया में हम जकेंले होते हैं । वहा हम क्या है ? यह बाहर वाला नहीं जान पाता । हम चाहत है कि भीतरी दुनिया में भी कोई हमारे साथ हो और इस लिए हम बाहर जात हैं जहा बहुत-से लोग मुखौटे लगाकर धूमत हैं । विशुदा, चाचा, सुनीता जीजी, अमर दादा इन सबकी तरह ही कई बार हम मुखौटे पर विश्वास करन लगत है और उही से प्यार करत हैं । मैं एक पिढी सी लडकी हू । शायद मेरा जीवन बहुत मादा-मा और निरुद्देश्य होगा— हा ! निरथक भी, ऐसा मुझे लगता है । लेकिन आज मैं एक अच्छी बात सोची है—

मनुष्य अपनी सरलता के कारण सबसे प्यार करता है । लेकिन कोई भी मुखौटा अधिक समय तक टिकन वाला नहीं है । आखिर कभी-न कभी तो मुखौटे के पीछे छुपे चेहरे पर पसीना आयगा ही, खुजली मचगी ही तब ? तब मुखौटा उतारना पडता है । जब हम सामने किसी का असली चेहरा देखत हैं तो दुःखी होते हैं—साचत है कि हमारे साथ धाखा हुआ है । लेकिन धोखा तो उह हुआ जिन्हान मुखौटा पहनकर प्यार और विश्वास पाया । मुखौटा उतरन पर वे अपना सच्चा साथी खो दत हैं जैसे अमर दादा, सुनीता जीजी, चाचा और विशुदा का सच्चा प्यार उनके नकली साथिया न खो दिया । हा ! चाचा ये सब बुद्धू हैं ना, इहे दुःखी नहीं होना चाहिय । अच्छा ही तो है मुखौटे जल्दी ही उतर गये ।

उसके लेखन में पिता के स्वर न खलल डाला ।

“कामिनी ! क्या कर रही है बेटा ?” पिताजी न आवाज दी ।

कामिनी हडबडा गयी—“कुछ नहा पिताजी । अभी आयी । जोर उमन जल्दी-जल्दी लिखा—

“मैंने यह सब डायरी में लिख लिया है। वही एमा न हो कि समय जान पर मैं इसे ज्यो ता-त्यो विशुदा को समझा नहीं पाऊँ। मेरे प्यार विशुदा अब बभा रोना नहीं। ईश्वर ! मैं अच्छी लडकी बनने की कोशिश तो कर ही सकता हूँ— भले ही मरा जीवन सादा सा, निरुद्देश्य और निरथक हो। मुझ जैमी घरलू पिढ़ी लडकी कर भी क्या सपत्ती है भला।

फिर कामिनी बत्ती बंद करके विस्तर में घुस गयी। उसका दिल बहुत तनी से धटक रहा था।

□

कफनचोर

सत्य शकुन

पतित पावनी गंगा का घाट इस वक्त सूना था। ठंड अपनी पूरी जबानी पर थी। कलुआ गठरी बना हुआ बीड़ी व गहरे गहर कश खींच रहा था। उसकी हड्डिया कपकपा रही थी। नजरें गंगा पर दूर दूर तक टोह लेकर पुन घाट पर आ टिकती। आज तीसरा दिन था। क्या आज भी खाली हाथ लौटना होगा? कुछ भी हो, आज वह खाली हाथ घर नहीं जाएगा। भूख से कुलबुलाते बच्चा का रोना विलखना उस कुछ भी करन को प्रेरित कर रहा था। रात भी तो जाने वाली थी। सुबह कलुआ के लिए अभिशाप थी। दूर से इसी ओर आती पदचापा न कलुआ का ध्यान भंग किया। वह बड़बड़ाया—

“इसे भी अभी मरना था। ठंड मे भी साले को चन नहीं।”

पंडित हरिसुख 'हर राम, हरे कृष्ण, हर हर गंग गुनगुनाते हुए क्षण भर के लिए कलुआ के निकट रुके और बोले।

“कौन है रे।”

“कलुआ हू—सरकार।” कलुआ ने धीमे स्वर में जवाब दिया।

“अरे! कफनचोर। इस ठंड में तारी मति भी सठिया गई रे। यहा नव से बैठा है रे?”

“पूरी रात भर स।” कलुआ ने निरपक्ष भाव से उत्तर दिया।

“राम राम हरे कृष्ण हर कृष्ण।” करते हुए हरिसुख घाट की ओर बढ़ गया। कलुआ एक बार फिर से जीवित लाश में बदल गया। पंडितजी कब्र नहा धोकर वापस निकल गया कलुआ को पता नहीं लगा। प्रात रश्मिया उदित होने की थी। पक्षी नीड से उड़-उड़कर घाटों की ओर आने लगे थे। कलुआ मन मार कर उठा। एक बीड़ी निकाल कर मुह में लगाई और जलाने को ही था कि दूर से से बढ़ती आती एक वस्तु पर नजर पड़ी। उसने कयास लगाया कि बढ़ती हुई वस्तु लाश ही होनी चाहिए। वह तंजी से घाट के ऊपरी ओर बढ़ा। उधर अभी कोई

नहीं होता ।

वस्तु साफ-साफ दिखन लगी थी । लाश ही थी । वह फुर्ती से गंगा में कूदकर लाश की ओर तरन लगा और तजी में उसे खींचकर किनारे पर ले आया । इस समय उमकी आंखों में एक चमक थी और हाथा में एक नई शक्ति । वह लाश पर बधी रस्सिया की खोने में जुट गया । उसने लाश पर में कफन हटाने में उम पुन गंगा में डूबने दिया और हल्के बदन में कफन बगल में दबा मुड़ा ही था कि सामने से रामसिंह जाता दिख गया । रामसिंह पुलिस का सिपाही था । उसकी ड्यूटी घाट पर व्यवस्था की थी । रामसिंह पूरी ठमके के साथ कलुआ की ओर बढ़ रहा था ।

“कलुआ, बर दी लाश नगी । हरामजाद तू नरक में जाएगा । अर ! अब तो बम कर यह पाप करना । रामसिंह ने कलुआ की बगल में दबे कफन पर दौट डाली ।

“कफन तो क्येरा है । बम से कम बीस रुपये में जाएगा । कहत हुए रामसिंह की ललचाई निगाह कलुआ के चेहर पर टिक गई । कलुआ ने कफन का अपना बगल में और भी जोर में भीच लिया । रामसिंह खोबली हमी हसा ।

“लो, हवलदार साहब बीड़ी सुनागाओ ।” कलुआ ने एक हाथ से बीड़ी का बडल निकाल कर रामसिंह की आर बढ़ा दिया ।

“ला-कुछ ता ठड दूर हो । ओवरकोट में भी सर्दी घुसी जा रही है ।” रामसिंह ने बडल से एक बीड़ी निकालकर सुलगा ली । कलुआ धीमे स्वर में बोना । “मैं चल हजूर ।”

“अबे बीड़ी नहीं लगाएगा ।” रामसिंह ने कलुआ की टोका ।
“अभा पी है हजूर । बडल भी तो महंगा हो गया है ।” कलुआ ने बहावा बनाया ।

“महगाई का तुझ पर क्या असर पडता है । एक बार में बीस रुपये हाथ लग गये । महगाई तो हम उस बधी-बधाई पगार वालों के लिए है । तभी तो तेरे जमी के आगे भी हाथ पमारता पडता है ।

‘अरे ! हजूर, कहा आप और कहा मैं ।’ कलुआ ने खीसें निपोर दा ।
“कलुआ, उस दुनिया में कौन छोटा और कौन बडा । सब बराबर हैं ।’ बीड़ी का घुआ हुवा में छोड़ने हुए रामसिंह बोना । कलुआ को जान की जल्दी थी । उसने एक बार फिर से जाने की अनुमति मागी ।

तो मैं चू हजूर । बच्चों की रोटी का कुछ जुगाड करू ।”
“ला—एक बीड़ी और दे । मेरी रोटी का भी रुयाल रखना । लाशा के कफन उतारने में ही लगा रहगा या उहे डकने की भी सोचेगा ।

‘वही कर रहा हू हजूर ।’ रामसिंह से बीड़ी का बडल वापस लेता हुआ

कलुआ बोला ।

“जा ।” कलुआ के पैरो पर पख लग गए । उसन मुहकर पीछे नही देखा । कफन के सामान दचन बाले ने दुकान छोल ली थी । कलुआ ने वही आकर सास ली । रत्तीराम दुकान का सामान जमाने मे व्यस्त था । पदचाप सुनकर उसने दुकान के बाहर नजर डाली । कलुआ खडा था । रत्तीराम बाला—

“मैं समझा कि काई ग्राहक है । तीन चार दिन हा गये । आस पडास म कयी चूल्हा भी तो बंद नही हा रहा है ।”

“मर यहा दो दिन हा गए चूल्हा नही जला ।” कलुआ दीन स्वर म बोला ।

“कही चूल्हा बुझे, तो तेरा जोर मेरा चूल्हा जले ।” रत्तीराम ने कलुआ के स्वर म स्वर मिलाया । कलुआ को जल्दी थी सो उसन बगल से कपडा निकाल कर रत्तीराम के आग फेंक दिया और बोला ।

“जो देना हो दे दे । मुझे जल्दी घर पहुंचना है ।”

“बैठ तो सही, इतनी भी क्या जल्दी है । जाज बीडी नही पिलाएगा ।”

। “बीडी है क्या ?” कलुआ अपनी एक बीडी बकार नही करना चाहता था ।

“कलुआ तू झूठ बाल रहा है । खर ! तेरी मर्जी, ल ।” रत्तीराम ने गल्ले से पाच रुपए का नोट निकाल कर कलुआ की ओर फेंक दिया ।

“बस ! इतन से क्या होगा ?”

“तो सारा गल्ला तुझे सोप दू । देख कलुआ, किसी ग्राहक को उतरा हुआ कफन बेचना पाप है । मुझे भी दूसरी दुनिया मे जाना है ।” रत्तीराम ने दाव मारा ।

“तू चिंता न कर । मरे हुए पद इसका कोई असर नही पडता कि कफन कसा है ।”

“वह तो ठीक है पर उसके रिश्तेदारा की तो आखें होती है न । जीवन भर चाहे उसकी सेवा न की हो किंतु ”

“अच्छा बहस न कर । तुझे नही लेना है तो ठीक है । चतरे को दिखाता हू । यहा जिंद मुर्दों मे बदल रहे हैं और तुझे मुर्दों की पडी है । तुझे मेरे सिवाय सारी दुनिया धर्मत्मा नजर जा रही है ।” कलुआ आवेश मे बोला ।

“कलुआ तू गरम मत हो । चल दो रुपए और ले ल—बस ।” रत्तीराम सहज स्वर मे बोला ।

“चल दस रुपये दे दे ।” कलुआ ने सौदा कुछ आगे बढ़ाया ।

“दस बहुत ज्यादा है । रत्तीराम ने विवशता व्यक्त की ।

“दस रुपये से कम मे काम नही चलेगा । पाच रुपये का आटा घर ले जाऊंगा, दो रुपये का ठर्रा पीऊंगा और तीन रुपये अपने बाप रामसिंह को दूंगा । मैंने तुझे सारा हिसाब खोलकर बता दिया ।” कलुआ के स्वर मे दृढ़ता थी ।

"ल मर । पाच रुपय का एक और नोट रत्तीराम १ कलुआ की थोर पेंक दिया । कलुआ न पाच रुपय का दूसरा नोट उठाकर जब के हयाते बिया और दुकान स बाहर निकल आया । यह कुछ देर जसमजग म पटा रहा कि पत्त आग लेकर घर जाय या ठरें की दुकान पर पटूच । यह उठा विचार ही कर रहा था कि उसका दोस्त रघुआ आना दिखाई दिया । रघुआ भी कलुआ की तरह बडका म चलना रहता था । कलुआ न तुरत आय बचाकर निकलन की सोची कि आवाज आ पडी । कलुआ का खना विवशता हा गई ।

'छमिया की हालत अब कौसी है र ? कलुआ न मन मारकर पूछा । छमिया रघुआ की बटी थी और काफी दिना स बीमार चल रही थी ।

भैया पीछा छूटा । कपन का सामान लन आया हू । दगू, रत्तीराम उघार दे दे ता ।' रघुआ का खर दर स लरज रहा था ।

"दगा नस नही ? एस मौके पर जरूर देगा । कलुआ न रघुआ का आशवागत दते हुए कहा ।

मर पास तो कौडी भी नही है । मुझे तो छमिया बिताकुल कगाल कर गई ।" रघुआ की आख भर आई ।

छमिया का को कयो दोष देता है । तू कौन-सा करोडपति था । कराडपति होना भी तो छमिया को जाना ही था । उसकी बीमारी पर खच करने के लिए तरे पाम पसे थ ही कहा ? और होत भी तो क्या वह बच जाती । देख, बचना होता है न तो दवा-दारू के नाम पर पानी पीकर भी बच जाता है । मेरी घनू को देख ले । मैं चाहता था, वह मर जाय तो ठीक है पर जी गई । दूसरी ओर हरिसुख बामन को देख ले । अपन बट को जिलान क लिए उसने क्या नही बिया ? जो होना है, होता ही है । आ मरे साथ आ ।" कलुआ, रघुआ को दिलासा देकर अपन साथ लेकर रत्तीराम की दुकान पर आ गया । रत्तीराम ने उनकी ओर प्रश्नात्मक मुद्रा मे दखा ।

"रत्तीराम इसकी छोरी मर गयी ।" कलुआ सपाट स्वर म बोला ।

'अच्छा ।" रत्तीराम न अपना हादिक उल्लास छिपात हुए कहा ।

"इसे कपन का सामान चाहिए । पैसे इसके पास है नही । कलुआ स्थिर स्वर म बोला ।

'इसकी औरत के पास बुन्द ता है न । जा उहे ले आ । ऐसे वक्त पर मैं अडी नही करूंगा । एक दिन मुझे भी आखिर जाना है ।" रत्तीराम ने सदासयता दिखाई ।

'बुन्दे तो हरिसुख बामन भी ल लेगा । तुझम और उसमे क्या फक हुआ ?" शिकायत भरे स्वर मे कलुआ बोला ।

मैं तुम्हारे चुराए गय कपना को खगीदता हू । यह कम फक है क्या ? तुमने बुदे

दूसरे को दिए तो मेरी दोस्ती खतम समझना ।” रत्तीराम अडिग रहा ।

“हम तुझसे कुछ नहीं लेना । चल, रघुआ चतरे में बात करेंगे । हा, तू अपने दस रुपये ले और मर्रा दिया कफन वापस दे । उसके तो पैस बचेंगे ।” कलुआ ने जब से दस रुपये निकाल कर, रत्तीराम के आगे फेंक दिए ।

“ऐसा कभी हुआ है । मैं बिकी हुई चीज वापस नहीं करने का ।” रत्तीराम अड गया ।

“वापस कैसे नहीं करेगा ।” कलुआ तैंग में आ गया । दो चार लोग बहा और एकत्रित हो गये । बहा-मुनी बड चुन्नी थी । लागा को जरा ही दूर से रामसिंह डडा हिलाता हुआ । इसी ओर जाता नजर जाता कि वे एक-एक कर पिसक लिए । रामसिंह रत्तीराम की दुकान पर रुक गया । कलुआ ने अपनी आपबीती रामसिंह को सुना दी । रामसिंह ने रत्तीराम की ओर देखा और बडक कर बोला ।

“तुम चोरी का माल घरीदत हा । धान बात पहुच गई तो कही के न रहोग, कानून की सत्ती जानत हो न ?”

“जानता हू, हुजूर ।” रत्तीराम मुर्दे स्वर में बोला ।

“क्या रे ! यही दस रुपये है जो मने तुझे दिए थे ?” रामसिंह, रत्तीराम के निकट पडे दोनो नोटा को उठाते-लहरात हुए बोला ।

“हा, हुजूर ।” कलुआ ने हामी भरी ।

“इसका दिया गया कफन निकालो ।” रत्तीराम को आदेश मिला । रत्तीराम न आदेश का पालन किया ।

‘क्या ? यही है रे ?’ रत्तीराम के हाथ में पकडे कपडे की ओर इशारा करते हुए रामसिंह ने कलुआ से पूछा ।

“जी, हुजूर यही है । जापन भी तो सुबह देखा था ।” कलुआ विनीत स्वर में बोला ।

“चीप मैं इन लफडो में नहीं पडता । अवे साले ! शम नहीं जाती, कफन के लिए लडत हुए । लोग क्या सोचते हाम ! छि छि” रामसिंह ने दोना नोट अपनी जेब में डाल लिए और अहसान भर शब्दो में बोला ।

“पकड अपत माल को । इन छोटे छोटे झगडो से ही तो दगे हो जात हैं ।”

कलुआ ने आग बडकर कफन अपने हाथो में धाम लिया ।

“हुजूर । रत्तीराम गिडगिडात स्वर में बोला ।

‘क्या है ?’ कटखते कुत्ते की तरह रामसिंह ने मुद्रा बनाई ।

‘इसकी छोरी मर गई है । यह कफन का सामान लेने आया था । मैं बोला कि अगर इसके पास कुछ गिरवी रखने को है तो ले आय । मैं फौरन सारा सामान दे दूंगा ।’ रत्तीराम ने अपना रोना रोया ।

इनके पास कुछ होता तो क्या ये दूसरो का कफन उतारते ?” रामसिंह न

अपनी दलील दी।

‘है रघुआ की बीबी व वाना म बुन है।’ रत्नीराम प्रत्युत्तर म बाला।

‘तुम इसस क्या ? चोट्टा बही का। रामसिंह न रत्नीराम को छाड पिलाई। रत्नीराम का मुह उतर गया। रामसिंह उसकी दुःखान म बाहर निकल पडा और उसके पीछे-पीछे वनुआ और रघुआ भी बाहर आ गय। रामसिंह बिना पीछे मुड बोला। ‘साला, बडा बदमाश है। पाकी बही का। इमे तो जैस कभी मरता हो नहीं है। अर ! जादमी को मदद आदमी नहीं करेग तो गाय-बुत्त करेग क्या। रघुआ तरी छोरी के दाग के लिए बुछ-न-बुछ करना होगा। घर म साग कब तक पडी रहेगी भना ? कपन तो मुफ्त म आ ही गया। अब बाकी बात रही अय सामान की। चल तरे घर चलता हू। अपनी बीबी के बुद स आ। चतरे के पास रखवा देता हू। तुम दोना को तो वह ठग लगा, हरामी है न।

रामसिंह उन दोना के माम रघुआ व घर पहुचा। रघुआ घर म घुसा और जल्दी ही बाहर जा गया।

‘क्या ? काम बना ?’ रामसिंह के स्वर म उत्सुकता थी।

‘हां, उसने बिना बिस्ती हुज्जत व द दिय। छारी की दवा-दारू के लिए तो दिए नहीं थे। अब पत्थर वनी बठी है।’ रघुआ के स्वर म बदना थी।

‘धीरज रख रघुआ। जो होना होता है, वह होकर रहता है।’ रामसिंह के पीछे डग भरता हुआ वलुआ बोला।

चतरे की दुकान म घुसते ही रामसिंह बोला—‘चतर, इसके बुन्द रखकर जो सामान यह मागे दे दे।

रघुआ ने बुदी की जोड़ी जनरे के हाथ म रख दी। चतरे ने बुन्दे जाने परसे और फटाफट सारा सामान दे दिया।

‘जा-ओ, देर न करो।’ रामसिंह बोला।

वलुआ और रघुआ ने सामान उठाया और तजी स घर की ओर लौटे। रामसिंह की फौली हुई हपली म चतर ने मुम्बरात हुए बीस रुपये का नोट रख दिया। दोना सतुष्ट व। □

पेंडुलम

दीनदयाल शर्मा

उम्र लगभग पच्चीस बरष । जाधी ब्राजू की खादी की कमीज । खाकी रंग की पट । पैरो मे हवाइ चप्पल । वह हमशा इमी पोशाक मे रहता । भीखू नाम था उसका । जसा नाम वैस दिन । भीखू रामू काका के ढाज पर रोज हाजिरी देता और वहा आत ही सबसे पहले उसकी जाखे अखवार मे रिक्विनया के विज्ञापन दखन के लिए लालायित हो उठती ।

आज भी वह रामू काका के ढावे पर एक कान मे रखे मुडढे पर बैठा अखवार पढ रहा था । वैसे अखवार पढन की न ता उमे कोई आदत थी और न ही कोई शौक । बस, यह समझिये कि काफी असें से अखवार उसकी दिनचर्या का एक विशेष अंग बन चुका था । वह अखवार हाथ मे लेते ही उसके दूसरे पृष्ठ पर अपनी नजरें बिछा देता । इस दूसरे पृष्ठ से उसे बहुत लगाव था । ढेर सारे विज्ञापन-ही-विज्ञापन और वह विज्ञापन की दुनिया मे खो जाता । इतना कि आस पास बैठे आदमी क्या बातें कर रहे हैं, उसे कतई ध्यान नही रहता । विज्ञापन मे पद, योग्यता, आयु देखकर तो वह मन-ही-मन बहुत प्रसन होता, लेकिन "अनुभवों की प्राथमिकता" की बात पढता तो एक लम्बी साम लेकर रह जाता और सरकार की नीतिया को लेकर अदर-ही-अदर जलता रहता ।

"भीखू ।" रामू काका न आवाज दी ।

"क्या काका ?" भीखू अखवार से नजर हटाकर बोला ।

"बा बणाऊ बेटा ?"

"हा काका ।"

और रामू काका घाय बनाने लग । उन्होने भीखू के चेहरे को एक पल मे ही पट लिया था । आज भीखू कुछ ज्यादा ही उदास लगा था उह । भीखू की आखों मे निराशा और जिन्तामा का उतार चढाव देखकर रामू काका के चेहरे पर भी उदासी छा गई । उनकी गुनगुनाहट बढ़ हो गई और दिलोदिमाग मे एक अतद्वन्द-

सा छिड़ गया। रामू काका सोचन लग कि मरे बस म क्या है। चाय से ज्यादा और हैसियत भी कितनीक है मेरी।

बुछ ही देर म रगीन कपड पहने एक् दादा टाइप आदमी ढावे म घुसा। उसने आते ही भीखू के हाथो से जखबार झपट लिया। भीखू दखता ही रह गया। उस गुस्सा तो बहुत आया, लकिन लडाई करना उसे अच्छा नहीं लगता था।

‘अब जोय पिद्दी के सोरवे, क्या ताक रहा है मरी तरफ खायेगा क्या ?’ इतना कहकर वह आदमी जखबार को उलटने पलटने लगा। भीखू खून का घूट पीकर रह गया। गम लोहे पर चोट करने की बजाय भीखू न शालीनता स वह, ‘प्लीज एक मिनट भाई साहब कोई जरूरी पूज देखनी थी बस।’ ठण्डी जल रूपी शालीनता ने मानो गम लोहे की सारी गर्मी अपने म समट ली हो। उस आदमी ने जखबार को बेतरतीब ढग से झकटठा करके भीखू की ओर फक दिया। भीखू ने जखबार उठाया और फिर विज्ञापन पढने म खो गया।

‘बेटे ! क्या रखा है जखबारों म। सब बासी-ही बासी भरे पडे है।’ उस आदमी ने कहा। भीखू ने उस आदमी की बात सुनकर भी अनुसुनी कर दी तो वह पुन जखबार की ओर सरसरी दष्टि डालता हुआ बोला, ‘वाह बेटे ! विज्ञापन पढ रहा है तो य है जरूरी पूज अर क्या धरा है विज्ञापनो मे। बैंक वाली खबर पढ, जिस कुछ लोगो ने पिस्तौल की नोक पर लूट लिया था।’ वह आदमी बोने ही जा रहा था और भीखू जखबार क विज्ञापनो म खोया रहा। कुछ ही देर बाद भीखू ने उस आदमी से नम्रतापूर्वक पूछा, चाय पीयेगे आप ?

इतना पूछन ही उस आदमी क चेहरे पर पश्चाताप की रेखाएं उभर कर स्पष्ट हो आइ। वह बठ न सका और उठ कर चल दिया। भीखू के इन तीन शब्दो न उसकी आत्मा को झकझोर डाला था।

‘काका, चाय नहीं बनी क्या ?’ भीखू ने आवाज लगाई।

‘बस अभी ल्याओ बेटा।’ रामू काका ने भीखू के सामन रने मुडके पर चाय का गिलास रख दिया और धीरे स पूछा, ‘इटर दवर आया है बेटे ?’

‘नौकरी मिली ?’

‘नौकरी नौकरी कहा है काका अपन जँसो के नसीब म।’

‘भीखू बटा, नौकरी की छातर इत्ती जल्दी हार मत माने। अर फेर दुनिया म न हिम्मत स्यू काम लणो चर्दज बेटा। मैं रोजीना दखू क बर्द वार अखबार नी आव पण तू जरूर आव। तू कन्नी चूक। पाम भरणो अर इष्ट देवण म्हें ही मारो सरीर गाळ दियो। इतणो मिणत करण आळ री भगवान जरूर मुणसी।’

“भगवान ! उह कहा सुनता है काका । क्या भगवान को यह पता नहीं कि मेरे बूढ़े मा-बाप कितनी आस लगाये बठे है । कौन है उनके बुढाप का सहारा ? क्यों काका उनके बुढापे का सहारा में ही हू ना ?”

“हा बेटा आ बात तो तू ठीक कहै है, पण तू पढग्यो कितो ?”

‘क्या पढ गया काका चार साल पहले एम० ए० किया था जानत हो ना काका, मैंने सोलह क्लासें पास की है । अपनी जिदगी के सोलह वसन्त इसी पढाई पर लगाये हैं मैंने । क्या दिया है मुझे इस पढाई ने ? कबल ठोकरें ही दी हैं काका । बस ठोकरे । मुझे आज कोई चपरासी भी नहीं लगाता । जहा भी इटरव्यू देता हू, पूछते हैं—किसी की सिफारिश लाये हो ? तो किस का नाम लू मैं ? कौन है मेरा ? काका इस स्वार्थी दुनिया मे आज कोई नहीं है मेरा ।’

“छाती राख भली करगा भगवान । धीरज स्यू सब काम बण ।”

“धीरज रख, मैंने जितना धीरज रखा है ना, उतना तो शायद ही किसी ने रखा हो । धीरज की भी तो कोई सीमा होती होगी काका नात रिश्तेदारो म वही भी इज्जत नहीं होती मेरी । सब मुझे बेकार का आदमी मानने है और मा मा कहती है—“सरकारी खजाने मे सीर होता तो मेरा बेटा जरूर नौकरी लनेगा ।” मा कई बार कृष्ण के उपदेश देती है कि—“भीखू बेटा, कम किये जा फल की इच्छा मत कर ।’ काका, आज इस दुनिया मे कोई ऐसा आदमी है क्या, जो कम करता है, लेकिन फल की इच्छा नहीं रखता ? मैंने बहुत देखे हैं इम छोटी सी जिदगी म ।”

“अरे बेटा, अभी के देख्यो है ।”

“नही काका मैंने बहुत कुछ देखा है आज बिना मतलब के कोई नमस्ते भी नहीं करता । कितनी स्वार्थी है ये दुनिया लोग सोचत हैं कि हम बहुत आगे बढ गये हैं, पर मैं कहता हू कि लाग आगे नहीं बढे है, बल्कि जमीन म घसते घसते बोन होते जा रहे हैं । जिससे काम लेना हाता है, उसकी प्रशसा के पुल बाधते है और मतलब पूरा हो जाने पर दूध से मक्खी की भाति निवाल फेंक देते है ।”

“जा दुनिया । दुनिया माय सौ की चाल बेटा । भीखू तू काल कयो नी के म्ह एक बडी परीक्षा म पास होग्यो ।

‘हा काका, पास ता हो गया । उसका ही ता इटरव्यू था आज ।’

“काइ पूछ्या बेटा इटरू माय ?”

“पूछना क्या है काका जो मन मे आया वही पूछ लिया बस ।”

“फेर भी बेरो तो लाग बता नी ।”

‘क्या बताऊ काका कोई बात हो तो बताऊ पहले पूछा, ‘तुम्हारा नाम ?’ फिर पूछा—‘पिता का नाम ? इसक बाद बोले, जाओ ।’

“बस इत्तीई ?”

‘हा वाका ।’

‘सब ने जाई पूछ्या ?’

‘नहीं ता किसी का पूछा, ताजमहल कहा ह ? तुम्हारी कमीज क बदन कितन है ? भैंस के ऊपर बाल दात कितन हाते हैं ?’

‘कमाल है बडा उटपटाग सवाल पूछ ?’

‘और क्या अब क्या तैयारी करें एम सवाला की । क्या व्यावहारिक जीवन म काम आती है ऐसी चीजें ?’

‘के पताऊ बेटा, आजकल पढाई भीत ऊची होयगी । पली ता इण तर नी हातो । अर, चा ठण्डी होगी भीखू । बाता बाता माय नेरो इ नी लाग्या । चल छोड हू दूसरी चा वणा’र ल्याऊ तू एकर अखबार देख ।’ इतना कहकर रामू काका गिलास उठाकर चल दिय और भीखू शूय म झाकता हुआ अतीत की अथाह गहराइया म खो गया । उसे अच्छी तरह याद आ रहे थ व दिन जब उसने दसवा कक्षा म फस्ट पोजीशन ली थी । कितने सारे पत्रकार उसका इण्टरव्यू लन आये थे । वो भी तो एक इण्टरव्यू था । कितना खुश था वह उस दिन । पत्रकार लोग बैठक म आये हुए थे । मा रसोई म चाय बनान लगी थी और पिताजी मना करने पर भी मिठाई लेन चले गये थे । वह कितना सुखद अनुभव कर रहा था उस दिन क इण्टरव्यू म । उसकी छोटी छीटी बातो को कितनी गहराई स सुना था उन लोग ने । एक पत्रकार पढाई क बारे म पूछ रहा था ता दूसरा उसकी जय रचियो के सम्बन्ध म और दूसरे दिन अनक जखबारो म जब उसका फोटो सहित इण्टरव्यू छपा था तो डेर सारें प्रशंसका के पत्र पाकर कितना खुश था वह । अचानक ही पास के रेलवे क्रासिंग पर खडा न चर की आवाज के साथ ही भीखू की तद्रा टूटी ।

‘जर ये क्या हो गया ?’ किसी ने कहा । छापे के बाहर छडे लौगा ने विस्मित नेत्रो म रेलवे क्रासिंग की जोर लेखा और उधर दौड पडे । भीखू भी बाहर चला आया । उसने रामू काका की जोर प्रश्न भरी निगाहा स देखा । फिर तज बटमा म वह भी उधर चल पडा । रामू काका न जल्दी जरदी गल्ले म पडे नोटा को जेब म ठूम लिया और व भी उधर ही चल पडा । गाडी रूक चुकी थी । सवारिया उतर कर दजिन की तरफ बढने लगी । आम पास क्षत्र के सभी लोग उधर ही दौड रहे थ । इजिन क चारा ओर अच्छी खासी भीड जमा हो चुकी थी ।

सब दय रहे थ कि एक युवक रेल म बटनर टुकडे-टुकडे हां चुका था । सब की आंख उधर ही लगी हुई थी । भीखू की आंखें भी उधर ही थी लेकिन वान लागी की बाता की तरफ थ ।

‘अर क्या हो गया बाद आदमी गाडी क नीच आ गया लगता है । किसी

' अब तो मिनेगी व नौकरी ? आदमी गो उद्देश्य पढाइ कर 'र नौकरी करनी ही तो नी है । इत्ती बडो दुनिया म्हे कोइ और काम नी है ? आज जगहा-जगहा स्कूल कॉलेज खुलरमा हे । पढण आळागी भीड लागरी है । आनै सारा नै ज नौकरी नी मिली तो क ए सारा आत्महत्मा कर त्यगा ? मरणे आळा आ नी सोव'क बा तो चनोज्य, पण वेर जाण रे बाद बागा पूडा मा पापा गै के हाल होसी । पत्नी याटी भान आस तो रह्य । अब कठै जै । कैंगे महारे जियगा ।' रामू काका बोदन ही जा रह थे और भीखू गदन झुकाए मुनता रहा । वह डूबी हुई आवाज म वाला, चला काका । फिर रामू काका और भीखू ढाबे की आर चन पडे ।

पुलिस मतक नौजवान की लाग के टुकडा को इकट्ठा करके जीप म डालकर ल गई । अब भीड खाम हो चुकी थी । सवारिया गाडी मे पुन बठ गई । गाडी चल पडी ।

याडी देर बाद लोग अपने-अपने काम म लग गय । उस समय ऐसा लग रहा था मानो कुछ दर पहले यहा कुछ हुआ ही नही हो ।

"भीखू ।"

"हा काका ।"

"बेटा, नौकरी नी मिलै ता जिदगी स्यू हार मान अर मरणा नी चहीज । मिनख रा जनम बार-बार नी आव । आ तो जिका आच्छो कम करै । बानै मिल । तू मरी बात ध्यान हू सुणै नी ?"

"हा काका ।"

' बटा मन छोटा ना कर तू आज मरी कणो मान'र मन माय सक्त्प म ल, कै जै नौकरी नी मिली ता एव कायर री तरहा अपनी जिदगी खत्म नी करेणो ।"

"ठीक काका ।" एव लम्बी मी माम लेकर भीखू न कहा ।

"बेटा, ज्यान है ता जहान है । आदमी न की बणन वास्तु भौत कुछ त्याग करना पड ।' रामू काका बोल ता रह थे और भीखू गदन झुकाए धीरे धीरे चानता हुआ सब कुछ मुनता जा रहा था ।

दूमर दिन मुबह-मुबह ही भीखू अग्रवार का बडल लिए रामू काका के ढाबे पर आया और चेहर पर हल्की-भा मुस्वान सान हुए बोला—"काका, य लो आज का ताजा अग्रवार । रामू काका विस्मित नजरा म भांगू की तरफ ल्य रह थे और भीखू मारदकिल व पडत मारता हुआ आग बड गया । □

चारपाई

गोपाल प्रसाद मुद्गल

सावन का महीना था। बादल घिरे थे। बरसात हो रही थी।

खुले में पड़ी थी एक चारपाई। वह भी मूज के बान से बुनी हुई। उस पर बराबर बरसातें होनी रहीं। चारपाई भीग गई। हवा लगत ही बान अकड़ गया। थापा ऊपर उठ गया। बान से न रहा गया। तनकर बोला, "मैं सबसे ऊपर। चारपाई में मेरे दम से दम है। मैं न रह तो सब गुड़ गोबर हो जाए। सचमुच मेरे ही दम का जमूड़ा है। और सब घास-कूड़ा है। मेरे ताने-बान पर ही चारपाई, चारपाई है। मुझसे ही चारपाई की पूछ है। मैं न रह तो बिछावन किस पर हा ? तोग कहा सोए ? नींद कहा निकालें। बाह मरा सानी वाई नहीं।"

दोना लंबी पाटिया न बान की शखी सुनी। वे धनझना उठी। उनसे न रहा गया। तुनक्कर वाली, बाह भाई बान, खूब रही। तुम ता अपने मुह मिया मिट्टू बन रह हो। तुमको सभालने वाली हम ही तो है। हम नहीं सभालें ता तुम कहा टिकोग। हवा में झूलत रहोग। अधर में लटकत रहोगे। फिर तुम्ह कौन पूछगा ? कौन तुम्हारा नाम वेगा। सारा दारोमदार तो हम पर है। हम पर ही तो चारपाई का हाथ है। हाथ न रह तो भला क्या रह जाएगा ? दुनिया में जितने भी खेल है सब भुजाआ के हैं। भुजा न हो तो सब बेकार ह इसलिए हम ही मिरमौर हैं। हमारी बराबरी कौन कर सकता है।"

दोना छोटी पाटिया (सेर) न दोना की बात सुनी। वे बिगड़ उठी। तमतमा कर बोली, "हमने तुम दोना की बात सुन ली है। तुम दोनो अपनी अपनी हाक रह हो। अपनी-अपनी शेखी बघार रह हो। बड़ी पाटियो सुनो, तुम दो हो तो हम भी दो है। तुम बड़ी आवार में हो। इससे क्या हुआ। इसी पर बड़े बोल बोल रही हो। हमसे एक ने सिरहाने को सभाल रखा है। दूसरी न आखिरी छोर। एक छोर में थामू एक छोर तुम थामो, हमने ही ता सिधाया है। हम आकार में

छोटी है पर है बड़े काम की। हम न हा तो तुम दोनों को कौन पूछे। वान कहा पर टिके। सच मानो हम छोटी होते हुए भी बड़ी है। हमारा मुवाबला कौन कर सकता है।'

तभी पाए बोल पड़े, "हमने तुम तीना की बातें सुन ली हैं। तुम तीनो बड़ बढ़कर क्यों बोल रहे हो? तुम सबको तो हमने सभाल रखा है। हम चारा सठरी की तरह डटे हैं। बिना हिले-डुने। उस स मस नहीं होते। सबका भार हमार कधों पर है। हम उफू तक नहीं करते। हम न हो तो तुम कहा टिका। सब धूल चाटने लग जाए। सब माटी में मिल जाए। सब गुड-गोबर हो जाए। हमारी पूछ दुनिया भर म है। हर कुरसी हम पर टिकी है। हर तख्त हम पर टिका है। क्या छाटा क्या बडा हर मकान हम पर टिका है। सारा ससार हम पर टिका है। मुना नहीं पाए मजबूत हो तो हर काम मजबूत। हमारी बराबरी कौन कर सकता है। हम दुनिया म सबसे बड़े हैं।"

तभी चारपाई चरमराती हुई बोल पड़ी, "तुम सब अपनी-अपनी हाक रहे हो। अपनी अपनी ढपली अपना-अपना राग अलाप रहे हो। तुम्ह पता है तुम्हें यह रूप किसने दिया? रूप देने वाले को तो मत भूला। वान तुम ही मुना। मूज को जगल से काटकर नहीं लाते। उसे कूट पीटकर वान नहीं बनात तो तुम कहा होत। वहीं जगल म ही पड़े रहत। जगल म मोर नाचता कौन दखता। वान भी बन जाते तो क्या होता। उस चारपाई बुनन वाले को भी तो याद करो। उसने महनत की। पसीना बहाया। तुम्हार ताने-बाने पूर किय। फिर कहीं तुम इस रूप म आए उस जादमी का एहसान मानो। बड़-बड़कर मत बोलो। ऊपर को मत धुको।

"लम्बी छोटी पाटियो, तुम भी सुन लो। तुम भी लम्बी-लम्बी तान रही हो। याद करो तुम कहा थी। कहा स कहा आ गयी। तुम जपन आप नहीं आयी। न जाने कितन हाथो न तुम्ह सवारा है। न जान कितन लागा ने तुम्ह यह रूप दिया है। सहयोग न मिलता ता तुम निरी काठ होती। तुम्ह कौन पूछता। अब तुम भुजा बन रही हा। तुम म मे दो सिराहना और आधार बन रही हो। तुम्हें अपन ऊपर बडा गुमान है। गुमान मत करो। आभार मानो रूप मवारने वाली का।"

'पाए तुम भी सुन लो। तुम तो ससार व आधार बन रह हो। बड़े गाल बजा रहे हो। जमीन पर रहो। ज्यादा मत इतराओ। तुम भी तो कभी जगल म पड़े थे। निरे काठ थे। तुमको भी काट-पीटकर बनाया है। छराद पर चडाकर सवारा है। किसी ने पाधना की है। नाम तुमको मिला है। महनत किसी न की है। कमाई तुम खा रहे हो। किसी की महनत को तुम भोग रहे हा। भाई, तुम्हें

जिसने यह रूप दिया है उसे मत भूलो।”

चारपाइ ने फिर सभी को समझाया। तुम चारो मिले हो तो यह रूप बना है। जब तक चारो मिले रहोगे, यह रूप रहेगा। अगर अलग-अलग हुए तो कोई वही का नहीं रहेगा।

सवन सोचा, सवने जाना, सबने माना। हम सब मिलते हैं तो हमारा एक रूप बनता है। □

धुधलाई पहचान

सलीम खाँ फरीद

बड़ी कठिनाई स सडक पार कर विरजू हाफने लगा। चिलचिलाती घाम और सिर पर गठरी का बोझ दोनों उसे पसीना बहाने को काफी थे। वाहनो की चिल्ल-पों और भीड़ का कोहराम उसे अटपटा और उबाऊ लग रहा था। लोग अपनी ही धुन म चल जा रहे थे निलिप्त, निहायत अपने ही म खोये स।

पता भी तो याद नहीं रहा विरजू को। इतने बडे शहर म उसके किशन का घर कौन बता सकता था? किससे पूछे यही दुविधा उस साल रही थी। आखिर हिम्मत करके उसन एक भले से आदमी स पूछ ही लिया—“सुनना भाई साव! ये किशन कुमार का घर कहा मिलगा?”

कौन किशन कुमार? कुछ पता-बता है तुम्हार पास? मोहल्ला, गली, मकान नम्बर इनक बिना तो मुश्किल है बाबा घर मिलना। बस ये किशन कुमार क्या करत हैं? आदमी न विरजू से महयोग करन क अदाज म पूछा।

‘भाई साव अच्छी तरह ता मालूम नहीं। हा! कुछ दिन पहल उसन लिखा था कि वह कनक्टर बन गया है। म उमका पिता हू।’ विरजू ने तनिक सीना फुलात हुए कहा।

इतनी ही जानकारी पर्याप्त थी उम आदमी के लिये। वह अति शिष्ट हो चला और बोला ‘ओ हो, तो आप कनक्टर साहब के पिताजी ह। मैं भी वही पर बाबू हू। लाइये ये गठरी मुझे दे दीजिय मैं पहुचा दूगा आपनो। और उमन धूम कर आवाज दी—ए रिक्शा वाल।

विरजू ने जानाकारी की—‘नहीं नहीं मैं पदल ही चला जाऊगा। तुम तो मुझे रास्ता बता दो बस। तब आदमी ने विरजू को सारा रास्ता समझा दिया और विरजू चल पडा उमकी बताई सडक पर।

विरजू के कई दिना स पत्नी न कुचरणी लगा रखी थी कि किशन स मिन

आओ। क्योंकि किशन का पत्र आये साल भर से ज्यादा समय हो गया था और न ही वह खुद गाव आया। यो किशन कालज मे पढता था तब भी गाव कम ही आता था। बिरजू न फीज की नौकरी छोडी और किशन को उसकी अनिच्छा के बाद भी पढाया। और किशन ऐसा पढा कि पढते पढते ही जाने किसस शादी कर बठा और विरज अपना-सा मुह लेकर रह गया था। वह तो पत्नी ने हाथ पाव जोडकर उसे मना लिया था कि पढा लिखा है छोरा अपनी पसद म ब्याह किया है तो अच्छा ही है।

जैसा है अपना है। या दुत्कारने सतो वह और भी परे हो जाएगा। वसे बिरजू को उसकी कमाई की कोई परवाह न थी। दोना पति-पत्नी का गुजारा ता उसकी पेशन से ही हा जाता था। जो जमीन थी वह किशन की आगे की पढाई क भेट हो गई। जब गाव म सिफ कच्चा घर भर बचा था।

विरजू न टालने मे बसर न छोडी थी, लेकिन पत्नी ने रो रोकर आशकाओ मे डाल दिया कि न जाने उसका किशन कैसा है? कोई पत्र भी नही दे रहा। बहू को तो कुछ हो नही गया? आखिर बिरजू को हथियार डालने पडे और पत्नी ने देशी धी म गाद क लड्डू शीघ्र ही बना दिया। पोते के लिए घुरते सिल कर बाध दिये। एक तौलिया रख दिया यह कहकर कि किशन को कधे पर तौलिया रखने का बहुत शौक है। चलत चलत उसने कहा था बहू से कहना एक बार तो अपने पुरखो क घर भी आए उनकी आशीप स ही परिवार फूलता फलता है। और कहा था कि किशन से कहना तरी मा तुझे बहुत याद करती है अबकी दीवाली पर यही लक्ष्मी पूजना, आदि जादि बातो को याद करता हुआ बिरजू एक बगले के आगे जाकर ठिठक गया।

बगले पर सतरी पहरा दे रहा था। बिरजू उससे पूछने लगा मगर सतरी को कम सुनता था सो बिरजू को इशारे से उसन पास बुलाया।

बिरजू ने तनिक ऊची आवाज मे कहा—“मुझे किशन के घर जाना है। मैं उसका पिता हू।” सुनते ही सतरी ठठाकर हसा और बिरजू को जापाद मस्तक घूरन लगा तथा अगले बगले की तरफ सकेत कर दिया। बिरजू समझ नहीं पाया उसकी हसी का कारण।

सतरी तो अगले बगले पर भी था मगर उसने बिरजू को कुछ नहीं कहा। फुलवारी के पास स जाता हुआ बिरजू एक नन्हे से बालक को दखकर रुक गया। पोते की झलक नजर आई उसम। एकाएक उमडे वात्सल्य से विह्वल हो आया और उसने बालक को गोदी म लेकर भीच लिया। बुनमुनाकर बालक, ठिनकने लगा और मचलनर बिरजू की गोदी स नीचे उतर पडा। बालक ने आखें तरेरी और “छि छि मदा भिखारी कहते हुए बुत्ते के पिल्ले को उठाकर भीतर

चला गया। विरजू भीतर से टूटकर भी अघरो पर फीकी मुम्बान ले आया।

किशन व सचिव न विरजू को दया तो माथे पर त्यौरिया ल आया। वह कुछ पूछता उसस पहन ही विरजू न बता दिया—“मैं किशन का पिता हूँ। क्या किशन घर पर है?” सचिव चौंका। किशन न तो कभी नहीं बताया उस कि उसका कोई बाप जीवित है। फिर यह बाप कहा स प्रगट हो गया। उसन सोचा कोई गाव का होगा मिलने वाला गवार जो ठहरा। न ढग के कपडे न बोलने का शऊर।

उसने कोन मे वरामदे की ओर हाथ कर दिया यह कहत हुए—‘अमा कलेक्टर साहज जरूरी बात कह रहे हैं, आप वहा बठिय।’

विरजू मुडकर बैठने को हुआ तो सहसा बगले का भीतर का मुख्य द्वार खुला और एक मोटी सी महिला के साथ बात करते हुए किशन बाहर निकल आया। पहले स बठे कुछ लोगो न “सर, हुजूर, हुकुम। जी साहब” कहकर किशन का अभिवादन किया और विरजू ने गव से मूछें मरोटते हुए सचिव को दखा कि देख मेरे किशन का रतबा। रोक अत्र मुझे कैसे रोकेगा? विरजू सोच रहा था किशन अभी सपत्नीक चरण स्पश करेगा और मैं उस गले लगा लूंगा। ज्या ही पलटकर किशन न विरजू को देया तो उसकी वेशभूषा और मूछा पर द रहे ताव को देखकर बट-मा गया। लेकिन तत्काल ही सभलकर वह आवां स अपरिचय का भाव ले आया और स्वाभाविक रूप से पूछ उठा—“कहिय, क्या काम है?”

विरजू का नीचे का सास नीचे और ऊपर का ऊपर रह गया। कुछ उत्तर दत न बन पडा। गला र घ गया। सोचने लगा मेरे सिर पर चढकर मेरे बाल नाचकर खुश होन वाला मेरा किशन चरण छूने के बजाय यह पूछ रहा है कि कहो, क्या क्या काम है?

भर आये गले को खखार कर उसने चपलता से दोनो हाथ जोड दिए और बोला—“कोई काम नहीं है जी। बस आपक दशन करने चला आया।” और गठरी सिर पर धरकर गेट से बाहर निकल गया। उसे अब गठरी मे बहुत वजन लग रहा था।

क्रोध मे दात चवात हुए विरजू कभी कभी भावावेश स रोन को हो आता लेकिन रो नहीं सकता। उल्टे पावां गाव लौट आया। घर पहुचते-पहुचत रात हो गई थी। विरजू को वापस आया देखकर पत्नी विस्मय मे पड गई और घबराकर बोली—“क्योजी, क्या किशन नहीं मिला? या ठीक तो है ना? बहू कसी है?”

गठरी को जोर स धरती पर पटककर विरजू वरस पडा—“अरे, गली औरत,

अब वो अपना किसना नहीं है। वो कलेक्टर बन गया है। कलेक्टर विशन कुमार।
 मुझे देखकर पीता बोला छि गदा भिखारी। और तेरे सपूत न, जानती है क्या
 कहा? कहा कि कहिये क्या काम है? अब उसे तरे तौलिए की कोई जम्मत
 नहीं। उसके कंधे पर उस मोटी लुगाई का हाथ रहता है। मैंने तुझे मना किया था
 ना पर तुझे ज्यादा हेत जाता है।" और बिरजू फफक फफककर रो पडा। पत्नी
 एकटक धरती को दखने लगी थी। दूर कही बट बक्ष पर मोरनी आत्तनाद कर
 उठी, उसके बच्चे खो गए थे। □

नियति

श्याम मनोहर व्यास

अधरात्रि का समय था। कडाके की ठंड पड़ रही थी। हवा में मानो बर्फ घान दी हो। अधरात्रि की उम ठंड में हवा की लहरे छुरी की तरह चुभ रही थी। ठंड का एक मौसम में हरिराम की दह कपकपा रही थी। वह चौधरी रतनमिह क कुए पर पानी का पम्प के पास बैठा चौकसी कर रहा था। वह बधुआ मजदूर था। त्रिजली गत में ही मित्रन से खेत को पानी भी रात्रि में ही मिलता था।

आज तीन दिन में वह निरन्तर इसी तरह रात गत भर खेत की मंड पर टहलत हुए हथेलिया रगड़-रगड़ कर बिता रहा था।

तीन दिन की करारी ठंड उसके अंदर प्रवेश कर गयी। उस बुधवार न जा दरोचा।

रानभर वह कराहता रहा। मुबह चौधरी खेत पर आया। उसका राबीला चेहरा व अलसाई आँखें देखकर हरिराम ने डरत डरत कहा—“चौधरीजी, आज तबीयत ठीक नहीं है। मैं दवा लेने जाता हूँ, आज रात्रि के लिए कोई दूसरा आदमी रख लीजिए।”

हरिराम के स्वर में कातरता थी, विवशता थी। चौधरी का पारा खड़ गया। वह उस एक क्षण्ड लगात हुए बोला—“साल हरामजादे। काम से जो चुराता है। किसी तरह पानी मिना है तो तू हजार बहान बना रहा है। तुम भरे बधुआ मजदूर हो। मैं कुछ नहीं जानता। तारा बाप भी मेरा कर्जा नहीं उतार सता। तू क्या उतारेगा? जब तक तू जिंदा है मैं दूसरा आदमी नहीं रखूंगा। चल उठ, जा फौरन खेत पर।

साचार, विवग हरिराम फिर काम पर आ जुटा। यही उसकी नियति था। पुराना में बिगमते में दग यही मिलता था। बुधवार तज हो गया था। फिर दूक मार फटा जा रहा था। उधर टपूब बल खालू था। वह क्या रिमा में पानी भर रहा था। एक हाथ में गिर क। दबाता वह विचार सागर में गीत सगान सगा। वह

अतीत में खो गया ।

न जान किसने चौधरी के पुरखा से कर्जा लिया था । जो द्रौपदी के चीर की तरह बढ़ता ही गया, बढ़ता ही गया । उसके शराजी बाप ने उसमें बढोतरी ही की । मा तो पति के दुःख से दुःखी होकर पहले ही स्वर्ग सिंघार गई जब वह मात्र आठ बरस का था । वह चौथी क्लास से अधिक पढ नहीं पाया । एक दिन चौधरी ने उसके पिता को बुलाकर साफ-भाफ कहा—“चुनी लाल, तुम तो अब बूढ़े हो चले हो, क्या पता कब चल बसो ? तुम ऐसा करो कि अपनी जगह अब अपने बेटे को रख दो । कल से तुम्हारी जगह पर हरीराम मेरे यहाँ बंधक है ।”

मेरा पिता कुछ बोला नहीं उसने स्वीकृति में केवल सिर हिला दिया । दूसरे दिन से मैं पिता के स्थान पर चौधरी के घर काम जाने लगा । चौधरी का गांव में बड़ा दबदबा था । कहने को तो कहा जाता है कि अग्नेजा का राज गया, राजा-महाराजा समाप्त हो गए । रजवाड़े खत्म हो गये पर लोकतंत्र की आड़ में नया राजतंत्र आ गया । चौधरी गांव का सरपंच बना, सत्तारूढ़ दल का सक्रिय कार्यकर्ता । हर दुःगुण उसमें भोजूद था । भल घर की बटू बेटियां कभी उसके घर अकेले में जान का साहस नहीं करती । समय बीतता गया ।

मैं बालक से किशोर बना, किशोर से नौजवान । बिरादरी वालों की राय लेकर मेरे पिता न मेरी सगाई पास गांव के एक किसान की बेटे से कर दी । धूम-धाम से मेरा विवाह हो गया । पत्नी चम्पा वास्तव में चम्पा ही थी । खूबसूरत एक घर गृहस्थी के काम में पारंगत । मेरी पत्नी भी कभी-कभी चौधरी के घर किसी काम से चली जाती ।

चौधरी ने एक दिन मेरी पत्नी चम्पा को किसी काम के वहाने कमरे के अंदर बुलाया और उसके साथ छीना जपटी शुरू कर दी । उसके चिल्लाने पर जब उम छोड़ा था, तब वह हाफती हुई आकर मेरे ऊपर गिरकर रोने लगी थी । सारी बात सुनकर मेरा खून खौल उठा था । घर आकर मैंने चौधरी की हरकत का जब पिता से जिक्र किया और चौधरी को सबक सिखाना चाहा तो पिता ने मुझे रोक्त हुए कहा—“क्या करते हो ? जल में रहकर कहीं मगर से बरकिया जाता है ? उससे दुश्मनी मोल लेकर तुम कहा रहोगे ? यह कच्चा घर भी उसी का दिया है । चम्पा के साथ जो बात हुई वह नई नहीं है । ऐसा होता आया है । हम बंधक मजदूरा का अपना कुछ नहीं है । हम तो चौधरी की सम्पत्ति है । भला इसी में है कि जो कुछ ऊपर गुजरे, उस चुपचाप सह ल । शोर करने पर हमारी ही बिरादरी के लोग हम पर हसेंगे ।

पिता की बात सुनकर मुझे लगा कि मैं हरीराम नहीं बल्कि चौधरी के कुत्ते से भी नीचे दर्जे का प्राणी हूँ । स्वाभिमान का स्थान कायरता ने ले लिया । मेरी आत्म-सम्मान की भावना नष्ट हो गई । पिता की बात चम्पा भीतर बैठे सुन रही

थी। उसने धीरे से मुझे अन्दर बुलाया। मैं देखा, उसकी आँखों में अब आसू के स्थान पर अगारे निकल रहे थे। उसने—“अब मैं यहाँ नहीं रहूँगी।”

“तब कहा जाओगी?” मैंने पूछा।

वह बोली—‘यहाँ बेइज्जती से रहना अब ठीक नहीं है। मेरी माता तो गांव छोड़कर भाग चली।’

“कहा, मैंने फिर पूछा।

“इतनी बड़ी दुनिया में कहीं भी रह लेंगे। मेहनत मजदूरी कर पेट भर लेंगे। जा रोटी मिलेगी वह इज्जत की होगी, लज्जा के मूल्य की नहीं। मैं कुछ बोल न सका और सोचने लगा कि क्या करूँ। अगर इसके साथ भाग जाता हूँ, तो पिता जो कौन दवेगा? बड़े पिता का अक्ल छोड़ा पर विरादरी वाल भरे पर धूम करेगा। कहेंगे कि कसा वेटा है जो अपनी सुख-सुविधा के लिए बड़े बाप का निराश्रित छोड़ गया।

मैं इसी ऊहापोह में था कि चम्पा फिर बोली—“डर गये? हिम्मत नहीं पड़ रही है न? तुम आदमी कहाना के योग्य नहीं हो। पीढियाँ में तुमसे वही कायर छूँ है लेकिन मैं तुम्हारी जैसी नहीं और यहाँ अब मैं एक पल भी नहीं रहूँगी। इस तरह अज्जत गवा कर रहने से तो चुल्हू भर पानी में डूब मरना अच्छा। या तो तुम मुझे मेरे पिताजी के घर पहुँचा दो, या जाकर उन्हें बुला लाओ।”

मैं अपनी पराजय स्वीकार करते हुए बोला—“हा चम्पा तुम ठीक कहती हो। मचमुच हम लोग आदमी नहीं रह गये हैं। हमारी रणों में गुलामी का छूँ इस तरह घुल गया है कि अब हम आजादी का ह्याल ही नहीं कर पाते। लेकिन अपने जीने जो तुम्हारे साथ ऐसा नहीं होने दूँगा। जानता हूँ कि यह मेरी कायरता है, लेकिन इसके सिवा कोई दूसरा चारा भी तो नहीं है।

मैंने दूसरे दिन उसके पिता का बुलाकर सारी बात बता दी। वह अपनी बेटी को लिवा ल गया। जात समय चम्पा की जाँचा में आसू थे। मैं रुके बँठ कहा—“रो मत चम्पा।”

“मैं तुम्हारा रास्ता देखती रहूँगी। तुम जल्दी ही इस नरक में छुटकारा पाने की कोशिश करना। जात-जात वह वाली।

एक वर्ष पश्चात् मुझे पता चला कि चम्पा की सगाई किसी और के साथ कर दी गई। मैं दुःख का घूँट पीकर रह गया। भर पिता ने पचायत बिठाने का फँसला किया। पति के जीवित रहने औरत की दूसरी सगाई बँस सम्भव है? पर मैं उनसे साफ-साफ कह दिया—“मैं इस मामल में आपको कुछ भी सहयोग नहीं दूँगा। आप स्वयं ही विचार करें कि एक नपुंसक के साथ काद स्त्री कस रह सकती है?”

मेरी इन बात का पिताजी या पचो ने कोई जवाब नहीं दिया। कुछ दिनों में चम्पा का दूरा विवाह हो गया। वह अपने पति के साथ किसी नगर में चली गई। पिता भी चल बस। मरने समय उन्होंने कहा था—“बेटा, मुझे अपनी विरासत में जो चीज मिली थी वही मैं तुम्हें दे रहा हूँ—बन्धक मजदूरी। तभी से मैं धाणी के बल की तरह उसी चक्कर में घूम रहा हूँ।”

और तभी चौधरी की ककश आवाज ने उसका ध्यान भंग कर दिया—
 “देखते रहना हरिया, कोई क्यारी छूट न पावे।” □

अकाल के बाद

रामकुमार ओझा

वर्षों बाद अमावस्य मह बरसा। अलमायी धरती सरमाई। मेत बुलान लग। पर कृपक, हलवाहे सूखा मार से बैठ रह। किसी के पाम बीज नही, तो किसी का हल दीमक चाट चुकी बैल मर गया। धरती गिरवी म चली गयी। त्रिकाल बडा विकराल और भूखा था। तण-घाम चाट गया ढोर डगर डकार गया। पनघट सूखे। पनिहारिन कजला गयी। लाज बचान को तन पर काचली-झुगली तक न रह पायी।

मरा को फिर मारा। पहली पुरवा के साथ मेह आया। पर अगत दिन पिछवाई चली, ओले गिरे। अंबड के अंबड मर। भेड-बकरिया मिमिया भी न पायी कि पाव पाव भर ओला की मार से मर गयी।

हान मे आदमी को हजार मौतें आन लगी हैं। पहले प्रकृति ने मारा। मह के साथ नई आश बरसी तो माहूवार माग्न लगा। बडा हगामा हुआ। प्रचार की सुर-ताल गाव-डाणियो तक पहुंची। बैक लान देगी, राज तकावी बाटेगा।

गावा म अभी साहूकारा चलता है। साहूकारे का दस्तूर बडा सीधा है। कोरे कामज पर अगूठा लगाओ और रोकडी (नकद) गिनकर ले जाओ। हारे-भारे किसान साहूकारे के द्वारे इकट्ठा होने लगे। नरसा के गाव म भी एक साहूकार है, जसा कि हर गाव म होता है। वह साहूकार इसलिए है कि सत्तरह गाव सत्ताइस डाणियो म उसने साहूकारे की माख है। साख इसलिए है कि इलाके का नेता उसने साप है। गाव के तीन तिलग उसक तावेदार है।

साहूकार धरती पर धर्मावतार है। धर्मावतार इसलिए है कि उसन जयपुर के शिल्प बाजार से एक भोला-सा भगवान भगवाया है, उसकी खानिरदारी और रखवाती के लिए धर्मा पण्डित को तनान किया है। धर्मा भारती भगवान की उतारता है, गुणगान साहूकार का करना है। लोको की सुरता जगाता है। साहूकार की वही म गणेशजी का बासा, जो लिखा सरब साचा। उस पर जो शक कर

उसका लेखा जमराज भरे। जमराज बिन बिन पापी पिराणी (प्राणी) का लेखा भरे। पिराणी आपकी बरणी आप नरक म पडे।

पर साहूकार के लेखे सुरग की सब्ब साफ। वह मरी माटी को कफन दे। भगा-तारन को नकदी दे। प्राणी को लख चौरासी की भुगती से छुटकारा मिले उत्तराधिकारी की जात विरादरी मे नाब बनी रहे, इसलिए मौसर काज के लिए वर्जा दे। जब पिराणी मुक्ति पा जाये तो साहूकार अपना खाता खोले। जो भी वाली बारिश हो वह हाथ बाधे हुकार भरे, कज सिवारे और इस प्रकार मृतक की जोत साहूकारे की वास्त म चली जाये।

साहूकार धमदास है, वैसे बाप का दिया नाम धनदास है। बडा सरल स्वभाव है। हुक्का पीता है, ही-ही कर हसता है। तीन तिलगे उसके हाजरिये हैं। वैद्यजी को उसकी सहत की चिन्ता है। दुकाल-त्रिकाल मे चर्बी कुछ ज्यादा ही बढती है। जब आदमी भूखा मरने लगत हैं तो साहूकार के घर मे चूहा की ज्योनार चलती है। पटवारी नौकर राज का है। पर वफादार साहूकार का है। किस किसान के नाम कितनी जोत बच रही है, इसका तखमीना साहूकार के लिए करता है। गिरवी और सूद का लेखा साहू आप याद रखता है। खाता तो उसका नहीं, गनेश जी का है।

धर्मा पण्डित काटे पर बीज तोल-तोलकर दिये जा रहा है। वह जितना खुद एचाताना है, तराजू मे उतनी ही कान है। पसेरी पीछे एक सेर मंदिर का लागा है। आधा किलो यगूय (यज्ञ) भगवान के लिए दान है।

मह कोई यू ही सेंट मत म नही बरसा। धर्मा ने यज्ञ किया। धनदास ने आहुति दी तो इन्द्र भगवान को पसेव छूटा, टपटपकर मह बरसा। तब गाव वालो के पास क्या था? और अब भी तो कुछ नहीं। धरती आज गीली है। दस दिन न बरसे तो पपडी पपडी सूख जाये, कोख म पडा बीज खाकर मुह बाध ले। साहूकार को तो जूरे का नशा है सो खेल रहा है। भाग भरोसे खेती है। दो खेप बादल बिन बरसे उड जाये तो दुष्काल पड जाय।

पर अभी तो आकाश तीतर-पखी बादलियो से भरा है। लोग अगूठा लगा रहे हैं। बीज उठा रहे हैं। नकदी पा रह है। नरसा की बारी आयी तो हुक्के की निगाली बडी देर तक न बोली। नरसा साहूकार की नजर मे हरामी है। उसका बाप जिदगी मे केवल एक ही बार मरा और उसन भी अपनी पैदाइश ने वाद बस एक ही बार कज लिया, वह भी विरादरी के दबाव पर मरे बाप का किरिया-करम करने के लिए और कुपूत ने पहली फमल पर ही सूद समेत कज चुका दिया। विवाह भी अपनी धरती के बलबूते पर ही कर लिया।

उसकी जोत मंदिर के पास है। भगवान की ध्वजा की छाव उसके खेत पर पडती है तो धरती सोना उगलती है। पर वह है कि मंदिर की परित्रमा टेडी

रहने दी, पर अपनी धरती का दस गज टुकड़ा न दिया। उसने आगन में शाय पात भरा जवान तीम छटा लहरा है और भगवान का मिहामन बनाने के लिए एक डाल तक न दी। एक न पाप न सत्तर कासी धरती पर जनाल पड गया।

आज द्वार पर आया है तो सुरता जागेगी या भोगगा। मूढघोर हस्तनर हलान करता है। साहू भी ही-ही कर हसा। निगाली ने अतिरिक्त सम्मान दर्शाते पूछा— 'कहो भाई नरसारांम, तुम कैसे आय। शायद किसी गरीब गुरव की सिफारिश करती है? बोली किसी जमानत देना चाहत हो?'

उमकी अपनी धरती परती पडी थी, वैंत मर चुका था। पर जानता नहीं था कि कज खने आया आदमी कैसे बाने, क्या कहे? अत हाथ मूछा पर ही अटके रहे। बाप मरा तब उसन एक बार मूछ मुडवायो थी, पर फिर से इतनी गहरा गयी कि हर समय ताव पते रहने पर ही ताबे रहती है। पर साहूवार की मुछक (मुस्वान) में ऐसी खारिश भरी थी कि हाथ लटक गय और मूछे ढरक गयीं।

रेशमा ने समझाकर भेजा था गज का मारा किसी के दरवाजे पर जाये ता मछे नीची करक जाना चाहिये, धरवाली की सीध एन वक्त पर साप दे गयी। हक्लात हक्लात जरूरत आप अपने मुह बोल पडी। साहू ने सुना तो तन गया।

"ना भई ना। राम दुहाई। नगे को दिया कज नहीं डूवता पर दबग आदमा को तो देकर भूल जाना पडता है।

सच्चा हुआ रिया वह जो वक्त पर बात सम्माल, बचजी न गेंद हवा में मूष ली— 'नहां नरसारांम ऐसा आदमी नहीं, मूछवाला है, आज धर्मावनार के द्वार आया है तो घम भी जागा होगा।'

बचजी धरम तो राम आसरे। मन्दर टडा रह गया ठाकुरजी पर चढाने के लिए पत्र पुष्प भी नहीं मिलते, धरती हाता बागीची बने। ठाकुरजी पथर की पाटी पर सन करत है सतवती नार व हाथा सिचाई खाय नीम का काठ मिले तो ठाकुरजी थोडे। 'ए लो इत्ती-सी बात हमारी रशमो बहू से सतवती और कौन? इस तरह गाँव की मत्तादस ढाणिया उमक सत की साव भरे। आप बल खरीदी के कागज तयार कीजिय।' बचजी जैसे जमानतदारी का जिम्मा लत बोल। नरसा को बोलने का मौका ही न मिला। बात तय हो गयी। मिडिल स्कूल का मास्टर बाला।

"नरसा अपनी जीत का एक टुकड़ा हरी-अपणा करेगा। धरमादे खात से कीमत ले या न न। पर ठाकुरजी की सेवकाइ का मोल ले नरसा ऐना आदमा नहीं, नीम बटगा, ठाकुरजी का सिहामन बनगा। साप भरी गमी। कागज पत्र तयार हुए। पटवारी न कागज पर पैमाइश की, नकशा बनाया। फन्द तयार की और ठाकुरजी के हिस्से का टुकड़ा काट दिया। नरसा काठ मारा-ना टुकुर-टुकुर देखता रहा तिलगो ने सत्तर कर दिया। कल भोर होत तब नीम बट जाय और

नरमा रक्म ल जाये।

घर लौट आन तक रात हा गयी। सौदे की शत सुनी तो रशमो अहिल्या के ममान प्यरा गयी। उस रात घर म चूल्हा न जला। नीम तले भाची डाल पडा नरसा नम तवे पर भुनता रहा। रेशमो की छाती जलती रही। नीम उसका देवर और नरसा वा भाइ था। नरसा के बाप न अपनी जिदगी म दो पुरपाय के काम किय थे। एक नरसा को पैदा कर और दूसरा उसकी पैदाइश के बाद सुरन्त नीम का बिरवा रापकर। इस प्रकार सत्तान पैदाकर और हरा बक्ष लगाकर उसने अपनी समझ स इहलोक और परलाक दोनो बना लिए थे।

नीम और नरसा साथ साथ बढे। तरुण हुए। दोना पर जवानी चडी। नरसा ने कभी दतोन के लिए भी नीम की डाली न तोडी, घाव धोने के लिए पत्ती न मोची। नीम पर हाथ डालत उसके अपने वदन म पीर होने लगती। उसी नीम भाई पर भोर होन स पहले बुरहाडे चलेंगे, जिसके सरक्षण मे रेशमा को छोडकर वह अकाल के समय पनियल प्रदेश मे दिहाडी करने गया था और लौट आने पर रेशमो को उसी की छाव तने चँठे पाया था।

चौदस की चादनी रात। बडे वेग से पछवाही चल रही थी। नीम को जैसे आगत का आभास मिल चुका है, वह स्वरभा म सन्नद्ध होकर सनसना रहा था। उसकी हर शाख, हर पत्ती फुटकार रही थी। उस पर रैन-बसेरा करते पाखी असमजस मे रे, दूसरा बसरा तलाश करें कि बही बने रह। नरसा उस रिसाये नीम भाई के तेवर देख रहा था, पर उसे काय न आ रहा था। सनसनाते नीम के आवेग भरे स्वर ने उसे उठ बैठने पर मजबूर कर दिया। रशमो तो ओंधी भी न हो पायी थी। दानो न तीन पहर आघ म ह्री कय थे।

रात के चौथे पहर कुत्ते भौकने लग। कुत्ते छोटे आदमियो पर भौकत हैं। जरूर ब आ रहे हैं। साकल स चरें मोती के बान सीधे छडे थे, वह जबडा म ही गुर्ग रहा था। जजोर तुडाने को उतावला हो रहा था।

नरसा नीम की परिक्मा देने लगा। जैसे कोई अपन मृतबधु के गिद देता है। रेशमो ने बीच मे रोका, पूछा—

‘क्या तुम्हारे हृये म हूक नहीं उठ रही? भाई हलाक हान जा रहा है।’

‘हीया तो आदमी का होना है। बार-बार के अकाल न हमे तो जानवर बना दिया है।’

‘तो जानवर खरीदने के लिए बज लेन की क्या जरूरत?’ रशमो न पलट कर पूछा।

‘पर और उपाय भी तो नहीं।’

‘है, जब हम जानवर बन ही चुके तो जानवर के समान जीना सीखें या फिर एक साल जानवर के अंदाज म काम कर नये सिरे से आदमी बनकर जीने का

आयोजन करें।'

नरसा कुछ न समझा। पर रशमो उसकी पुनर्लिया म तैरत प्रश्न का बप समझकर फिर बोली—'हम बारी-बारी स हल खीचत, बीज टानत सत का जुतार्द कर ता अगल साल फिर आदमी बन जायेंग।'

नरसा न रशमो को भर नजर धूरा। औरत को लगदाद है। सुख म भामिनी बनकर और दु ख मे सहयागिनी बनकर साथ दनी है।

कुछ लागा व परा की धमक माफ मुनाइ दन लगी थी। आठुतिया स्पष्ट हाने लगी थी। उनके सान चढे कुल्हाडा व फाल क घो पर झूल रहे थ। चान्नी म चमक रह थे।

रेशमो मुलकी। उसन लपक कर मोती की जजाग खोल दी। सावन छुली ता जानवर जन्लादो पर भा भों कर झपटा। उनक कुल्हाडे सघान पर रशमो की ललवार पर उनके फाल झुक गये। इधर स माती न छदेडा, उधर से गली भर व कुन गाल बाधकर भीकत, झपटत आ पहुँचे। पेड-नगारे बीच म फमकर रह गये। □

नयी सुबह

कमर मेवाडी

रात के नौ बजे हैं। अधेरा कितना गहरा गया है। ऐसा लगता है जस बहुत रात हा गई। दरअसल सर्दी की रातें होती ही एसी हैं। सूर्यास्त हुआ नहीं कि अंधेरा अपनी चादर फैलाने लगता है।

और इस कस्बे का तो यह हाल है कि आठ बजते-बजते बाजार बंद। व्यावसायिक कस्बे की यही तो समस्या है। यार दोस्त भी जल्दी-से जल्दी घर पहुंच कर अपने अपने गम बिस्तरो में डुबक जाना चाहते हैं। अब मेरे जैसे अकेले और बाहरी लोग जाये-तो-जायें कहा।

वैसे मैं अपने घर की ओर रवाना हो गया हू। पर सोचता हू इतना जल्द घर पहुंचकर भी क्या ? आज सर्दी बहुत तेज है। लगता है मौसम की सबसे तेज सर्दी आज ही पडने वाली है। सभव है बर्फ भी गिरे। पुराने लाग अक्सर चर्चा करत है। एक बार इतनी भयकर बर्फ गिरी कि पूर कस्बे में बर्फ-ही-बर्फ हो गई। लोग मकानों में कैद होकर रह गये। तीन दिन बाद रास्तों से बर्फ हटाई गई। तब जाकर वही आवागमन शुरू हुआ।

सर्दी से बचन के लिए मैंने मफलर को गले और सिर से बंधकर बाघ लिया है और हाथों को कोट की दोनों जेबों में डाल दिया है। देखता हू अब सर्दी मुझ तक किस रास्ते से पहुंचती है।

धीरे धीरे टहलता मैं गोल मार्केट तक आ पहुंचा हू। पूरे मार्केट में सन्नाटा पसरा पडा है। कहीं कोई हलचल नहीं। आज बुत्ते भी गायब है। बर्ना इतनी रात गये बुत्ते को सलामी दिय बिना मार्केट से गुजरना कोई आसान काम नहीं।

यहां से मेरा घर एक फ्लांग दूर है।

गोल मार्केट पहुंचने पर लगता है जैसे घर पहुंच गये। उसी तरह जिस तरह दिल्ली या जयपुर से लौटते हुए बस जैसे ही गोमती चौराहे पर पहुंचती है तो लगता है—घर आ गये।

गोल मार्केट इस कस्बे की शान है। बहुत हैं जिसने इस गोल मार्केट का निर्माण कराया उमने दशक एक प्रसिद्ध डिजाइनर से इसका नक्शा बनवाया था।

जैसे ही मैं गोल मार्केट को पार कर अपने घर जाने वाली सड़क पर पहुंचा कि पीछे से एक आवाज आई—'मुनिय साहब। मैं आवाज को अनसुना कर अपनी मस्ती में चलता रहा कि इस वकत मुझे पुकारने वाला यहाँ कौन हो सकता है लेकिन वही आवाज मुझे काफी निकट से फिर सुनाई दी।

मैंने मुड़कर देखा तो सामने एक अपरिचित-मा जादमी नमस्त की मुद्रा में खड़ा था। मैं उस ऊपर से नीचे तक देखा। कपड़ा से लगा शायद कोई ड्राइवर है। मैं उससे कहा—'कहिय पहचाना नहीं आपको।'

उसने एक जोरदार कहकहा लगाया फिर बोला।

“आप कस पहचानग साहब। यह साला वकत ही मारू है। कोई किसी को नहीं पहचानता। हर एक को अपनी पहचान बनानी पड़ती है। लगता है आप यहाँ नये हैं? बानी नाला पीटर को इधर कौन नहीं जानता?

तुमने ठीक कहा पीटर। वाकई मैं यहाँ नया हूँ मैंने कहा तब तो मजा आ गया साहब, खूब जमगी जब मिल बैठग दीवाने दो। चलिय, चलिये माहय हाटल में चलकर बैठत है उसा बड़े उत्साह से कटा।

पीटर पहले मुझे बावला या दीवाना लगा था। पर उसकी बेलौस बात ने मुझे खरीद लिया। मुझे घर पहुंचने की जल्दी नहीं थी। फिर पीटर के ब्यक्तित्व ने मुझे काफी प्रभावित किया था। इसलिए मैं उसके साथ चल दिया। मैं सोचा जाड़े की यह दात किटकिटा दन वाली रात शायद पीटर के साथ गप शप में बीत जाये।

होटल के नाम पर पीटर मुझे जहाँ लेकर गया वह एक ढाबा था, जो कस्बे से कुछ दूरी पर बना था। ढाबे के बाहर कई खाट पड़ी थी। और उन खाटों पर टुकड़े ड्राइवर और खलासी बठ खाना खा रहे थे या फिर गपवाजी कर रहे थे।

एक खाली खाट देखकर हम उस पर बठ गये। यह खाट भट्टी के नजदीक थी इसलिए शरीर का एक हल तक सर्नी से निजात मिल गयी थी।

मैं मन-ही मन पीटर को धयवाद दे रहा था।

पीटर मेरे काफी मना करने के बादजुद भी नहीं माना और उसने मेरे लिए भी खाना भगवा लिया।

खाना खा चुकने के बाद पीटर ने मेरी ओर देखा और हसा।

उसके दात सफेद मातिया की मानिंद झमक रहे थे और उसकी आंखों में एक विशेष प्रकार की चमक थी।

एसी चमक मैंने किसी की जाखा में बरसा बाद देखी थी।

अब पीटर काफी खुश दिख रहा था। और मुझे ~~बहुत~~ ~~खुश~~ ~~कर~~ ~~दिया~~ ~~था~~ ~~।~~ और मुझे ~~बहुत~~ ~~खुश~~ ~~कर~~ ~~दिया~~ ~~था~~ ~~।~~ उसने जेब से एक सिगरेट निकाली और उम्रे जलाने के लिए ~~कहा~~ ~~था~~ ~~।~~ मैंने कहा—“पीटर, आज सर्दी बहुत तेज है। ~~क्या~~ ~~तुम्हें~~ ~~क्या~~ ~~करना~~ ~~है~~ ~~।~~ इरादा नहीं ?”

वह बोला—“साहब आज नींद नहीं आयेगी। जाज मैं बहुत खुश हू। मेरी खुशी मे आपने साथ दिया, आपका बहुत-बहुत शुक्रिया। आज तो मेरे लिए जश्न की रात है।”

“जश्न की रात ! वह कैसे ?” मैंने जानना चाहा।

उसने मेरी आंखों में झाना। जैसे कुछ पढ रहा हो। वह मुस्कराया और कहने लगा।

“मैं धीगडा साहब के यहा ड्राइवर था। सप्ताह भर पहले वहा से मुझे नीकरी से निकाल दिया। धीगडा साहब बड़े अच्छे आदमी थे। उन्होंने मुझे कभी जलफ से वे नहीं कहा। पर उनकी औलाद साली बड़ी फटीचर निकली साहब ! अच्छा हुआ ममय रहते बेचारे चले गये वरना ये उनके मुह पर किसी दिन जरूर झाडू मार दत !”

“लेकिन पीटर तुम्हें निकाला क्यों ?” मैं पूछा।

“क्या बताऊ साहब, बहुत गडबड झाला करते थे उनक लडके। शराब, गाजा, चरस जोर न जान क्या क्या। मैंने उन्हें समझान की कोशिश की ता उन्होंने मुझे निकाल बाहर किया। मैं दम साल से उनकी गाडी चला रहा हू और एन भी छोटे में छाटा एकसीडेंट नहीं किया। लेकिन अब मैं चाहता हू, रक्षर करे उनकी गाडी का एकसीडेंट हा जाय और सब मर जाये। कम से कम धीगडा साहब की आत्मा को तो शांति मिलेगी। उनक नाम पर कलक नहीं लगगा और लोगो का भी नशे से मुक्ति मिलगी।” उसने कहा और एक गहरी निरवास छोटी।

“धीगडा साहब अच्छा रखते थे तुम्हें पीटर ?” मैंने उमस पूछा।

“अच्छा ही नहीं, बहुत अच्छा रखत थे धीगडा साहब मुझे। कहत थे—जरे पीटर, तर आन में अपना विजनस जन्म गया। बहुत खुश रहत थे मुझसे। शादी त्योहार पर इनाम इकराम भी देत थे। उन्होंने खुश होकर मेरी पगार तीन सौ रुपये बर दी थी। दया सस्ता जमाना था साहब। खूब मस्ती से रहता था। लेकिन अब दम रुपये रोज में गुजारा नहीं होता। आप ता जानत ही हैं मस्टररोल काम करन वाले मजदूर को भी सरकार चौदह रुपये रोज देती है। अच्छा हुआ उन नालायको न मुझे निकाल दिया वरना मैं खुद छोड दता एक दिन।”

पता ही नहीं चला पीटर की गपशप में और काफी रात गुजर गयी। सर्दी ता हो गयी। घाटें खाली हो गयी। बड़ द्रक खाना हो चुके थे और कुछ खाना हान की तैयारी में थे। हम घाट से उतरकर भट्टी के पास आकर बठ गये और

शरीर सक्न लय ।

कुछ दर माहौल म चुप्पी छाई रही । फिर मैंने जिज्ञासा व्यक्त की—“तबिन पीटर, अब क्या करोग तुम ?”

“ड्राइवरी करूंगा साहब, ड्राइवरी । आपको यह सुनकर खुशी होगी कि मुझ आज ही अडूकया साहब न अपनी नई गाड़ी पर ड्राइवर रख लिया है । पगार भी पूरे पांच सौ रुपय महीना । एडवांस भी दिया दा भी रुपया । माथ ही बहा, पाटर खुश हो ना । अगर कम हो तो मुझे बोल देना । राजा आदमी है अडूकया साहब, दशवर्ग उनका भला करे ।”

पीटर की बात सुनकर मुझे बहद खुशी हुई और सुकन मिला कि वह बेकार नहीं है जसा कि मैं कुछ दर पहले जसक बार म साच रहा था ।

पीटर जसे नेक इन्सान क लिए मरे अंदर एक विशेष आत्मीयता पैदा हुई । मैंने मन ही मन इश्वर से प्रार्थना की कि पीटर हमेशा खुश रह । मैंन पीटर को ओर देखा तथा मुस्कराया ।

पीटर के चेहरे पर एक लम्बी मुस्कान थी । उसकी आग्रा म खुशी क आसु डबडबा रहे थ । दूर पूरब दिशा म आकाश लाल हो गया था । एक खूबसूरत नयी सुबह धरती पर उतरने की तयारी कर रही थी । □

जिम्मेदारी का बोध

श्यामसुन्दर तिवाडी

रोहित सुबह-सुबह ही जेब में कचे लेकर खेलने निकल गया। मनीष, मनोज, पंकज और अरुण सभी उसकी प्रतीक्षा में खड़े थे। खेल जमा तो ऐसा जमा कि वह सभी उसी में खो गये। स्कूल जाने का समय भी होने को आया पर किसी को कोई चिन्ता ही नहीं।

“बेटा रोहित, क्या खेलत ही रहागे। चलो स्कूल का समय हो गया”, मा की झुझल भरी आवाज आई।

रोहित ने वहीं से उत्तर दिया—“आया मा’, कहकर कचे ममेटने लगा।

तभी ज्ञानू ने उसका हाथ पकड़ लिया, “जाता कहा है? यूँ जीतकर थोड़े ही जाने दूँगा, यह बाजी तो पूरी करनी पड़ेगी, हा।”

रोहित ने हाथ झटकर कहा, “जा-जा तर जैसे बहुत देख है। देखता हूँ कौन रोकने वाला है मुझे?” और रोहित तो यह जा, वह जा।

कचो से पट भर गया लाट साहब का। घड़ी देख साढ़े नौ बजे हैं। जल्दी से हाथ मुह धो ले, खाना तयार है।

घड़ी देखत ही उसकी भूख ही गायब हो गई। नहीं मा, मैं खाना नहीं खाऊँगा, आज बहुत देर हो गई है। दा चार किनाबे ली हाथ में, और वह तो स्कूल की आर भागा।

रोहित के पापा बाजार से मञ्जी लेकर घर में घुसे तो रोहित की मा को उदास देखा। पूछा—आज उदाम क्या हो?

रुआस स्वर में ही वह बोली—“आज आपका लाडला खाना खाय बिना ही स्कूल चला गया।”

“अरे तो इसमें चिन्ता करने की क्या बात है? शाम को आकर खा लेगा। दिन भर तो कुछ-कुछ खाता ही रहता है।”

“हा-हा, आपके तो कुछ भी फक नहीं पड़ता। परन्तु मरे से तो नहीं रहा

जाता कहती रहती ही गुदर पड़ी ।

“अब घाना तो लगाओ । दफतर का समय हा गया है । घाना खाकर वे भा दफतर पा चने गय ।

मा १ भी दिन भर का घाना घाम रो रोहित १ साथ ही घाया । मा और बेट म आए दिन १११ बार, लडाईं यगडा चन्ता ही रहता । कभी कहता— आज मेरा पन घा गया, पैसे दा । कभी ज्योमेट्री बाक्स, तो कभी ड्राइंग काफी की जरूरत जा पडती ।

ऐसी बाता पर पिताजी ध्यान नही देते । एक दिन रोहित की ना ने ही उसने पापा का कहा—“तनछवाह पर दम-बीम रुपये मुझे भी दे दिया करो, ताकि रोहित की मायें पूरी कर सकू ।”

इस पर पिताजी को गुस्सा जा गया—“तुमने ही इमको मिर पर बिठा रखा है । इकलौता पुत्र होने का मतलब यह तो नही कि तुम हर समय उसकी ढाल बनो ।

तुमने कभी उसकी पडाईं के बारे मे भी पूछा । बस तुम्ह तो हर समय उसकी इच्छाए पूरी करन की पडी रहती है ।

कभी इस बान का भी पता लगाया है कि वास्तव म उमका सामान घाया है या पैसे नेने के बहाने ही बनाता है । शायद इनका जवाब तरं पाम नही है क्यों ?”

“हा हा, मैं ही बुरी हू । सारा बुरा भला आप मुझे ही कह जा रह हो । आपका भी ता फज कुछ बनता हागा बेटे के प्रति । कभी स्कूल म जाकर भी सम्भाला है, आपने ।

जवाब मुनरर पिताजी की भी मिट्टी पिट्टी गुम हो गई । सोचा इस तरह जिम्मेदारी एक दूजे के सिर धोपने से तो राहित की आदत सुधरन वाली नही है । कुछ जोर उपाय सोचना पड़ेगा ।

एक दिन पिताजी रोहित को साथ लेकर घूमन फि । पक म बँठकर उसको बडे ही प्रेम से समझाया—बटा मैं मानता हूँ फि उम्र अभी खेदने कूदने की है । इस मुनहरे समय खाँ फि लना जीवन मे निराशा के अलावा कुछ नही म्फि । मैं को समझता हूँ । प्रतिमाह तुम्हारे लिए रुपये भी बचाना हूँ । मुझे मालूम है ए या, पिताजी को कहकर मेरे लिए ए बातो ही बातो म रात्रि के आठ किया ।

एक दिन की बान । रोहित अपने का शुक्लाजी अदर है ? रोहित बाहर आया

गये हैं।

“जा जाय ता बोल देना कि चार-पाच महीनो स मजान का किराया नही पहुच रहा है। यदि इस तनखाह पर हिसाब चुकता नही किया तो कोई दूसरा मकान तनाश लें”, कहता हुआ मकान मालिक पग पटकता हुआ चला गया।

उसके जाते ही रोहित के मन में विचारों की बाढ़ जान लगी। उसके दिमाग में बार बार वही विचार जान लगे कि पिताजी न उस दिन केवन मुझे ही खुश करन के लिए झूठ क्यो बोला—इसका मतलब के मुझे घरेलू परिस्थिति से दूर रखना चाहते थे।

शाम को जब रोहित विद्यालय में घर आ रहा था तभी एक दुकानदार ने उसको पुकारा—‘रोहित बेटे, आजकल तरे पापा यहा नही है क्या? उनका स्वास्थ्य तो ठीक है न। दस पाद्रह दिन में नजर नही आये, वैसे दफतर जात समय हमेशा इधर से ही निकला करते थे।’

क्यो क्या बात है? रोहित ने पूछा।

कुछ नही बेटा—“घर जाकर उनको कहना कि किराने वाले मेहताजी ने याद किया है। कल दफतर जात समय मिलत हुए जाए।”

‘सेठजी की बात को रोहित मन-ही मन समझ गया। आज उसे मालूम पडा कि उसके कंधे पर भी जिम्मेदारी का बोझ जाने वाला है। पापा न जान कसे हमारा पालन-पोषण कर रहे है। आज दिन तक उन्होंने कभी कोई कमी महसूस नही होने दी। बल्कि हर परिस्थितियों में हम खुश ही रखा। एक मैं हू जिसने हर समय पापा व मम्मी का राहत के बजाय कष्ट ही दिया।

शाम को खाना खाने के बाद रोहित के पापा आराम कर रहे थे। रोहित कमरे में आया और उनके पास बैठ गया।

पिताजी ने अखबार से नजर हटाते हुए कहा—“रोहित बेटे, आज किस चीज की जरूरत है।’ अपनी मा से ही कह देत।

“नही पापा—आज मुझे कुछ नही चाहिए। बल्कि मैं तो आपके यह कहने आया कि इस तनखाह पर सबसे पहले मकान मालिक का हिसाब चुकता कर दो, बाद में उस बनिये का भी।”

पिताजी को यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि रोहित आज क्या कह रहा है।

“मुझ माफ कर दो पापा—अब मैं कभी आपके व्यथ में परेशान नही करूंगा, बल्कि आपके काम में हाथ बटाऊंगा।”

छाट मुह से बड़ी बात सुनकर पिता की आंखों में भी आसू छलक पड़े और उन्होंने रोहित को सीने से लगा लिया। □

अन्तर्दहन

जगदीश प्रसाद संनो

खा पीकर सो जाता हू। मोना क्या है यो ही विस्तर पर पडा करवटें बदलता हुआ बीड़ी फूँक जा रहा हू। पत्नी पहने से ही सोई हुई है। नींद शायद उसे भी नहीं आई है। या ही पडी है। हा, बच्चे जरूर सा गये हैं। सोए हुए कम निरीह लग रहे है। आज सहमे-सहम स थे। बिना कोई हा-हल्ला किए, बिना किसी जिद्द के जैसा भी मिला खा लिया था और चुपचाप चारपाई पर जा लेते थे। जरूर आज इहे पीटा गया है। सारा गुस्सा इन्ही पर उतरता है। जान क्या हो जाता है इसे। जब मर्जी होती है मुह फुला कर पड रहती है। लाख पूछो, बोलेंगी नहीं। जब बोलेंगी तो उल्टी-सीधी पहेलिया बुझाएंगी। शरीर सूख कर काटा होता जा रहा है। मुह निकल आया है। जान कौन-सी आग में फुकी जा रही है।

हर तरह का इलाज करा लिया मगर इसकी सेहत में कोई फक नहीं आया। उस रोज खाना खाने बैठा तो कहन लगी—“आज बच ही गयी, नहीं तो खाना कोई और ही खिलाती। दोपहर में बाल्टी माजकर खडी हुई थी कि ऐसा चक्कर आया कि धडाम से गिर पडी। थोड़ी-सी ही बच गयी नहीं तो आज कुए में घमका लग जाता।”

‘कुए में डूबन जित्ता पानी थोडे ही है। मैं विनोद में कह गया। वह बिफर उठी, “हा-हा, डूबने जित्ता नहीं है तो किसी डूबने वाले में पटक आओ सो पाप कटे। खुद ही चाहत हो कि मर जाऊ तो पीछा छूटे। तुम्ह जहर लगती हू तो मर जाऊगी फिर घी के जो लेना ’ उस समय कितनी मुश्किल से पीछा छुड़ाया था, मैं ही जानता हू।

एक रात बोली— एजी, घानी माजी कहती हैं कि तेरे पेट की गरमी गस बनकर मांने में चढ गयी है सो बादाम मिथी पीस कर गाय के कच्चे दूध में सुबह सुबह पीजो।

वह इतनाम भी हुआ पर नतीजा वही ढाक के तीन पात। फिर एक दिन

कहने लगी— 'सुनो जी, तुम मेरा 'अक्मरा' क्यों नहीं करा देते ? घापा मौसीजी कहती है 'अक्सरा' करा लन से तुरत फायदा आता है । उनकी चन्ना को भी ऐसी ही बीमारी थी । 'अक्सरा' कराया तो ठीक हो गयी ।'

मैंने उसे समझान की कोशिश की— 'देखो एक्सरे से बीमारी दूर नहीं होती, उससे तो बीमारी का पता चलता है । हड्डी बगैरह टूट-टाट जाये तो पता चल जाता है ।'

'हा-हा, तुमको मालूम है । वो घापा मौसीजी जो कहती हैं गलत कहती हैं ? 'अक्मरा' के साथ मारी बीमारी बाहर जा जाती है । जादमी भला चगा हो जाता है । चदा जो हो गयी । पिछली बार आई थी तो मेर मे भी बुरी थी । अब मोटी घोटी हो रही है । कल मैंन अपनी आखो से देखा है ।'

'मगर डाक्टर कहता है एक्सरे की जरूरत नहीं है ।'

'डॉक्टर की मा राण्ड का सिग ! उस क्यों जरूरत होन लगी । कौन-सी उसकी राण्ड मर रही है ? जिसकी मर रही है उसी को परवा नहीं है तो उसे क्यों होने लगी ? पसा जो खच होता है । मेरी खातिर कौन पैसा खच करे ? कौन होती हू मैं ? मर ही ता जाऊगी । मारना ता चाहत ही हो ना तुम । फिर जो लेना धो वे ।'

फिर दो दिन तक मुह फूला रहा तो हार कर एक्सरे कराना पडा । मगर उसस क्या हाना जाना था ? डाक्टर ने टैस्ट करके बता दिया कि एक्सरे मे कोई गडबडी नहीं है ।

साझे परिवार म रहा तब तक न कभी ठण्डा पानी पिया न पीने दिया । रात-दिन कमल की बहू को लेकर झीकती रहती । कमल की शादी नहीं हुई थी तब मुख्य निशाना कमल रहता । 'अब और कब तक पढता रहेगा यह 'साडा', कोई काम घधा नहीं करेगा क्या ? पर वह क्यों करने लगा ? तुम हो ना, कान पकडी छोली ! कमा-कमा कर इसकी छाती म देते रहो । यह गुलछरें उडाता रहेगा । ठेका ल लिया है जिन्दगी भर का ।'

मैं समझाने की कोशिश करता, "भई, बी० एस-सी० से पहले पढाई छुडाने से फायदा क्या होगा ? दो साल का करा घरा "

'भाड मे गयी तुम्हारी बस्ती । तुमको तो नहीं कराया मा-बाप न 'बेस्पी' । उसकी ही पीड ज्यादा चली थी क्या ? मा-बाप दोनो छतरी हो रहे हैं उमी पर । इसका कही 'भुलसडा' कर करा देते तो पिण्ड छूटता मेरा तो । बाज आयी इनमे ।'

'पर कमल कहता है, वह अभी शादी नहीं करेगा ।'

'हा-हा, क्यों करेगा वा शादी ? मैं हू ना उसके बाप-दादा की बादी-मोली । करती रदूगी चाकरी । जाने कित्ते काले तिल चावे हैं इनके । नासपिटो का 'घोरसेडा' करत-करत गोडे टूट गये मेरे तो । सास राड छाने-पीन की चीजों पर

साप ही रही है। कभी दूध घी की बूद नहीं दिखाती। दिखाये कहा स, 'बने' का चरा रही है। पढ लिखकर 'कलट्टर बनगा तो बरेगा शादी। 'सुरग की परी लायेगा कोई चीलगाड़ी म बठा कर।'

कमल की शादी हुई। सोचा था कुछ दिन राहत मिलेगी मगर सब बेकार। पहले दिन ही मुह पूल गया। रात वो बड़ी मुश्किल स बोली तो पट्टेनिया बुझाने लगी—

'देखो जी, पाचो उगली बराबर तो नहीं होती।'

"नहीं होती।"

पर काटने पर दद तो बराबर होता है।'

'जरूर होता है।'

"कहा होता है? तुम्हारी मा को तो होता नहीं। देखा नहीं बहू को मुह दिखाई म एक सौ एक दिये है। मैं भी तो बेटे की बहू ही थी। कोई 'उदल कर' थोड़े ही आयी थी। सूखे पाके पाच रुपय दिखाये थे। पर वह मालदार की बेटा है।' घणा सारा माल लायी है। मैं ठहरी कगल फनीर की जाई। मो कौन ज्ञान-गणित करता? कीड़े पड़ेगे राड के कीड़े। दुभात करती है। ऊपर चढा भगवान देखता है। हा।'

और या शिकवे शिकायता का एक नया सिलसिला चल पडा—“क्या जी, ऐसी 'बरी मरे लिए तो नहीं लाये थे। जाने कहा से कफन के टूक सिला ले गये थे। एक बार घोते ही साप की काचली बन गये। और गहना देखा? सारा का सारा नयी 'डिजान' का है। मैं ही कौन काजर सासी के घर ज'म लिया था सो डाल दी परो म बेडिया। वो सठानी की बच्ची पाजेव पहनने वाली? मैं नहीं पहन सकती पाजेव? है?’

देखो भई जेवर तोल मे बराबर है। तीन ठाव उसके बाप न दिय हैं जिनमे पाजेव भी है।

'देखो जी, मरे बाप को अढाया तो ठीक बात नहीं रहेगी। उसके बाप ने तो जुग लुटा दिया और मेरा बाप ल के खा गया। वो हस का बण्ड-बाजा बजाया था, वो भी उसके बाप न ही किया होगा। महारानी जी जिस कार म बठ कर आयी थी सो भी उनके बाप ने ही भेजी होगी। व्याह बाद म किया पहल साहब लोगो की खातिर पोन्ने के लिए ऊपर हवादार चौबारा बना, वो भी उसका बाप ही बना गया होगा। मैं भी सात फेरे खाकर ही आयी थी। कोई 'नाता करके थोड़े ही लाये थे जो मूयाण जाने वाला की तरह चुपचाप चले गय—न घोड़ी, न बाजा, न नाच-गाण। उस टूटे स 'टेक्टर म डालकर ल आये और इस घुडसाल म पटक दिया। दुख तो घणा ही उठता है। कुत्ते बिल्ली की गत हो ता इम घर मे मेरी गत हो। तुम तो चमगूग हो रहे हो। बोलत ही नहीं। मुझ राड की कौन

मुन ?”

म उसे व स समझाता कि हमारी शादी हुए पन्द्रह साल हो गये और इन पन्द्रह साला म दुनिया कहा स कहा पहुच गयी। नय-नय रीति रिवाज चल पडे ह। फिर यदि उस वह सब कुछ द भी टिया जाये जो कमल की बहू व पास ह तो भी जिदगी के के पन्द्रह साल कहा म लायगी जो वह खो चुकी ह। वातावरण को सामान्य बनान की गज स हल्का-भा विनाद किया—“जब तुम घुटाप म चौबारा मे साकर क्या करोगी ?”

अगर वह और भी ज्यादा पीछे पड गयी—“अच्छा ! तो यह बात है। म बूढ़ी हो गयी बूढ़ी। तो क्या झक मारने आत हो मेरे पास ? कोई मरी सौक गावरु हो उसने पास जाना ना। या फिर और ले आओ काइ नयी नवली धीनणी। छूव दूध मलाई खिलाते हो ना, नादान बनान के लिए। नासपीट नीचे भी ठम जायें, बचा-भुचा जग भर कर ऊपर चौबारे मे ले जायें। मैं बची हू कार मार टुकडे सूखे टुकडे बचान की। एक ता मरी बीमारी पिण्ड नहीं छोडती, उपर स सारा घर चून बाध गैल हो रहा है। इलाज कराना तो दूर, तुम भी कलेजे म सेल निवाल रह हो। बूढ़ी क्या हो गयी, कभी-न-कभी अरथी कौन-सी नहीं निकल जायगी। पर किसको दुख हागा ? मारना तो सब चाहत ही हो ना। कुए म धक्का क्यों नहीं मार देत ? एक दिन म पाप कट जाय। फिर ल आना नादान। मेर टावरा की खोटी होनी है सो हो जाएगी। बेचार मा क बिना बिल्लायाग।”

फिर जो पंचम स्वर म रदन चालू हुआ तो थमने का नाम नहीं।

कमल की बहू आनी जानी हुई तो रोज कोई-न कोई किस्सा तयार मिलता।

—“दिखो जी, मरा क्या जमाना आया है। सरम हया रही ही नहीं। जब दखो कमरे म घुसे रहते है। कुत्ते बिल्ली भी नहीं रहे। य बूढ़े-बूढ़ी भी जब सास नहीं निवालते। नहीं तो सुबह चार बजे ही आसमान सिर पर उठा लेत थे—‘दिन दोपहर आ गय, जब तो उठ जाओ।’ तब तो जाधी रात म ही दोपहर हो जात थे। अब दोपहर मे भी नाम नहीं लत। आख फूट गयी क्या इनकी ?”

—“आज लाडली बहू के ससुर बोले — भई, बडी और लेंग। बडी उम्दा बनी है। छाटी बहू ने बनाई दीख।’ अब बोलो, कित्ती दुख उठन वाली बात है। मैं तो जस जहर बना क डिलाली हू। इस कान सुनो चाह उस कान सुनो, इस घर मे मेरा गुजारा नहीं होगा।”

—‘दापहर म दोना मिया-बीबी अमरस बना कर पी रह थे। मरा छोरा चला गया तो दो झापड मार दिम। क्या मार दिम ? उनका कुछ उठा लिया था क्या ? कहा तो लन्ने के तयार हो गये—‘टेलीवीजन खराब कर दिया।’ इनके ब्याह का सामान तो इही का हो गया। फिर मेरे सामान का क्या हुआ ? मेर टावर तो इसको फूटी आखो नहीं सुहाते। राड बासडी-बसोवडी मुह देपने का

घरम नहीं।

इस तरह करत-करत दा साल और घिटाट गया। इस बीच यह कुछ और दुबली कुछ थोर बूढी कुछ और तीखी और चिडचिडी हा गयी। बीच बीच म बीमारी की शिकायत और तरह-तरह के इलाज चलत रह।

एक दिन कमल की बहू का बुखार आ गया। डॉक्टर जाया। दवा-दार की गयी। रात बहने लगी—“दखा तुमन ? थाडे स सिर-न्द वा बहाना क्या बनाया कि सार घर मे हडबटी मच गयी। माह्वजादी की खातिर घर पर ही डाक्टर आ रहा है, कोई दवा ला रहा है, कोई पानी गम कर रहा है। और मरे लिए सबका माथा ठनकता है। “यह तो यो ही करती रहती है। आदत पड गयी है। काम करत जोर जाता है। खाने की लाय लग रही है सो बीमारी का बहाना बना रखा है। बडे का नहीं देखा ? कैस आसमान सिर पर उठा रखा था—“तुमस किसन कहा था सुबह-सुबह मग्दी मे इसे गोबर पाथने भेजो। इसकी आत्मन है क्या ?” मेरी है आदत। मैं हू इनकी नौकरानी। सो करती रहूंगी जिन्दगी भर इनका पानी पसीना गाबर झाडू। पटरानी जो मोई रहेंगी महल मे पलग पर। अभी तो इसके पैर और दवाऊगी पया और झलूगी। मठानी थी तो गयी होती कही सठ साहूकारा का या काड घादी-गाली लाती साथ। राड का मुह देखन मता घरम नहीं। बाझडी-बझोकडी। मेरे टाबरा का और खायगी।”

लगना था, प्रतिपक्षी की तमाम श्रेष्ठताओ के बावजूद उन परास्त करन के लिए इसके हाथ म हथियार आ गया था। एकमात्र हथियार, मगर एकदम मारक—“बाझडी-बझोकडी।

पाच छह महीने और गुजरे। एक दिन शाम को आफिस स लौटा ता भरी बठी थी। छूटत ही वाली—“तुम्ह सुवाद हा ता शक मारत रहो इनके साथ पर मरा चूल्हा अलग रख दो। बस आज ही, अबकी सात ही नहीं ता किसी बुए-जोटड म धक्का दे आओ। दुख भी मत उठो। हर काम म दुराचारी।”

“यात क्या हुई ?”

“यात क्या हुई ? तुम न कुछ दण्डत न कुछ कहते। क्या क्या कर दत जाओ, ये बत्ती लगात जायेग। आज बीमारी का वीरना आया था। एक दडियल मुसण्डा साथ था। मक्दूर दिखान आये थे यहा। दखा नहीं, सब कम छनरी हुए जा रहे थे। कभी खोवा-खाला की बोतल मगात है कभी नीबू की सिकजी बनात हैं तो कभी मौसमी का ठोगा भर कर लात हैं। सूजी का सीरा, खीर पराठे, दो-दो सब्जी, आम का आचार पादीन की चटनी, भुजिया पापड जान क्या-क्या उडा। मैं कहती हू मरे पीटर से कोई आता है तो यह सब कहा जल जाता है ? उस दिन मरा चाचा आया तो यह खूसट बोतल लेकर हॉस्पिटल चल दिया और यह तिगोडी बुडिया सिमका बडिया का यहा चावल बीनन निकल गई। भण्डार का

ताली कमर म लटका ले गई राड । लूखी-सूखी रोटी देनी पडी । गुवार फली का साग और प्याज, घस । क्या सोचेगा मन म ? कौन रोज रोज आता है ? पर मैं और मेरे आदमी तो इनका फूटी आखा भी नहीं सुहात । ये दोनों राड रडुवा ही निकालेंगे क्या इनकी बकुटी ?”

और फिर एक दिन जब इसन 'अपन टाबरो' को लेकर कुए मे कूद जाने की घमकी दे डाली तो मेर पाम कोई चारा नहीं रह गया । कमल को बस स्टेण्ड पर पान-बीडी की दुकान करा कर अपना चूल्हा जलग रख लिया । सोचा इसकी भी बीमारी मिटगी और मेरे भी जी म शान्ति रहगी ।

मगर बीमारी इसके स्वभाव मे थी, सो नहीं गई । इसका मन दुखी होने का कोई-न-कोई बहाना ढूँढता रहा ।

कमल के समुराल म उसकी साली की शादी थी । उसके समुर का विशेष आग्रह था । आफिम मे आकर सोग घ दिला गये, सो जाना पडा । लौटा तो यह तलवार खीचकर तैयार थी—' मैं पूछती हू तुम क्यों गये वहा झक मारन ?”

‘देखा, तुम्ह ऐसा नहीं सोचना चाहिए । अलग हो गय तो सम्बन्ध थोडे ही टूट गये । रिश्तदारी म जाना भी पडता है ।’

“चूल्हे मे गया रिस्ता और भाड मे गयी रिस्तेदारी । क्या लगते है वे हमार ? भाग भाग कर फिर उही म घुसे जा रहे हो । कल को वो राड बाझडी ताने मारगी—‘मर पीहर के बिना तो बाम नहीं चला ना तुम्हारा ।’ मेरी न भतीजी का ब्याह था । गया था वह मुहझीसा ? तुम ही हो, जो कमीण की तरह भाग भाग कर चने जात हो ।

“भई, तुम ममझती क्या नहीं ? उम दिन कमल का इण्टरव्यू था ।”

“या ‘इण्टरव्यू’ । जाना ही होता तो छोड नहीं सकता था ‘इण्टरव्यू’ ? अब तो बन गया ना ‘कलटूर’, ‘इण्टरव्यू’ देकर ? मेरे पीहर वाले तो गये बीते है न । कौन जाये वहा ? घणा सारा माल मिलता है वहा सब जाते है । तुम्हार भी लाय लग रही है ।”

आज भी मुवह से ही वातावरण तनावपूर्ण है । अस्पताल से लौटत-लौटते नौ बज गये थे । जल्दी जल्दी नहा-खाकर आफिस चला गया । इस बीच कोई सीधी बातचीत नहीं हुई । बच्चो के माध्यम से ही सब कुछ चलता रहा । फुसत भी नहीं थी कुछ कहन मुनन की । सोचा था शाम तक स्थिति सामान्य हो जायेगी ।

शाम लौटा तो घाट पकडे थी । दो-तीन बार तबीमत पूछी पर होठ जैसे सिल गए हा । चाय रीता न बनाई । पीकर बाहर निकल गया । खान के बक्त उठकर जो कुछ बना था, सामन रख कर फिर खाट पर जा पडी । अब भी वसे ही पडी है निस्तब्ध, निश्चेष्ट । मैं बगल की चारपाई पर पडा पडा सोच रहा हू और बीडी पर बीडी फूक रहा हू ।

यह तो तय है इसे नीद नहीं आइ है। समझ म नहीं आ रहा बात कहा स शुरू करू। हाथ बढा कर झिझोडता हूँ— 'सो गई क्या ?'

कोई हरकत नहीं। फिर झिझोडता हूँ— 'तवियत ज्यादा खराब है क्या ?'

हानी रह तुम्हारी बला स। आज भी रूक जाते अस्पताल म। मैं कौन हाती हूँ ?

अच्छा ! तो यह बात है। कल आफिस से लौट रहा था कि दखता हूँ कि मा जीर पडौस की धानी मा कमल की बहू को तागे म लिटा कर लिए जा रही हैं। पीछ-पीछ साइकिल पर कमल था। मालूम हुआ अचानक तबीयत खराब हो गई। कण्डीशन सीरियस है। अस्पताल ले जा रहे हैं। मैं भी साथ हो लिया। जरूरी था। रात कमल बोला— दादा तुम भी यही रहा। जाने कब क्या जरूरत पड जाय। घर खबर भिजवा देता हूँ।

मैं समझान की कोशिश करता हूँ— 'देखो हारी-बीमारी म मदद करना इसान का फज है।

हां-हां, तुम्हारा ही है फज। मैं अपनी बात पूरी करू इससे पहले ही वह शुरू हो जाती है, 'उनका घाडे ही है। इतनी इतनी बीमार पडी, कभी कोई बात पूछन भी आया ? दम-दस दिन तक अस्पताल म मरती रही। वह निगौडा एक दिन भी जान जागा नहीं हुआ।'

कहना बकार था कि उन दिनों कमल की परीक्षा चल रही थी और मैंन जान बूझकर उम खबर नहीं दी थी।

'तुम बात को समया करो। उसकी हालत बहुत खराब थी। कुछ हो-हवा जाता ता दुनिया धूल डालती।

वह जीर भी भटक उठती है 'और मरी तो तवियत ठीक ही थी। मैं तो सैर-मपाट करन गई थी अस्पताल। तवियत ता उस साहबजादी की ही खराब हाती है। राड झूठ-मूठ क चरित्र करती फिर। क्या खाता है उस ? इस राम स तो मगन स रही। मर जाती ता पिण्ड ना छूटता। सुबह-सुबह दशन ता नहीं हात राड बापडी क। पर भगवान भी डरता है उसस।

मुने उम पर गुस्सा नहीं रहम आता है। क्या उसन अपनी स्मति म इतनी सारी स्थिनिया का इस तुलनात्मक ढग स सजो रखा है जिसम उम हरदम अपनी उपशा का अहमाम होना रह ? क्या वह मचडी की तरह अपन ही लिए जाल बुननी रहती है ? क्या अपन ही द्वारा पैदा की हुई आग म जलती रहती है ? किसी ने ठीक ही कहा है— 'गुद स्थितिदा नहीं दुखद विचार दुखी करत हैं। यह बात इमनी गमन म आ जाय ता इमन सब बरग बट जायें। मगर समस्या यह है कि न गमन पास उम ममजन लायक निशा है और न मर पास इम ममजान लायक भागा। फिर भी वाशिन कर दखता हूँ।

“अब छोडा इन वाता को । यह बताओ, तबियत तो ठीक है न ?”

“ठीक है मरा सिर । घडा तो नही हुआ जाता । सिर म चक्की-भी चल रही है । हाथ-पैरा म ‘बोधण’ लग रही है जैसे धुन लग रहा हो ।”

‘तो बल चलना । और दिखा देगे डाक्टर को ।’

“डॉक्टर के बस का रोग नही है । किसी न कुछ बरा रखा है । पीर बाबा न बूझा निवाल कर बताया है । इसी राड बाझडी की कारस्तानी है ।”

“देखो, असली बात तो यह है कि तुम्ह बाई बीमारी नही है । तुम ।”

“पूठ-मूठ के ‘फैक्ट’ रच रही हा यही कहना चाहते हो ना ?” वह फिर तीखी हा उठती है, बहलो, तुम भी मरजी आये सो कहलो । मजा आता है मेरे को बीमार पडन म ? दुनिया तो पीछे पडी ही हुई है, तुम भी क्या बसर रखोगे । मारना तो चाहत ही हो सो मर जाऊगी दो चार दिन म । फिर जो लेना घी के । हे तिरलोत्ती क नाथ ! क्या मरी माटी खराब करता है ? मौत कयो नही द देता जा ।”

‘तुम मेरी बात ता सुना । मानता हू, तुम बीमार हा और बहुत बुरा रोग तुम्हें लगा हुआ है । मेरे कहन का मतलब यह था कि तुम्हारी बीमारी भिट सकती है अगर तुम दूसरा के बारे म सोचना बंद कर दा । उन्हें देख कर जला नही ।”

बात ज्यादा बडवी हो गयी । यह एडी से चोटी तक भभक उठी है—“क्या बडा ? मैं जलती हू ? मैं दूसरो को देख कर जलती हू ? उस गयी-बीती दा टके की राड पर जलती हू ? जिसका मुह देखने का धरम नही, उस राड बाझडी-बझोन्डी से ।”

“मुह सभाल के बाला । कमल की बहू का पाव भारी है ।”

“है 555 ?” जसे ब्रह्माण्ड हिल उठा हो । यह चौककर उठ बंठी है ।

‘हा, डाक्टर कहता है, वह भा बनने वाली है ।’

यह सन रह गयी है । इतनी दयनीय मने उसे कभी नही देखा । जिस ब्रह्मास्त्र से शत्रु पर जघाघुघ बार करती हुई वह जाज तक लजती रही है, वह एक क्षटके म खण्ड-खण्ड होकर उसन हाथ से छिटक गया है । अब वह बिलकुल निहत्थी है—
नितात असहाय ।

कटे पेड-भी यह मरी गोत्नी म ढह पडी है और फूट-पूटकर रोये जा रही है ।

□

शालिनी

नन्दलाल परसरामाणी

इसन एक बार फिर पढा ।

झाड़वर की सीट के पास वाली खिड़की के धुंधने स्याह काच में तारा प्रतिबिम्ब पहचान लिया । तुम मेरी ओर निहार रही थी । समझा था तुम पास बैठ मुसाफिर में कुछ कहना चाह रही हो । किंतु ऐसा नहीं था । मैंने तो मुझे भी इसका भान नहीं, रहता यदि तुम्हारे पीछे वाली सीट परवठा मुसाफिर खकार कर खिड़की से बाहर नहीं थूकता । इसकी आवाज स मरी निगाह शीशे से टकरायी थी । इनकी देर से मैं अपने ही खयाला क ताने बाने बुनन में उसझा हुआ था । प्रतिबिम्ब न मुझे मेरा अतीत लौटा दिया । बाला के सवाग्न क डग और गाला में बन हुए खड्डा से तुमको पहचानन में विलम्ब नहीं हुआ । मैं देखा तुम अनायास ही अपनी सीट से सरक गयी, जैसे मेरे लिए स्थान बना लिया । मैं तुममें चार-पाच कतारों पीछे बैठा हुआ था । उठकर तुम्हारे साथ बँठन की हिम्मत नहीं बटोर सवा । दिल और दिमाग दो अलग अलग चीजे हैं । जब दिल उडना चाहता है तब दिमाग बाधक बन जाता है, एमा ही कुछ मर दिल और दिमाग के माय भी हुआ । तुम अपलक मरी ओर निहार रही थी । इसन मुझमें शक्ति फूट दी । कोई आकर पेसेज में खडा हो गया । एम-दूमरे का देखना बन्द हो गया । शायद तुम बर्दाशत नहीं कर पायी । भारी शब्दा में जगती कतार में एक सीट की ओर इशारा कर उम बिठा दिया । मरी तरह तुम्हारा अतीत भी तुम्हारे सामन आ गया था । एम दूमरे से कहन के लिए बहुत कुछ था । अपने अपन मतव्य तब पहुचने क पहले एक बार भिन्नता चाह रहे थे । इस मोच विचार में बस आग बढ़ती जा रही थी । किन्तु ही स्टॉप आए, यात्री उतरे और बँठ, पर हम शान्त थे ।

“बाबा, अधा हू पाच पम दस पम”, कहते हुए एक भिन्नारा तुम्हारे सामने खडा हो गया । कटार में एक मिक्सा ढालने हुए तुमन मुन्कर मेरी ओर देखा । नयन मिले । इनकी भाषा में एम-दूसरे की कुछ कह गये । गर्माइश का

एहत्तास हुआ। नसा मे ताजगी उपज आयी।

अगले स्टाप पर दोनो उतरे। पास वाले तिक्वोने पाक के पौधा के झुरमुट पीछे छुप गय। सोचा था कि तुम इतन करीब आओगी कि सासो की सुरमाला से सारा ससार मुगधित हो जायेगा। वर्षों की दूरी भाग जायेगी। मधुर और मीठी वक्तिया होती रहगी।

ओह! तुम शरीर से बदली हुई हो। चार वष पहले का व्यक्तित्व अब नहीं रहा है। चादनी से धोयी हुई मासल देह अब कहा है? जिसे सदा रशम और मखमल के परिधान म देपता था वह शालिनी कहा रही है। कहा है वह मुस्कान जो सदा आमन्त्रित करती रहती थी। देह की हर एक मासपेशी दुखनी हुई दिखनी है। कहा है वे बाह जो फैलती हुई बुलाती रहती थी।

आमने सामन बैठ अपनी अपनी उलझी डोर को सुलझाने का नाकाम प्रयास कर रहे थे। मैं हृदय की बढ़ती हुई घडकनो के जातक से चुप था। तुम शायद बातचीत के मिरे को दूढते हुए चुप थी। समय की स्याह चादर म तुम त्रिपटी थी। मेरा साहस ही नहीं हुआ कि मैं तुम्हें छू लूँ। छूने पर जो जुविश पैदा होती उसकी चूमवीय शक्ति कदाचित हमारा सबनाश कर देती।

वर्षों तक जो कभी हुआ था वह सपना ही था। सपना ही नहीं, सपने की परछाइ मात्र थी। जिसे न कभी दिवास्वप्न कहा जा सकता है और न ही निद्रा मे अवलोकित चित्र। मत्य तो यह था, वह जीवन का एक अनय था, जा हम दोना पाले हुए थे। इसी अनय को एरु बार पुन जीवित करन के लिए हम आमने सामने थे। इससे बनी तम्बीर को कनवास पर खीचकर सदा के लिए ठहराने का यह हमारा विफल प्रयास था।

पुम्प हाने हुए भी इस चुम्पी को तोडने म मैं असहाय हुआ जा रहा था। साहमी तुम निकली, तुम्हें सिरा मिल गया था।

‘इतफाक स मिले है।’

तुम्हारा यह सरल वाक्य गहर प्रश्ना स भरा हुआ था। प्रश्नो की कडी न मछनी पक डी क काटे की तरह मुझे जकड लिया। मुझे कुछ भी नहीं सूझा। मैं क्या उत्तर दूँ? बडी कठिनाई स वह पाया।

“हूँ ”

मेरा एक शब्द का उत्तर तुम्हें अच्छा नहीं लगा। तुम्हारे उलझे चेहरे पर कुछ और उलझ गया। यह स्वयं मुझे भी नहीं भाया। मैं स्वयं अपन-आप पर रण्ट हो गया। इस चिढेपन मे डूब ही रहा था कि तुमने सम्भाल लिया। मुस्तराहट से पूछा, ‘कैसे हो?’

‘ठीक हूँ, तुम कसी हो?’

सिलसिला निविघ्न चल पडा। उफनता तूफान इतनी शीघ्रता मे थम जायगा

शालिनी

नन्दलाल परसरामाणी

इसने एक बार फिर पढ़ा।

झाड़वर की सीट के पास वाली खिड़की के धुंधने स्याह काच में तब प्रतिबिम्ब पहचान लिया। तुम मेरी ओर निहार रही थी। समझा था तुम पास बठ मुसाफिर से कुछ कहना चाह रही हो। किन्तु ऐसा नहीं था। वैसे तो मुझे भी इसका भान नहीं, रहता यदि तुम्हारे पीछे वाली सीट पर बँठा मुसाफिर खकार कर खिड़की से बाहर नहीं थूकता। इसकी आवाज से मेरी निगाह शीशे से टकरायी थी। इतनी देर में मैं अपने ही खयालों के तान बान बुनने में उलझा हुआ था। प्रतिबिम्ब ने मुझे मेरा अतीत लौटा दिया। बाला के सवारन के ढग और गाला में बन हुए खड्डों से तुमका पहचानन में विलम्ब नहीं हुआ। मैं दखा तुम अनायास ही अपनी सीट में सरक गयीं जैसे मरे लिए स्थान बना लिया। मैं तुमसे चार-पाच कतारें पीछे बँठा हुआ था। उठकर तुम्हारे साथ बठन की हिम्मत नहीं बटोर सका। दिल और दिमाग का अलग अलग चोज है। जब दिल उठना चाहता है तब दिमाग बाधक बन जाता है ऐसा ही कुछ मरे तिन और दिमाग के साथ भी हुआ। तुम अपनाक मेरी ओर निहार रही थी। इसने मुझमें शक्ति पूर दी। काई आनर पसज में खडा हो गया। एक्-दूसरे का दखना बर हो गया। शायद तुम बर्दाश्त नहीं कर पायी। भारी शब्दा से अगली कतार में एक सीट की ओर इशारा कर उस बिठा दिया। मेरी तरह तुम्हारा अतीत भी तुम्हारे सामन आ गया था। एक् दूसरे से कहने के लिए बहुत कुछ था। अपने अपन गतव्य तक पहुचने के पहले एक बार मिनना चाह रहे थे। इस सोच विचार में वस आग बढ़ती जा रही थी। नितने ही स्टाप जाए, यात्री उतर और बँठ, पर हम शान्त थे।

"बाबा, जधा हू पाच पैस दम पैसे", कहत हुए एक भिगारी तुम्हारे सामने खडा हो गया। बटोर में एक सिक्का डालन हुए तुमने मुँकर मेरी ओर देखा। नयन मिन। इनकी भाषा में एक्-दूसरे का कुछ कह गय। गर्माइश का

एहसास हुआ। उसी में हाजगी उपज आयी।

अगल स्टॉप पर दोनों उतरे। पास वाले तिकोन पाक के पौधा के झुरमुट पीछे छुप गये। सोचा था कि तुम इतने करीब आओगी कि सासा की सुरमाला में सारा समार सुगन्धित हो जायगा। वर्षों की दूरी भाग जायगी। मधुर और मीठी बतिया होती रहगी।

ओह! तुम शरीर से बदली हुई हो। चार बप पहले का व्यक्तित्व अब नहीं रहा है। चादनी से धोयी हुई मासल देह अब कहा है? जिसे सदा रशम और मखमल के परिधान में देखता था वह शालिनी कहा रही है। कहा है वह मुस्कान जो सदा आमंत्रित करती रहती थी। देह की हर एक मासपेशी दुखती हुई दिखती है। कहा है वे बाह जो फैलती हुई बुलाती रहती थी।

आमने सामने बैठ अपनी अपनी उलझी डोर को सुलझाने का नाकाम प्रयास कर रहे थे। मैं हृदय की बढती हुई घडकनों के आतक से चुप था। तुम शायद बातचीत के सिरों को ढूँढते हुए चुप थी। समय की स्याह चादर में तुम लिपटी थी। मेरा साहस ही नहीं हुआ कि मैं तुम्हें छू लूँ। छूँ पर जो जुबिश पैदा होती उसकी चुम्बकीय शक्ति कदाचित् हमारा सवनाश कर देती।

वर्षों तक जो कभी हुआ था वह सपना ही था। सपना ही नहीं, सपने की परछाई मात्र थी। जिसे न कभी दिवास्वप्न कहा जा सकता है और न ही निद्रा में अवलोकित चित्र। सत्यता यह था, वह जीवन का एक अनन्य था, जो हम दोनों पाले हुए थे। इसी अनन्य को एक बार पुनर्जीवित करने के लिए हम आमने सामने थे। इससे बनी तस्वीर को कैनवास पर खींचकर सदा के लिए ठहराने का यह हमारा विफल प्रयास था।

पुग्ग होने हुए भी इस चुप्पी की तोड़न में मैं असहाय हुआ जा रहा था। साहसी तुम निकली, तुम्हें सिरा मिल गया था।

“इतफाक में मिले है।”

तुम्हारा यह सरल वाक्य गहरे प्रश्नों से भरा हुआ था। प्रश्ना की बड़ी न मछली पकड़ने के काट की तरह मुझे जकड़ लिया। मुझे कुछ भी नहीं मूझा। मैं क्या उत्तर दूँ? बड़ी कठिनाई से कह पाया।

‘हूँ’

मेरा एक शब्द का उत्तर तुम्हें अच्छा नहीं लगा। तुम्हारे उलझे चेहरे पर कुछ और उलज गया। यह स्वयं मुझे भी नहीं भाया। मैं स्वयं अपने आप पर रष्ट हो गया। इस चिढ़ेपन में डूब ही रहा था कि तुमने सम्भाल लिया। मुस्कराहट से पूछा, ‘कैसे हो?’

“ठीक हूँ, तुम कैसी हो?”

सिलसिला निर्विघ्न चल पडा। उफनता तूफान इतनी शीघ्रता में थम जायगा

शालिनी

नन्दलाल परसरामाणी

इसने एक बार फिर पढ़ा।

ड्राइवर की सीट के पास वाली खिड़की के धुंधले स्याह वाच में तरा प्रतिबिम्ब पहचान लिया। तुम मेरी ओर निहार रही थी। समझा था तुम पास बैठे मुसाफिर में कुछ कहना चाह रही हो। किंतु ऐसा नहीं था। बस तो मुझे भी इसका भान नहीं, रहता यदि तुम्हारे पीछे वाली सीट पर बठा मुसाफिर खबर कर खिड़की से बाहर नहीं पूकता। इसकी आवाज से मेरी निगाह शीशे से टकरायी थी। इतनी देर से मैं अपने ही खयालों के ताने बाने बुनने में उलझा हुआ था। प्रतिबिम्ब ने मुझे मेरा अतीत लौटा दिया। बालों के सवारन के ढग और गाला में बन हुए खड्डा में तुमको पहचानने में विनम्ब नहीं हुआ। मैं देखा तुम अनायास ही अपनी सीट से सरक गयी, जैसे मेरे लिए स्थान बना लिया। मैं तुममें चार-पाच कतारों पीछे बैठता हुआ था। उठकर तुम्हारे साथ बठन की हिम्मत नहीं बटोर सका। दिल और दिमाग दो अलग अलग चीजे हैं। जब दिल उशना चाहता है तब दिमाग बाधक बन जाता है ऐसा ही कुछ मर दिल और दिमाग में साथ भी हुआ। तुम अपलक मेरी ओर निहार रही थी। इसने मुझमें शक्ति पूक दी। कोई आकर पेसज में खड़ा हो गया। एक दूसरे का देखना बंद हो गया। शायद तुम बर्दाश्त नहीं कर पायी। भारी शब्दा से जगली कतार में एक सीट की ओर इशारा कर उस बिठा दिया। मेरी तरह तुम्हारा अतीत भी तुम्हारे सामने जा गया था। एक दूसरे से कहने के लिए बहुत कुछ था। अपने अपने गतव्य तरु पहचानने के पहले एक बार मिलना चाह रहे थे। इस सोच विचार में बस आग बढती जा रही थी। कितने ही स्टाप आए, यात्री उतर और उठे, पर हम शांत थे।

‘बाबा, अघा हूँ पाच पमें दस पमें, कहते हुए एक भिखारी तुम्हारे सामने खड़ा हो गया। बटोर में एक सिक्का डालत हुए तुमने मुत्कर मेरी ओर देखा। नयन मिले। इनकी भाषा में एक-दूसरे को कुछ कह गये। गमाइश का

एहसास हुआ। उसी में ताजगी उपज आयी।

अगले म्हाप पर दोनों उतर। पास वाले तिबोने पाव के पीधा के झुरमुट पीछे छुप गय। सोचा या कि तुम इतन करीब आआगी कि सासा की सुरमाला से सारा समार मुगधित हो जायेगा। बपों की दूरी भाग जायेगी। मधुर और मीठी बतिया होती रहगी।

ओह ! तुम शरीर से बदली हुई हो। चार बप पहले या व्यक्तित्व अब गही रहा है। चादनी स घोधी हुई मासल देह अब कहा है ? जिस सदा रगम जोर मग्नमल के परिधान म दखता था वह शालिनी कहा रही है। कहा है वह मुस्वान जो सदा आम्रि त्रत करती रहती थी। देह की हर एक मासपेशी दुखती हुई दिखती है। कहा है वे बाह जा पलती हुई जुलाती रहती थी।

आमने सामन बठ अपनी अपनी उलझी डोर को मुलझाने का नाकाम प्रयास कर रहे थे। मैं हृदय की बढ़ती हुई धडकनी के आतब स चुप था। तुम शायद बातचीत के सिर को ढढत हुए चुप थी। समय की स्याह चादर म तुम लिपटी थी। मेरा साहस ही नहीं हुआ कि मैं तुम्ह छू लू। छूने पर जो जुबिश पैदा होती उसनी चुम्बकीय शक्ति बदाचित्त हमारा सबनाश कर देती।

बपों तब जो कभी हुआ था वह सपना ही था। सपना ही नहीं, सपने की परछाइ मात्र थी। जिन न कभी दिवास्वप्न कहा जा सकता है और न ही निद्रा मे अवलोकित चित्र। मत्य तो यह था, यह जीवन का एक अनथ था, जा हम दोनों पाले हुए थे। इसी अनथ को एक बार पुन जीवित करन के लिए हम आमने-सामन थ। इसम बनी तम्बीर को कनवास पर खीचकर सदा के लिए ठहरान का यह हमारा विफल प्रयास था।

पुग्न होने हुए भी इस चुप्पी को तोडन म मैं जमहाय हुआ जा रहा था। माहमी तुम निकली, तुम्ह सिरा मिल गया था।

‘इतफाक स मिले है।’

तुम्हारा यह सरल वाक्य गहरे प्रश्ना स भरा हुआ था। प्रश्ना की कडी न मछनी पकडा के वाट की तरह मुझे जकड लिया। मुझे कुछ भी नहीं मूझा। मैं क्या उत्तर दू ? बनी बठिनाई स कह पाया।

“ह ”

मेरा एक शब्द का उत्तर तुम्ह अच्छा नहीं लगा। तुम्हारे उलझे चहरे पर कुछ जोर उलझ गया। यह स्वय मुझे भी नहीं भाया। मैं स्वय अपने आप पर रष्ट हो गया। इस चिन्तेपन म डूब ही रहा था कि तुमने सम्भान लिया। मुस्कराहट स पूछा, “कैस हो ?”

‘ठीक हू तुम कसी हो ?’

सिलसिला निविघ्न चल पडा। उफनता तूफान इतनी शीघ्रता से थम जायेगा

विश्वास ही नहीं आ रहा था। बातचीत एक बार पुनः सामान्य हो गयी। वैसी मुस्कराहट के साथ तुमन कहा—

“कैसे दिखती हूँ ? कुछ बदला है या नहीं ?”

मेरे प्रश्न के उत्तर में तुमन प्रश्न पूछ लिए। बोलते ही तुम्हारी आकृति मुरझा गयी। उत्तर में प्रश्नो ने तुम्हें विह्वल कर दिया। तुम्हारे नेत्र एक बार पुनः मजल हो गये। धाराएँ बहते बहते रुकती रहीं। ऐसा पहले भी होता रहा है। कभी तुम पलकें बिछाये रखा करती थी।

मिलन में देरी होने पर तुम्हारी आँखें गीली देखा करता था। विल्कुल आज की तरह नयनों के कटोरे मरी राह जोहत जोहते भरा करते थे। साथ ही उलाहने दान में भी कमी नहीं रखती थी। कहा करती थी, “मेरे स भी अधिक तुम्हारे कार्द और काम है ?”

मैं सदा चुप्पी साधे रहता। चुप्पी में मेरा अपराध मुखरित होता। मोचता था, मचमुच तुम्हारे सग के अलावा इस ससार में मेरा कोई और काम नहीं था। बाकी सब कुछ तुच्छ था। तुम्हारा जतन वैसा ही है। तुम्हारे नयन कटोरे वैसे ही हैं। इनकी आभा वैसी ही है। मैं नहीं कह सकता कि तुम भूल गयी हो। ‘म’ तुमसे भूल नहीं सका है। जतीत के मधुर लम्ह अब तुम्हारी धरोहर हा गया है। बड़े जतन से तुमन धरोहर को सजोरकर रखा है। य पलके इसकी साक्षी ह।

तब तुमने किस भावावेश में कहा था, ‘दिनीप, पति के सग रहकर मैं तुम्हारा दिया हुआ सब कुछ भूल जाऊंगी। विवाह के बंधन में बंधने से इन्कार करने पर शायद तुमने जो अवशय शब्द कहे थे। इन शब्दों ने मुझ पर क्या बहुर ढाया था तुम अनभिज्ञ हो। तुम तो शोध जताकर जलजला लाना चाहती थी, शालिनी। यह जलजला क्षणिक ही रहा। आज स्पष्ट था कि मर प्रति तुम्हारे एहसास अपरिवर्तित है। मैं तुम्हारे अदर जान भी बसा हुआ है। तुम स्वयं स ठगी रही।

“मैंने कहा, ‘तुम वैसी ही हो शालिनी ,

“मैं कम वैसी ही हूँ ?” तुमने कहा।

“क्या, तुम वैसी नहीं हो ? इन पलकों की कोरी में वैसा ही जल बह रहा है। गहराई वैसी ही है। नसा में वैसी ही उष्णता है। तुम स्वयं में पूछो तुम्हारे हृदय के तार कम ही एहसास अनुभव कर रहे हैं। मेरे अधर कभी नहीं कह सकते कि तुमने परिवर्तन आ गया है।

मेरे सामने कबल तुम्हारा मन था। मन का दपण साफ था। तुम्हारी देह से मेरा कोई वास्ता नहीं रहा है। तुम्हारे अदर के बहाने से मेरा चिर वास्ता रहा है। तुम्हारी काया को कभी जाचा नहीं था। जो तुम्हारे में प्रवाहित था वह मरा था। अब भी है जागे भी रूपा, मुझ पूरे विश्वास है। एक पल में ही अनुभूति हो गयी कि मैं तुममें था और तुम मुझमें थी। तब तुमने मरी तद्रा तोड़ दी।

“मुझम ऐसा क्या दय रह हो, दिलीप ?”

“वर्षों से जो कुछ नहीं था सूद समत देख रहा हू ।’

“अपलक मत देय तुम्हारी शालिनी यह नहीं है ।

“भिन तो कुछ नहीं है ?”

भाववश बहत हुए तुम्हार नजदीक सरव आया ।

‘नही नहीं एसा नहीं जब मेरे साथ बहुत कुछ और भी है । रिश्ते म किमी की पत्नी हू । नन्द और सास भी है । पहल इतना बडा परिवार थाडे ही था । बस, ले देके एक् भाई था, वह भी नहीं जैसा ।’

तुम खामोश हो गयी । मैं देखा तुम और भी कुछ कहना चाह रही थी । सिलसिले को आग बढ़ाने के लिए मैंने कहा, “तुम्ह कुछ और भी कहना है ।’

अस्पष्ट मुस्मान स तुमने कहा, “कभी सोचा था कि ‘तुम भी मरे हो ।’ मेरा मस्तक झुक गया । क्या उत्तर दता । यदि मैं तुम्हारा होता तो विनाश क्या । यह दुदशा क्यों ? दूदन पर भी मुझे शब्द नहीं मिले कि मैं कुछ कह सकू । खामोश ही रहने म मद्गति मिली । चुप्पी म भी मरे मधुरता लिए हुए एहसास सूखे पत्तों की तरह इन शब्दों के वग से उड गय । मरा अस्तित्व इतराने के स्थान पर कतराने लगा । अज्ञान शक्ति जब इम चीरन लगी तब तुमने ही उवार लिया । तुमन पूछा ।

“मोहिनी कैम है ?”

मुने तिनका मिल गया । पकडकर फूली सास को राहत दे दी । कहा—

‘वह अब नहीं रही ।’

रगणा माहिनी की बदौलत मैं तुम्ह कभी पाया था । आज इसी मोहिनी न मुझे मेरी हीनता के गत मे गिरने स बचा लिया । तुम माहिनी के चले जान की सुनकर खीख-सी उठी—

“हा यह पहाड कव गिरा ?”

“गत वय बहुत उपचार हुआ । राग असाध्य था । बच न पायी ।’

इसी क्षण मोहिनी की याद ने सचमुच मुझे झकझोर दिया । मेरी नसे मानो तन रही थी ।

‘ऐसी दबी की सवा करन का जवसर मुझ जैसी अभागिन को नहीं मिला । वास्तव म मैं इसके योग्य भी नहीं थी । राजू जोर बबलू कहा है ।’

“ननिहान ।’

“तुमने समाचार नहीं दिया ।”

“अपनत्व म अधिकार महित तुमन उलाहना दिया था । फिर भां मैं ऐसा नहीं कर पाया । मैं भूल-सा गया । मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था ।” सीधा ही मैं उलाहना द बैठा ।

“तुमने भी वर्षों से दो शब्द नहीं लिखे कभी तो लिखत-लिखते तुम्हार पने

खत्म हो जाते थे।”

मेरा स्वर वेदना भरी ककशाता लिए हुए था। जिसमें तुम उलझ गयी। किंतु मेरा आशय यह नहीं था कि तुम उलझी रहो। मैंने कहा, “शालिनी मर सभी भ्रम टूट गये। साथ लिए हुए अतीत को भूल नहीं पाई हो। ये लम्ह अत तज जुड़े रहग। मन को छूता हुआ प्रेम समयानुसार जीवन के पला को झुनताता भी है और कभी सहताता भी है।”

मैं तो बहुत कुछ कहन जा रहा था, किंतु सम्भल गया। वपों के बात मिले क्षणा को एसी घोबली अहम् तुष्टि ने घोना पागलपन के अतिरिक्त कुछ नहीं था। सयत होकर कहा—

“परिवार में सुखी हो ना?”

किसी न तुम्हारे घायल अंग पर गायून चुभा दिया। मेरा प्रश्न तो सीधा औपचारिक था। जानकर मेरे मन को भी टीस लगी कि मेरे प्रश्न ने तुम्हें दुखी कर दिया। तुम्हारे जाम् टवडवाय। फिर भी सयत होन का प्रयाम करके तुमन भर गले से कहा।

जो इतनी सुखी नहीं कि ग्युश हो जाऊ। क्या बताऊ? सुनाने का साहम ही नहीं है मेरे पास।

कुछ समय ठहरकर तुमन अपनी कहानी सुनायी।

“किस मुताऊ काई पास भी नहीं है। चाहत हुए भी अपना को नहीं लिख पाती। मेरा समय सदाह के घेर में रहती हू। जब तो एक गयी हू, दिलीप।”

मुझे सम्बोधन करत ही तुम रो पटी। गालों पर आसुआ न समानातर रेखाएँ खींच दी। य धाराएँ मुख में समा गयी। जैसे दो मरिताएँ सागर में समा जाती हैं। कभी एम जामू मेरे सीन को छूने ही ठण्डक पहुँचात व। इनका खागपन मिठास में बदल जाता था। पर आज एमा कुछ भी नहीं हुआ। मेरी दह गीली होने के पहने ही तुमन अपने जामू पाछ दिए। तुमने जता दिया कि इन आभुआ पर जब मेरा अधकार नहीं रहा है। कभी या तो वह नशा था जो हमने किया था। यह नशा अब उड़ गया था।

आमुआ के अमन ही तुमन ठण्डी आह भरी और कहा, ‘जच्छा होता यदि तुम इकार नहीं करत।’

यद्यपि य शब्द मेरे लिए अमह्य थे फिर भी जैसे-तैसे कह पाया।

“नि सतेह मरी आशका बुरी थी फिर भी ऐमा कुछ अवश्य था जो मैं हामी नहीं भर सका। भल ही माहिनी न स्वीकृति दे दी थी।”

‘दोदी का रोग असाध्य था। मैं तो इनकी सेवा ही करती। मुझे पाकर वह घाय हो जाती, इसमें किसी प्रकार का सदाह नहीं था। उस छोटी वहन मिल रही थी, दिलीप। जब तक रहती सतोप में जीती।’

मेरे मन में अविश्वास ने जड़ पकड़ ली थी। मैं पीछे हट गया। मेरे जैसे सामान्य प्राणी के लिए स्त्री मन की थाह पाना सरल नहीं है। उदारता भी एक सीमा तक सीमित है। मोहिनी की 'स्वीकृति' पर्याप्त नहीं थी। इसकी विशालता सीमा लाघ चुकी थी। सब कभी भी विपरीत दिशा पकड़ सकती थी। भावावश में यदि किसी दिन वह बैठती कि 'यह पडासिन सेवा के बदले सब कुछ लुटा रही है,' तो मेरे लिए विनाश का अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता। पति पत्नी के सामने ही किमी और को ही वरण कर ले तो यह उसके लिए महाजनक है। वह कह या नहीं कि 'तुम मौन भाषा कम-कम, मेरे जैसे पुरुष को जानना परम आवश्यक है' " एक बार पुनः भावों से निकलकर समतल हो चला था। मैं था,

"छाड़ दे शालिनी, गलत अतीत का भुला देना ही बुद्धिमानी है। 'गलत' क्या था? इस सोचन का समय तुम्हारे पास था न ही मेरे पास।

फिर मैंने तुम्हें मेरे बारे में बहुत सक्षिप्त बताया। बच्चे ननिहाल है। एक दो सप्ताह में मिल आता हूँ। स्वयं एकाकी जीवन जी रहा हूँ। एककीपन के स्याह धुएँ में डूब गया हूँ। अब यह पहले जैसा बुरा नहीं लगता है।

मुनात मुनात मैं भी ठण्डी सास ली। इसका जाभास तुम्हें भी हुआ। पुरुष स्त्री की तरह राता नहीं। मैं भी नहीं रोया। तो भी मेरा हाहाकार तुम्हारे सामने स्पष्ट था। तुम्हारा हाहाकार मेरे से बहुत अधिक था। विघाता ने तो पाप नहीं किया सो नहीं किया। हमने भी एक-दूसरे के साथ जयाय ही किया है। हम हमारे अहम् के निज को प्रकट करना नहीं चाहते थे। इसी का दुःख भोग रहे हैं। अब बखूबी जानते थे कि मोहिनी का रोग अमाध्य है। थोटा-सा ठहरते, मैंने इन्कार किया तो क्या हा गया। तुम्हें इतना अधीर होना नहीं चाहिए था।

अब तो इस हालात में तुम्हें केवल सहना ही है। किसी 'महने' में छिपा हुआ आनन्द होता है। किन्तु तुम्हारे सहने में आनन्द का तन मन भी नहीं है। बोल से सारी कमर टूट जायेगी। कष्ट में सुख भोग नहीं होने पर विद्रोह ही निदान रह जाता है। विद्रोह वीरता से जन्म लेता है "

दब धुएँ के गुब्बारे में से अपने को निकालते हुए तुमने कहा, 'सुखभोग की कल्पना करना ही व्यर्थ है। वीरता से विद्रोह कैसे बढ़े। सब कुछ क्षीण हो गया है। अब वीरता नहीं रही है मुझमें। रस्सी टूट जाने पर गाठ बांध कर जोड़ने वाला ही जब कोई नहीं रहता तो टुकड़ा से बल की आशा धूमिल रहती है। शक्ति बिना प्राप्ति की नींव नहीं। मेरा तो पैदा ही नहीं, दिलीप! कहा से विद्रोह की सोचूँ! क्या सुख भोग की आशा रखूँ? "

मुनकर निश्चय हो गया कि तुम उजड़ गई हो। तन-मन के बोध में दब चुकी हो। अपनी जिंदा राश को विवश हाकर किसी अनजान गतव्य की ओर धकेलती जा रही हो। यदि यह असत्य है तो मन की किमी धूमिल पड़ी हुई लालमा की

धल की परत का उपाड़न का तुम असफल प्रयास कर रही हो इस जीवन में, शालिनी ।

मोचनर मैं न रहा,

“दखो शालिनी, हम दोनो रल की ममानात्तर पटरिया पर भाग जा रह है । इन पटरिया की दूरी कभी नही होती । मिलने की चाह होन हुए भी एक निश्चित दूरी पर बन रहगे ।”

जब तुमन कहा, “बुछ समय ठहर कर बातें करत हुए मन की तपन को ठडक तो दे सकेंगे ।” तब मेरे मन के न जान कितन घाव खुल गए । शायद य मरे नही, तुम्हारे ही घाव थ जिसस तुम छलक पडी ।

“अतीत के कममा-वायदा के सामन बम्बई बडा नही । वर्षों तक एक-दूमरे की सुध नही लेना कहा तक उचित है, दिलीप ?

यह उलाहना कतई नही था । तुम्हारी व्यथा थी जो छलकना चाह रही थी । जविरल जामुआ के प्रवाह में तुम्हारी वेदना कहा तक बह चली, मैं नही जानता था । मैं तो मात्र निश्चल बैठा तुम्हारी ओर निहारता रहा था । पता नही तुम्ह रोता देख क्या मुझे बुरा नही लग रहा था । मत्व तो यह है कि इसमें जच्छा भी नही था । जच्छे और बुरे के बीच की काई स्थिति थी जिसमें ‘मैं’ था ।

तुम स्वय के बोझ से हल्की हा रही थी । बहता पानी जिस तरह किनारो से जुडे मिट्टी के डेले को फाडकर गला देता है इसी भाति आमू व्यथित मन के असह्य भाव फोड फोडकर गला रह थे ।

रवि की बहशत के कारण तुम्हार टुकडे हो गए थे । इसके व्यवहार ने तुम्ह पस्त कर दिया है । जाफिम से आकर घर के सभी काय तुम्ह ही करने पडते हैं । सारा दिन टाइप राइटर पर चली हुई उगलिया तपते तबे की गर्मी में जलती हैं । रात तक थककर चूर चूर हो जाती हो फिर भी रवि के हम विस्तर होना अनिवाय है । इसके आग मिमटना आवश्यकता बन गई है । परिवार की दष्टि तुम्हारी आम दनी पर टिकी हुई है । घर की स्वामिनी होकर भी ‘दासी का जीवन तुम्हारे प्रारब्ध में है । मध्यकाल की दासता की पीडा तुम इस वीसवी शताब्दी में भाग रही हो । तुम नोट बनाने वाला यत्र हो । यत्र को चलाने के लिए केवल तल की जरूरत होती है । इसमें एहसास नही होत । पशुओं के एहसामा की भी कदर की जाती है । तुम्हारे साथ यह भी नही होता

रवि की आय शराब और जुए के अड्डो पर नष्ट होती है । घर-गहस्पी तुम्हे चलानी होती है । इस पर भी तुम गुलामी की वेडियो में बधी हुई हो

कौन तुम्ह पुचकारता होगा, प्यार के मीठे बोल सुनाकर मान रखता हागा ? किससे छठती होगी ? किसको उलाहना देती होगी ? कौन थकी देह को स्नेहिल करो से सहलाता होगा ? कौन अस्वस्थ होने पर आगे आकर रोटी का कौर मुह

मे देता होगा ? कौन कौन कौन ?

तुम घाणी के बैल की तरह हो। थक जान पर जिसे चाबुज मारकर याद दिलाया जाता है कि 'तुम्ह केवल चलना है गोलाकार घेर के अंदर। स्थान निश्चित किया हुआ है। एक इंच न इधर न उधर, प्रतिवाद करने का अधिकार तुम्हारा नहीं है। जब तक तुम घेरे की परिधि में चलते रहोगे तब तक भोजन मिलता रहेगा। तुम्हारे कंधे का जुआ तब उतारा जायगा जब स्वामी की इच्छा हो।

शालिनी ! किसे मालूम है कि तुमने पैबंद लगी साड़ी को कभी आख उठाकर देखा तक नहीं है, टूटी चप्पल कभी देखी नहीं। आज तुम्हारे शरीर पर पैबंद वाली साड़ी है। टूटी चप्पल जुड़वा कर तुम पहनती हो। जब याद आता है कि 'नई-नई साड़िया पहनकर घण्टी तुम मेरे सामने बैठती और दाद न मिलने पर रुठ जाती तो मुझे मताना पड़ता।' तो मन विचलित हो जाता है।

मैं कभी नहीं कहूंगा,

सब्र करो, सब्र का फल मीठा होता है। भगवान क यहा देर है अंधेर नहीं है। सच्चाई की जीत होती है। तुम्हारी भी विजय होगी। तुम्हारे दुःख के दिन कट जाएंगे, आदि-आदि

ये जाज झूठे आश्वासन भर है। कर्मों के फल दुबल, असहाय और अवमण्य व्यक्ति ही भागने की इच्छा रखते हैं। जीवन जीने के लिए है, घुट-घुट कर मरने के लिए नहीं। जाज नारी पुरातन की नारी से सबथा भिन्न है। पुरुष नारी का मुकुट है, सरताज है। माथे पर धरकर वह धम्य होती है। पुरुष भी स्त्री को मन का आभूषण मानता है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। यदि ऐसा तुम दोनों के लिए नहीं है तो 'स्वामी और 'दासी' की दूरी क्या ? तुम्ह अपनी जजीरों तोड़न का शत प्रतिशत अधिकार है। इस जनम में जान पूझकर कष्ट झेलना अज्ञानता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। फिर स जनम लेने की बात को आज का युग नकारता है। कल्पना की उड़ान को मन में पाले रखना मात्र नादानी है, शालिनी !

अपने स्व को पान के लिए स्वयं के विकास के लिए, एहमासा को मूत रूप के लिए, अच्छे आदर्शों के लिए गलत व्यवस्था से समझौता करना मूर्खता है। अपनी इच्छा अनुसार कदम बढ़ाने का अधिकार किसी न तुमसे छीना नहीं। इतिहास साक्षी है कि नये अच्छे आदर्श अपनाते समय समाज ने सदैव विरोध किया है। इसकी परवाह किए बिना ही तुम्हें आगे बढ़ने का साहस करना है। गलत राह पर चलने वाले पुरुष के मन में अपनी ब्याहता पत्नी के लिए किसी नतव्य का बोध उत्पन्न हो ही नहीं सकता है। परिवार में पुरुष के स्वामी बनने पर 'स्त्री' अनायास ही 'स्वामिनी' हो जाती है। शेष सदस्य दूसरे को जाई के लिए जाक बनकर खून चूसने वाले नहीं होते। अपने पुरुष के प्रेमपाश में बंधकर नारी की नसा में जो मधुर सगीत उठता है उसकी कल्पना मात्र से ही वह धम्य हो जाती

है। सदा मिलन की प्यास लिए मारनी अपने मोर के सामने झूमती रहती है। इतन मुख स वचित्त नारी क्यो दुःख दम जबकि वह स्वय गधम है। पुत्र समाज क दुःखा को झेलने क लिए, शालिनी इस ससार म तुम्हारा अवतरण नही हुना है। सारा ही जीवन कष्टा का झेलते हो रहना तुम्हारी नियति नही है। प्राग्भ म भाई का सहारा चाहती थी। 'पार म मरा साथ सम्बन्धी रही। अब पति के अधीन जी रही हा। अभी तब तुम और का पल्ला ढूँढती रही। पर सभी ने तुम्ह किसी न किमी रूप म तुम्हारे निज की अवदलना करत हुए छला है। तुम्हार भावो का सभी न तिरस्कार किया है।

तुम जवश्य ठगी गई हा। फिर भी अबला नही हो। मानत्र द्वारा चाद पर छलाग मारन वाला समय जब दीन-हीन बने रहन का नही है। तिरस्कृत रिश्ता का तिरस्कृत बन रहना अब शोभा नही दता। नारी का निद्रा स जगना मृगतप्णा नही है। तुम जैसी नारिया ही वास्तविकता की दहलीज पर पहुच सकती है। ऐसी गेद बने रहन की आवश्यकता नही, जिसे पूरे शक्ति स दीवार की ओर फेका गया हो। और वह टकरा कर लौटकर पहले के स्थान पर आ गिरी हो।

तुम्हारी दुबलता की उसी समय पराकाष्ठा हो गई जब रवि को ट्रेन मे उत रते दख तुमने मुझे पाक मे अकेला ही छोड दिया। अच्छा ही होता कि तुम हमारा एक-दूसरे से परिचय कराती, पर नही तुमन दिखा दिया कि 'पति' का उपनाम स'दह है। स'दह क अपरिमित घेरे म तुम किस तरह जी रही हो, तुम्हारा जतर-यामी ही जान। यह भी सयाग ही है कि जब तुम बुवारी थी, मैं ब्याहता था। अब तुम ब्याहता हो तो मैं अकेला रह गया हू। तुम्ह यदि प्रसन देखता तो बाकी जीवन यादा के सहारे जी लेता कि 'तु' जब तुम्ह भाग्य के सहार छोडना नही चाहता। पहले घर-द्वार के कपाट जडे हुए थ। अब तुम्हारे लिए खोल दिए है। मोहनी से कम सम्मान तुम्हे नही मिलगा। मैं शीघ्र ही तुमस मिलूगा। तुम कोई दढ निश्चय कर लेना।

इसने पत्र पढकर लिफाफे मे ब'द किया और शालिनी क पते पर पोस्ट कर दिया।

पत्र पढत ही शालिनी के होश उड गए। वह सांचने लगी, इत्तफाक का मिलना इतना गहरायेगा। इसने सोचा तक नही था। वह अपने जीवन की परिधि का स्वीकार कर चुकी है। अब तो स्वच्छता-अस्वच्छता जल मे धुल गई है अपना स्व गवा चुकी है। जो है नही उसे स्वीकारना कसा। इसे अपने निज स क्या लेना-देना? वह तो ताग के घोडे के समान स्वामी की बेंता की जादो हो चुकी है। इसके लिए अपनापन, स्नह सम्मान पाना मात्र कल्पना रह गया है। विधाता ने इसके लिए उत्पीडन और प्रताडना ही लिख दिया है। अनको ऐसी नारिया म से एक यह भी है। इमना एसा जीना ससार म कोई भूचाल नही कोई नयापन नही। वह नगण्य है। नगण्यता ही इसकी नियति है। इसके अ'दर

आने वाले हीन भावों ने इसकी मजाक उड़ाई—वह मानो खिलखिलाकर हस पड़ी। वह बड़बड़ाने लगी।

वाह रे दिलीप ! तुमने तो बहुत कुछ सोच डाला। तुमने तो हिमालय में भी ऊंची उड़ान भर दी। किंतु इसी उड़ान में मुझे भागीदार करना कहा तक याय-सगत रहेगा ? यहा तो भाग्य की चलती है। सब-कुछ जानते हुए भी तुम कैसा विचार कर बैठे ? किसी का उजड़ा घर भी तो उसका अपना घर ही है, ना।

सोचते-सोचते शालिनी के ज-दर-ही-अ-दर एक अज्ञात प्रवाह बग से बहने लगा। इसमें उत्साह था। किसी के द्वारा मिला प्रोत्साहन था जो नया चिंतन दे रहा था। अब उसे अपना कोई दोष नहीं दिख रहा था। फिर इस पीड़ित अवस्था में क्या कर मरती रहे ? कारण कुछ और है जिसकी पीड़ा यह क्यों भोगे ? इस जिदगी का लक्ष्य म-तुष्टि है। इसे पाने का सामर्थ्य रखत हुए भी वह क्यों इससे वंचित रहे। पाने का इसका भी हक है। वह अपराधी नहीं तो सजा भी नहीं। वह पूरा रूप से सबल है, दो-तीन ब्या चार पांच का लालन करने की उसकी सामर्थ्य है। रवि के कु कर्म इसका शोषण क्यों करें ? अग्नि के सामने चुने हुए श्लोक उच्चारण करत किसी को पति मानना दुख का कारण क्यों बन ? इन रुडिया में क्या धरा है ? नारी सोई नहीं है। कहा है सत्यवान ? सत्यवान के न रहने से सावित्रियों का होना-न होना बराबर है। नारी अब समान हिस्सदारी रखती है। विस्तर के बदौलत जीवन भर नरक की पीड़ा क्यों भोगे ?

अब वह भी अकेली नहीं है। शक्ति के संचार ने शालिनी के सोच को बदल दिया। परिवर्तन ने प्रसन्नता पैदा कर दी। वह कुछ भी कर सकती है। अपनी शक्ति की पहचान उसे हो गई थी। वह हिमालय की ऊंचाई तक छलाम लगा सकती है।

अब तक वह बहुत हल्की हो गई थी। आफिस से घर आत ही वह सीधे कमरे में चली गई। किसी से बातचीत नहीं की। सूटकेस खोलकर कपडे उलटने लगी।

साम न बदले तब दखकर ताना कसा,

“रानी आज चाय नहीं बनायेगी ?”

शान्ति से दढ स्वर में शालिनी ने उत्तर दिया।

‘आज राधा चाय बनायेगी।’

सुनकर मा बेटो हैरान हो गई। दोनों ने एक-दूसरे को भावों भरी नजरों से देखा। समझ गई कि शालिनी चाय बनाने वाली नहीं। सास ने इसमें अपमान अनुभव किया, जा जमहा था। पुन टोकते हुए कहा—

“रानी बाहर घूमो जायेगी क्या ?”

फिर भी शालीनता भर गम्भीर लहजे में शालिनी ने उत्तर दिया, “जी ”

जलती आग में इस एक शब्द ने भानो की का काम किया। चिल्लाते हुए साम

ने कहा—

“क्या मतलब ?”

शालिनी इस बार कमरे से बाहर आ गई। कुछ बठोरता से धीम स्वर में बोली, “ममी, यह घर मेरा भी है। नौकरी पर भेजते समय आपको कुछ एतराज नहीं, तो अब बाहर जाने में क्या हज है ? ममी, यह नहीं भूलियगा कि घर का खर्चा मरी कमाई से चल रहा है।”

सास को ये शब्द जलते अगारो के समान लगे। सारी शक्ति क्षीण हो गई। नीचे से धरती खिसकती हुई प्रतीत होने लगी। सारा बडप्पन एकदम धराशायी हो गया। तत्काल शमपण हो गया। राधा सारे हालात को भापकर माता के हाथ पकड़ उसे रसोई में ले गई। शालिनी ने कमरे में वापस जात हुए राधा को सम्बोधन किया, “मेरे लिए भी एक कप बना लेना।”

शालिनी ने देखा कि इसके पास ठीक ढग की एक ही साडी है। हाथ-मुह धोकर साडी पहन ली, और रसोई में आई। चाय पीते-पीते राधा को भी तैयार होने के लिए कहा—राधा यत्रवत तैयार होन लगी। राधा के साथ घर से निकलते समय शालिनी ने सास को कहा।

“ममी, हम बाजार जा रही हैं। आप तरकारी बना देना। लौटकर बाकी रसोई हम तैयार करेंगे।”

शालिनी के साथ सवरी राधा को देखकर सास के निकलत असहाय आसू थम गये। वह समझ नहीं पायी कि शालिनी क्या कर रही है। पल भर पहने का आश्रय पता नहीं कहा गुम हो गया ? वह समझ गयी कि जो कुछ हो रहा है वह बुरा नहीं कहा जा सकता है। मार्केट में दोनों कुछ घंटे इधर-उधर बेमतलब घूमती रही। चाट खायी समोसे खाये। दो समोसे साथ लेकर वे घर लौटी। शालिनी न घर आत ही एक समोसा प्लेट में रख सास को दिया और फिर दोनों न रसोई तैयार की। तीनों न साथ भोजन किया। शालिनी के व्यवहार न उसका मन जीत लिया। उन्होंने महसूस किया कि शालिनी बुरा नहीं कर रही। इसका व्यवहार दोनों को भाने लगा। रवि का व्यवहार ठीक नहीं है। शराब से कुछ भी हो सकता है यह ठीक नहीं होता। मन के भाव समीर की भांति मन को ठण्डक ही दे रहे थे। शालिनी के प्रति रवि का अभाय घणास्पद लगा। अपना जाया पराई जायी के आग चुच्च प्रतीत होने लगा।

राधा ने रसोई की सफाई कर दी। सास की सहायता से शालिनी ने कमरे के अंदर सभी के बिस्तर लगाए। सास की आंखों में इतरात प्रश्न भापकर शालिनी मुस्करा दी।

दर रात रवि के कमरे में आते ही सबकी नींद उचट गयी। सारा कमरा शराब की बू से बासने लगा। मा-बेटी को गंध अमह्य लगी। वे अपने बिस्तर

बाहर ले जाने के लिए उठी तो शालिनी ने उन्हें रोकते हुए कहा ।

“रवि बाहर बरामदे में सोएगा ।” बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किए उसने पति का विस्तर बाहर बिछा दिया । उसे सहारे के साथ बाहर ले आकर लिटा दिया । तब वह रसोई में जाकर भोजन के साथ समोसा भी ले आई । तब तक रवि खरटि भरन लगा । न जान क्या आज उसने रवि को जगाया नहीं । रसाई में पुन जाकर भोजन ढक दिया और सास-ननद के साथ सोयी रही । माता ने अपने बेटे की अवस्था देखी । आज उसे महसूस होने लगा कि शालिनी किस तरह इस नरक में रात बिताती होगी । यह तो एक पल भी बर्दाश्त नहीं किया जा सकता । शालिनी के प्रति अब हमदर्दी भी होने लगी ।

सुनह बाहर आत ही शालिनी न देखा कि रवि का विस्तर गद्दा पड़ा है । मुह से निक्कला मल सूख गया था । रवि अब भी सोया हुआ ही था । इसकी जाख सजल हो गयी । आसू ढुलक गये । आंखें पोछकर रवि को जगाया । रवि के बाथ रूम में जाने पर वह रसोई में चली गयी । रात से ढका भोजन दखते ही फिर रो पड़ी । समोसा उठाकर चूम लिया और भारी मन से बाहर फेंक दिया ।

सबके लिए चाय बना लाई । जब रवि को देने लगी तब उसने घृणा भरी नजर से शालिनी को देखा । वह समझ गयी । गभीर स्वर में रवि से मुखातिब होकर कहा—जानती हूँ, क्या कहना चाहते हो । तुम्हारे कुछ कहन के पट्टे मेरी बात सुन लो ।

“पुस्प का जाधिपत्य नारी पर तब तक जायज है जब वह उसके लिए कुछ करे । हित के स्थान पर बिनाश लीला करने वाले पुस्प का क्या अधिकार है ? यह जानने में तुम सभम हो । तुम परिवार को बदनू और उलटियों के अतिरिक्त कुछ नहीं दत । कज और मज के सिवाय तुम्हारे पास देने को है भी क्या ? दोनों की आय होन पर भी एक कमरे वाल किराए के मकान में रह रह है । डोरो के समान बधे हुए पडे है ।

“शराब और जूना तुम्हारी हडिडया के नासूर बन गये ह । फिर भी तुम घणा करत रहते हो । जैसे मैं तुम्हारी खरीदी बादी हूँ सुन लो रवि शालिनी चार चार के लिए कमा रही है । अब यह इस नरक में नहीं जी सकती । तुम्ह अपनी घणित जादतें त्यागनी पडेगी । अपने बुकम छोडन होंगे । शालिनी यदि घर को स्वयं नहीं बना सरती तो इस नरक भी नहीं देख सकती ।”

कहते हुए शालिनी चाय की प्याली रवि के सामन रखकर रसोई में चली गयी । आज इसन भी चाय नहीं छुई ।

मा बेटे सारा कोलाहल शांत चित्त से देखती रही । रवि का पक्ष नहीं लिया । शालिनी के सत्य का इहान आदर किया । नासूर के फोडे को नशतर से काटना ही बुद्धिमानी है । रवि के झूठे अहम् स्पी नासूर का इलाज प्रताडना

ही है।

रवि न पत्नी का प्रतिवार कमजोर पुष्प की भांति गाली-गलाच से किया। आज इसमें हाथ उठाने का साहस नहीं रहा। शालिनी के शब्दा ने वचन का काम किया था।

शालिनी के दिन अब इस तरह बीतने लगे। रवि के अतिरिक्त सभी सुखी थे। यह नयी व्यवस्था प्रकाश की अनुभूति थी।

एक दिन रवि बीमार हो गया। डाक्टरों ने फेफड़े की घराबी बताया। दवा के साथ भी शराब नहीं छूट पायी। धीरे धीरे शरीर निबल होने लगा। कुछ दिनों बाद कभी अबत भी हो जाता था। डॉक्टरों ने शराब की बिलकुल मनाही कर दी। अब रवि को स्वयं का ध्यान आने लगा, किन्तु शालिनी के प्रति इसका व्यवहार बदला नहीं। एक दिन अद्ध चेतना अवस्था में उसे हास्पिटल ले जाना आवश्यक हो गया। एम्बुलेंस आन पर रवि को उसमें लिटा दिया गया। मा निबट बैठ गयी। राधा को आवश्यक बातें समझा कर तथा बाद में हास्पिटल आन का कहकर शालिनी ने जिस समय एम्बुलेस का पायदान पर पैर रखे थे, उसी क्षण उसने रवि को मा से धीम स्वर में बहते हुए सुना "ममी, रहने दे कमीनी को, तुम जो हो मेर साथ।"

रवि ने उसके सीने को छलनी कर दिया। शालिनी धायल हो गयी। ठीक उसी क्षण सड़क के उस तरफ टम्पो से उतरकर दिलीप इधर आन लगा। किन्तु द्वार पर एम्बुलेंस देखकर आशक्ति हो गया। उसका कदम ठहर गया।

दिलीप को अपनी ओर आते देख पीड़ित शालिनी ने अपने पर पायदान से नीचे कर दिए। सास को सम्बोधित करते हुए कहा, "ममी, रवि के साथ तुम जाओ। राधा भी आ जायगी।"

ड्राइवर इशारा समझ गया। गाडी स्टार्ट करके चला गया। पराजित शालिनी धीरे धीरे दिलीप की ओर बढ़ती गयी। दिलीप के ठहर कदम फिर चलने लगे। वह भी शालिनी की ओर आन लगा। अचानक एक खाली टम्पो इन दोनों के बीच आ गया। शालिनी ने उसे रोक दिया। शीघ्रता से अन्दर बैठते ही ड्राइवर को चलने के लिए कहा।

मैडम कहा ? चालक ने पूछा।

वह चौक पडी। मानो वह गहरी निद्रा में जागी हो।

"अन्तरल हॉस्पिटल।" शालिनी का उत्तर था। जाते जाते उसने देखा कि दिलीप इसकी ओर निहार रहा था। उसने पस में से दिलीप का पत्र निकाला। अपने ललाट से लगाकर चूम लिया, कुछ पल इसे देखती रही। फिर अनगिनत टुकड़े कर हवा में उड़ा दिये। □

त्यागपत्र

कमलेश शर्मा

श्रेता युग में सम्पूर्ण समाज में उपेक्षित गौतम नारि ने उपलब्ध धरी थी अथवा नहीं यह तो कविता नहीं देख पाई थी, लेकिन कामिनी ने अपने पति से उपेक्षित हो जिस सहज गाम्भीर्य को अपने स्वभाव का अभिनय बना लिया था उसे वह रोज देखती थी।

रिक्त कालाश हो या मध्याह्न या राह बाजार की हसी, ठिठोली न सुस्कराती न खिलखिलाती—कभी काम में व्यस्त रहती तो कभी शून्य में कुछ तलाशती रहती।

इस विद्यालय में सस्था प्रधान बनकर आए कविता का कुछ ही दिन हुए थे। शहर के साथ लगा हुआ गांव और गांव का प्राइमरी स्कूल। बीस किलोमीटर का रास्ता तय कर भागी-दौड़ी स्कूल पहुंचती थी सभी। सभी की अपनी-अपनी समस्याएँ थीं। उन्हीं की चर्चा कभी किसी की पारिवारिक पृष्ठभूमि का निवसन करती, तो कभी राह की भोली बालिका सहज सहानुभूति से भर उठती “देख री तन्वे तटके ही आगी कोटा सो” तो उसकी ईर्ष्यानुसंधि ध्यग करती, “तरतराता माल खाव छ” ता कभी प्रगल्भ प्रत्युत्पन्नमति अध्यापिका जवाब देने से भी बाज न आती “धाका माटी कर दबाव छ, म्हान तो आज चाय भी न मली” कभी किसी के गोपनीय प्रेम प्रसंगा की कथा सुनाती कोई कथावाचक बन बैठती। उस दिन भी विभा इसी प्रकार की कोई कथा स्टाफ रूम में सुना रही थी कि कविता को अपनी बात सुनाते देख चुप लगा गयी। स्टाफ रूम भी तो नाममात्र का था एक ही कक्ष के दो भाग कर प्रधानाध्यापक कक्ष एवं स्टॉफ रूम बनाया गया था अतः अंतिम वाक्य जो विभा ने कहा था वह कविता के कानों में पड़े बिना भी न रह सका, वह रही थी—“वेचारी स्कूल भी नहीं आई आज डर के मारे, बल रास्ते में ही पति ने रोक लिया था।”

उस दिन कामिनी स्कूल नहीं आई थी, अतः कविता को समझत देर न लगी

कि विसकी कथा इतना रस ले लेकर वही ब सुनी जा रही है। उसकी भी जिज्ञासा तो थी लेकिन सकोचवश कुछ पूछ न सकी और फिर एक दिन स्वत ही कथा का सम्पूर्ण प्रवाह कविता की जिज्ञासा शांत करन आप ही आप प्रबल बग स उसकी जोर प्रवाहित हो उठा।

खेल नूद प्रतियोगिता मे छात्राओ के साथ जाने की बात थी। विभाजी के नाम आदेश निकाला गया था कि आदेश-पुस्तिका हाथ म लिए विभाजी तत्काल कार्यालय मे आ उपस्थित हुई।

“मडम, मेरा बच्चा बहुत छोटा है। मैं नहीं जा सकती, आप कामिनी जी को ले जाइए।”

कविता ने आदेश आभाजी के नाम निकाल दिया। आभा ने तुरन्त सफाई पश की। “मैडम मेरे पति का विल्कुल पसन्द नहीं है कि मैं रात को घर मे बाहर रहू।” फिर कुछ रुककर बाली—“जाप कामिनी जी को ले जाइए न।”

दो अध्यापिकाजा द्वारा प्रस्ताव रखे जाने पर भी कविता ने इस बार आदेश मालती क नाम निकाला। मालती जविवाहित है आते ही बोली—“मेरे माता पिता हरगिज नहीं भेजेगे।” फिर मथरा की सम्पूर्ण कुटिलता म कटाक्ष किया उसने, “मैडम जाप कामिनी जी को ले जाइए न। उहे ता पति ने छोड रखा है। कोइ जिम्मेदारी नहीं है उन पर, न कोइ बालि न बारिस।

कविता ने गुस्से से टोका, “माता पिता बाहर भेजना पसन्द नहीं करते तुम्हारे, मुह से ऐसी बातें सुनना पसन्द करते है क्या ?”

फिर स्टॉफ सेक्ट्री से परामश किया उसने, तमककर बोली—“अर बाह जाएगी कम नहा, सरकारी नौकरी है। एसा कीजिए मैडम लिखित म एक एक से ने लीजिए। इनके गोपनीय प्रतिवेदन म नोट लगान की धमकी दोजिए। तब आएगी जकल ठिकाने।”

कविता ने प्रस्ताव रखा “तो आप ही चलिए न।”

हक्लाकर बोली, “म मैं कैसे चल सकती हू। मेरे पति विल्कुल पसन्द नहीं करते। आप ता स्वय जानती ह।”

कविता हीले से मुस्करा दी। फिर कामिनी को ले जाना ही तय रहा। प्रति योगिता स्थल पर कामिनी की कतव्यपरायणता न मन मोह लिया उसका। मौका पा प्रश्न किया उसने—

“तुम इतनी शात, गम्भीर, कतव्यपरायण हो फिर पति म झगडा कैसे हो गया।”

कामिनी न टालने की बहुत कोशिश की, कविता पीछे पड गयी तो बोली— “थगडे का कारण ता कुछ भी हो सकता है। कहारत है न—करे कोई भरे कोई शुरू स ही लापरवाह है। माना पिता से भी नहीं बनती दास्ता क बहुरावे म

भटक रहे है बस ।”

“विवाह को कितने वष हो गए ।”—पाच वर ।

“और अलग रहत ।”

“चार वष ।”

“ओह, तुम तलाक क्यो नही ले लेती । मुना है राह बाजार मे भी रोककर तुम्हे परशान करते रहते है ।”

“तलाक लेकर भी क्या कहगी ?”

“दूसरा विवाह कर लेना, अभी तुम्हारी उम्र ही कितनी है । इतनी बडी जिदगी कसे गुजारोगी अकेले । पिताजी नही रहे । मा आज है, कल नही रहेगी । भाई अभी बहुत अच्छे है, कल घर मे पराई जाई भौजाई आएगी तब क्या निभा पायेंगे तुम्हें ।”

“एक विवाह से तो निहाल हुई, दूसरा करके क्या मिलेगा और फिर पारित्यक्ता से विवाह भी कौन करेगा ? मर्दों का क्या, सभी एक से होते है । जवानी का जोश है । भटक-भटकाकर आएंगे मेरे ही दर और जाएंगे कहा ?”

‘वाह ! क्या आइडिया पाल रखा है । सारी उम्र खाक छानोगी फिर बुढापे मे राह बाजार की धूल को मस्तक पर चढा पति परायण होने का पुण्य कमाओगी । पढी लिखी होकर भी वही दकियानूसी बातें । मैं तो एक बात कहती हूँ, “अपनी नही तो कभी नही । जानती हो तुम्हारी इस मजबूरी का, इस स्थिति का लाभ तुम्हारी सखिया, सहलिया रिश्तदार सभी उठाते है । तुम्हें उपक्षित भी करते है और बहती गंगा मे हाथ भी धोत है ।”

कामिनी न अपनी बोधिल पलके उठाकर गिरा ली मानो कह रही हो—मैं सब जानती हूँ ।

कविता न बात आगे बढाई, “मुझे मिलवाओ कभी, मैं बात कहूँगी ।”

कामिनी ने मौन तोडा, “क्या करेगी मिलकर । अभी उह कोई नही समझा सकता ।”

उन दिना अद्ध-व्यापिक परीक्षाए चल रही थी कि कार्यालय मे बिना किसी आना के एक महानुभाव ने प्रवेश किया । कविता मेज पर कुछ लिख रही थी, कामिनी पास ही बैठी कापिया गिन रही थी । कामिनी को देख आगन्तुक के कदम जहा के तहा रक गए । सम्पूर्ण देह रोमाचित हो उठी । कामिनी के चेहरे पर अनायास लालिमा दौड गई फिर तिरछे नयना से निज पति का परिचय प्रदान कर स्वग्ति गति स वह कमर मे बाहर हो गई । कविता निमित्त मात्र को टगी-सी, विस्मित-सी, देखती रह गई फिर सब समझ गई ।

उसने आगन्तुक से प्रश्न किया, “कहिए ?”

‘जी, इनसे मित्रना है ।’

“इनस, किनस,” कविता ने शरारत से जपन घारा ओर देखकर प्रश्न किया, “यहा तो कोई नहीं है।”

“कामिनी जी, अभी अभी तो यही थी, मेरी पत्नी हैं।’

कविता ने उभी लहजे म प्रश्न किया, “अच्छा आपकी पत्नी हैं। मैं तो इह अविवाहित ही समझती थी। इन्होंने कभी जित्र नहीं किया आपका।” फिर उसने चपरासी को पुकारा।

“जरा कामिनी जी को बुला लाओ।” कामिनी वही दरवाजे की ओट खड़ी थी, उसने उत्तर दिया—“हीरालाल जी ! कह दो इनस, मैं मिलना नहीं चाहती।”

जवाब महाशय ने दिया, “मिलना नहीं चाहती, बाप का राज समझ रखा है ? क्या समझती है अपने आप को ?” और आग बबूला हो दरवाजे की ओर लपके। कविता न टाका—

“किये क्या करते हैं आप ? यहा प्राइमरी और सक्ण्डरी दो स्कूलो की परीक्षा चल रही है। बैठकर तमीज से बात कीजिए, बैठिए पहले।” फिर पूछा उसने—

“आपका शुभ नाम ?”

“देवी लाल।”

“कहा काम करत है ?”

‘रत्वे अस्पताल मे।’

‘अच्छा वहा के चीफ राहब तो मेर सम्बन्धी होत हैं, वही गुप्ता जी।’

“जी हा, जानता हू, मेरे अधिकारी हैं।’

अपने अधिकारी की सम्बन्धी हैं यह जान देवीलाल ने अपन व्यवहार को सममित करत हुए कहा, “देखिए न मैडम, इहोन मेरी जिदगी दूभर कर रखी है। न तलाक देती हैं, न साथ रहती हैं।

“आप क्या सचमुच तलाक लना चाहत है।’

देवीलाल जी ने रीव स कहा, “और नहीं तो क्या ! समय रहते दूसरी शादी नो कर लूंगा कम-स-कम।”

“यदि ऐसा ही है तो त्राइए कागज मुझे देत जाइये। मैं साइन कर्वा कर आपको भिजवा दूगी। अभी नहीं लाए तो तयार कर वकील से भिजवा दीजिए। इहे समझान का जिम्मा मैं लेती हू।’

देवीलाल जी तीश मे आ गए, “आप कौन होनी हैं जिम्मा लेने वाली ? हमारा पति-पत्नी का मामला है। मैं तो इह लन आया हू। अभी चोटी पकड घसीट ले जाऊंगा।’

कविता अवाक मुनती रह गई। आज प्रात ही तो दया था उसने—चौराहे पर पहले लाता घूसा म एक नवयुवक ने स्त्री की पिटाई की, फिर टांग पकड घसीट

कर सड़क व पार ले गया था। उसकी सम्पूर्ण देह में सिहरन व्याप गयी। चुप वह वहा भी नहीं रही थी। उसने आम-पास के लोगो स वहा था—देखो-देखो, कसे घसीट रहा है, कोई छुडाओ।

आस पास पडे लोग तमाशा देख रहे थे, हस रहे थे। कह रहे थ य मामा भील हैं। इन लोगो म यह सब चलता है। आप अपने रास्ते जाइये। इस समय कविता सोच रही थी आखिर किन लोगो म यह सब नहीं चलता। क्या भेद है उस गवार और इस पडे लिखे नवयुवक म।

वह भी तैश म आ गई, “हाथ लगा कर तो देखिए, पत्नी है या बेजान गूडिया ? जब तक जी चाहेगा खेलेंगे फिर राह म, हाट म, बाजार म वही भी ताडकर फेंक देंगे ? क्या विवाह इसी अधिकार प्राप्ति का नाम है। इस समय मैं उसकी अधिकारी हूँ, गडबड करेंगे तो पुलिस को बुलवा लूगी।”

देवीलाल जी भी कम न थे, बोले—“बडी आई अधिकारी, मैं भी देखता हूँ कैसे बुलवाती है आप पुलिस।”

“आप ऐसे नहीं मानेंगे।” कविता ने चपरासी को पुकारा—“हीरालाल जी जाओ थाने स सिपाही को बुला लाओ। परीक्षा स्थल पर अव्यवस्था फैलाना क्या कम जुम है।”

दवीलाल को विश्वास न था कि बात इतनी बढ जायेगी। वह तो महज डरा धमका कर पत्नी को लिवाने आये थे। अकेले रहते उकता गये थे, लेकिन कमजोर भी नहीं पडना चाहते थ।

हीरालाल को जपन स्थान पर जविचल खडा देख, कविता ने डाटा, “जाते हो या नहीं।”

वचारा हीरालाल भारी कदमो स जाकर सिपाही को बुला लाया। दवीलाल नहीं चाहता था कि घर परिवार की बात थान कचहरी तक जाए।

वास्तव म सिपाही को आया दख दवीलालजी सकत में आ गय और कार्यालय स बाहर जाकर खडे हो गय। कविता ने दवी जबान स सिपाही को कहा, ‘हमारे जवाई जी हैं, कुछ बहक गये हैं। फिलहाल यहा स ले जाइये, कुछ घण्टा बाद छोड दीजिएगा।’ सिपाही देवीलालजी को लेकर चला गया। कविता स्वय कानिनी को सग लेकर उनके अधिकारी महोदय के कार्यालय म जा धमकी, उसन पूरी दास्तान कह मुनाई। अधिकारी महोदय ने पहले तो आना कानी की, बोल—

‘पति-पत्नी का मामला है हम कर भी क्या सकत है।’

“समझा तो सजत है। कुछ दबाव भी डाल सकत हूँ। बैसे वह भी तलाक नहीं चाहता है, डराना चाहता है और यह भी रहन को तैयार है। दाना ओर आहत अभिमान है बस, शायद हमारे हस्तधेप से कोई राह निकल जाए।”

थान में बैठे देवीलाल जी याजना बना रह थे कि होने दो छुट्टी, अभी बताता

हू। मिपाहिया को चाय नाशता करवा कर समझ रहे थे कि उसने चाय पिला कर ही सबको बस में तर रखा है। गबवा व्यवहार बितना अच्छा है। स्कूल पहुच तो हाथो के तोत उड गय। दाना स्कूल से नदारद थी। शेष सब वही थी उपहास का पात्र ही बनना पडा था उसे। वहा दाल न गली तो मोचा टीक है, चीफ साह्य की रिश्तेदार हैं, समझूगा।

आफिम में शाम को जैसे ही पहुचे, चीफ साह्य ने पूछा, “वहा ये दिन भर से?”

“जी पत्नी से मिलने गया था। वहा वो उनकी प्रधान हैं न, अपन आपको आपकी सम्बन्धी बता रही थी। उन्होंने बिना वजह मुझे थाने में बन्द करवा दिया था। बड़ी मुसीबत में फंम गया था। मुश्किल से छूट कर आया हू।”

चीफ साह्य हसकर बोले, “और तुमने कुछ नहीं किया था? अभी-अभी यहा से गई है दोनो।”

दबीलाल जी को सिर घुजलाते देख आग बोले, “यदि वास्तव में बन्द करवा देता, तुम्हारी लिखित रिपोर्ट कर देती तो वहा तुम्हारी जमानत भी बोन करवाता। अब जाओ यहा से, भविष्य में ऐसी कोई खुराफत की तो याद रखना।”

अब दबीलाल जी घबराए से रहने लग। सोचते—कामिनी तो सीधी साधी है। अब तक आश्वस्त थे। वही भी है, उनकी अपनी है। अब कविता बीच में आ गई थी चण्डिका-भी, कही वास्तव में तलाक हो गया तो कमाऊ बीवी हाथ में निकल जायेगी। घर के बड़े बुजुर्गों को बीच में डाल शीघ्रता में सुलह कर ली। कामिनी को घर लिव लाये। कविता का समाचार मिला, प्रसन्नता से दौडी गई, “बघाइ हो कामिनी, नई जिन्दगी मुबारक हो। आखिर तुमन सुनह कर ली।”

मुस्करा कर उत्तर दिया कामिनी ने “मैंने तो उपक्षिता के पद से त्यागपत्र दिया है बस।

□

बैसाखिया

पूनाराम कमाणी

तग सड़क पर उस वक्त आमने-सामने दो ट्रक आ जाने के कारण आवागमन ठप्प प्राय-ना हो गया था। ट्रफिक पुलिस वाला आवागमन को सुचारु बनाये रखने हेतु बार-बार सीटी बजा रहा था पर पास ही सब्जीमंडी से सब्जी व्यापारिया की ऊंची आवाज के तले कही दबकर रह जाती उसकी फुर फुर ।

ट्रक वहा से पास हा गये थे। अचानक बच्चे-बुड्डो का हुजूम-सा पुलिस थाने की तरफ आता-सा महसूस हुआ। पुलिस के चार जवाना की गिरफ्त मे आया वह मासूम सा बच्चा पुलिस के डण्डे की मार खा-खाकर घायल हा गया था। घुटने के नीचे लगी चाट के कारण बहुत तजी से खून बह रहा था। चारो तरफ मौत का सा आतक छा गया था। एक बच्चे की बरुण सिसकिया रह रहकर वातावरण मे तैर जाती पर हुजूम म सम्मिलित मभ्य बच्च । व ठहर ऊचे घरा के। उह क्या पता कि चोट वसी होती है और उसका प्रभाव क्या होता है? वे सब बच्चे को रोते देख तालिया बजा-बजाकर मजा लूट रह थे।

बच्चा बार-बार चिल्ला रहा था, गिडगिडा रहा था—“मुझे छोड दो साहब। मैने कौन सा बुरा काम कर दिया है ?” पर उस बेचार की काई सुन तब ना । जब भी वह रोता, पुलिस का जवान धीरे-से छुपकर उसकी पीठ ऊपर एक डण्डा जमा देता और यह दवाई पा बच्चा सहम जाता । अतत बच्चे को थाने आने की रस्म अदा करनी पडी। थान के अदर लातर पुलिस वाला ने बच्चे को, उस मासूम को तपती चौकी पर किसी निर्जीव वस्तु की भांनद पटक दिया। बच्चा जा रोने के लिए स्वतत्र न था मिफ कराह कर रह गया ।

बच्चे की यह दुगति देख हवलदार रमेश का दिल स्वय के प्रति खिन्नता से भर गया। उमन स्वय को धिक्कारा अपने आपको नियमित करते हुए उसने महसूस किया कि बच्चा याचक और प्यासी नजरें लिय उसी की तरफ ताक रहा है, रश्म की भीख माग रहा है । यह देख रमेश की आखो म आसू बह चले ।

हूँ। सिपाहियाँ को चाय नाश्ता करवा कर समझ रहें थे कि उगन चाय पिना कर ही सबको बस म कर रखा है। सबका व्यवहार तितना अच्छा है। स्कूल पहुँच ता हायो के तोन उड गय। दाना स्कूल स नदारद थी। शेष सब वही थी उपहास का पात्र ही बनना पन था उसे। वहा दाल न गली ता मोचा ठीक है, चीफ साह्य की रिश्तदार हैं, समझूंगा।

आफिम म शाम को जैसे ही पहुँचे, चीफ साह्य ने पूछा, “वहा थे दिन भर से?”

“जी पत्नी से मिलने गया था। वहा वो उनकी प्रधान है न, अपने आपको आपकी सम्बन्धी बता रही थी। उहान बिना वजह मुझे धान म बन्द करवा दिया था। बडो मुमीबत्त मे फम गया था। मुश्किल से छूट कर आया हूँ।”

चीफ साह्य हसकर बोले, “और तुमने कुछ नही किया था? अभी-अभी यहा से गई हैं दोनो।”

देवीलाल जी को सिर घुंजलात देख आगे बोले, “यदि वास्तव म बन्द करवा देती, तुम्हारी लिखित रिपोर्ट कर देती तो वहा तुम्हारी जमानत भी कौन करवाता। अब जाआ महा से, भविष्य म ऐसी कोई घुराफात की तो याद रखना।”

अब देवीलाल जी घबराए से रहने लग। सोचते—कामिनी ता सीधी-साधी है। अब तब आश्वस्त थे। वही भी है, उनकी अपनी है। अब कविता बीच मे आ गई थी चण्डिका-मी, कही वास्तव म तलाक हो गया तो कमाऊ बीवी हाथ म निरस्त जायगी। घर के बडे बुजुर्गों की बीच मे डाल शौघ्रता मे सुलह कर ली। कामिनी को घर लिवा लाय। कविता का समाचार मिला, प्रसन्नता म दौडी गई, “बघाई हो कामिनी, नई जिन्दगी मुबारक हा। आखिर तुमने सुलह कर ली।”

मुस्करा कर उत्तर दिया कामिनी ने, ‘मैन तो उपक्षिता क पद स त्यागपत्र दिया है बस।



वैसाखिया

पूनाराम कमाणी

तग सडक पर उस वक्त आमने-सामने दो ट्रक आ जाने के कारण आवागमन ठप्प प्राय-सा हो गया था। ट्रैफिक पुलिस वाला आवागमन को सुचारु बनाय रखने हेतु बार-बार मीटी बजा रहा था पर पास ही सब्जीमंडी से सब्जी व्यापारियों की ऊंची आवाज के तल कही दबकर रह जाती उसकी धुर धुर ।

ट्रक वहां मे पास ही गय थे। अचानक बच्चे बुड्ढो का हुजूम-सा पुलिस थाने की तरफ आना-सा महसूस हुआ। पुलिस के चार जवानों की गिरफ्त मे आया वह मामूम सा बच्चा पुलिस के डण्डे की मार खा खाकर घायल हो गया था। घुटने के नीचे लगी चोट के कारण बहुत तेजी से खून बह रहा था। चारों तरफ मौत का-सा आतक छा गया था। एक बच्चे की करुण सिसकिया रह-रहकर वातावरण म तर जाती पर हुजूम म सम्मिलित नभ्य बच्चे । वे ठहरे ऊचे घरो के। उह क्या पता कि चोट कसी होती है और उसका प्रभाव क्या होता है? वे सब बच्चे को रोत देख तालिया बजा-बजाकर मजा लूट रहे थे।

बच्चा बार-बार चिल्ला रहा था, गिडगिडा रहा था—“मुझे छोड दो साहब। मैने कौन-सा बुरा काम कर दिया है ?” पर उम बेचारों की कोई सुने तब ना । जब भी वह रोता, पुलिस का जवान धीरे-से छुपकर उसकी पीठ ऊपर एक डण्डा जमा देता और यह दवाई पा बच्चा सहम जाता । अतत बच्चे को थाने आने की रस्म अदा करनी पडी। थाने के अदर लाकर पुलिस वाला ने बच्चे को, उस मामूम को तपती चौकी पर किसी निर्जीव वस्तु की मानिद पटक दिया। बच्चा जा रोने के लिए स्वतंत्र न था सिफ कराह कर रह गया ।

बच्चे की यह दुर्गति देख हवलदार रमेश का दिल स्वय के प्रति खिन्नता से भर गया। उसने स्वय को धिक्कारा अपने आपको नियंत्रित करते हुए उसने महसूम किया कि बच्चा याचक और प्यासी नजरें लिय उसी की तरफ ताक रहा है, रहम की भीख माग रहा है । यह देख रमेश की आखा मे आसू बह चले ।

वह स्वयं को रोक नहीं सका और पुलिस स्वभाव के विपरीत लपकता हुआ बच्चे के पास पहुँचा। बच्चा हवलदार के कदमों के पास पड़ा, हवलदार के चेहरे की ओर ताकने लगा। उस भय था कि हवलदार के कदम उठकर उसके मासूम जिस्म को कुचल न दे।

“क्या बात है क्यों पीट रहे हो इसे ?” हवलदार गरजती आवाज में सिपाहियों की ओर देखते दहाड़ उठा।

“साहब, यह सब्जी वालों के फल चुराता है” सिपाही दबी हुई आवाज में बोला।

हवलदार का चेहरा तमतमान लगा। उपस्थित जन समुदाय को घूरकर हवलदार ने खिन्नतापूर्वक पूछा—“यहाँ सदाबरत बट रहा है क्या ? जाओ अपना काम करो।”

हवलदार की खुरदरी आवाज सुनकर सभी लोग धीरे धीरे वहाँ से खिसक गए। रमेश धीरे-से नीचे झुका और बच्चे को अपनी बलिष्ठ बांह में उठाकर अपने चैम्बर में घुस गया। सिपाही एक-दूसरे के मुँह ताकने लगे।

‘क्यों बट क्या बात थी ?’ हवलदार रमेश न पानी से भरा जग लडके को दिया।

‘भूखा था, साहब लडका पानी पी नहीं सका। घबराता हुआ ही बोल पाया।’

“घर में और कौन-कौन है ?”

“मा, बापू और दो छोटे भाई

‘तुम्हारे बापू क्या करते हैं ?’

‘कुछ नहीं साहब, मा चौका-बतन करती है, उन पसा की बापू दारू पी जाते हैं, हमें अक्सर मार ही सहनी पड़नी है खाना नहीं’ बच्चा कातर हो उठा था। हवलदार रमेश की आँखों के आगे धुधलका छा गया। उसे अपनी आँखों के जाग एक भूला बिमरा दृश्य फिर से स्पष्ट होता दिखलाई देने लगा।

रमेश अपने मा-बाप के साथ इसी कस्बे के जाटिया कुएँ के पास बनी अपनी गोबर पुत्ती झोपड़ी में रहता था। रमेश का पिता मुश्किल से परिवार का खर्च भर निकालने की स्थिति में था, फिर भी न जान क्या धुन थी कि वह रमेश को पढ़ाने के लिए उत्सुक था, न जाने कितने पापड़ उसने बले जोर रमेश को नवी वक्षा तक पढ़ा दिया। घर में सिर्फ तीन ही प्राणी थे। यद्यपि उनकी गरीबी की कहानी उनके तार-तार कपड़ों में साक्ष्यता बदन स्वयं ही कह देता था पर तिम पर भी व अपनी दयनाय स्थिति को लोगो की मखौल का शिकार नहीं बनने देना चाहते थे। रमेश के बापू का प्रधानत यही विचार था कि सुख-दुःख तो घिरते बिरत की छाया है जो जादमी के जीवन में आत-जात ही रहते हैं और इसी धारणा की

बसायी पर घर के अथ प्राणी सतोप धारण किये बढे थे ।

नवी कक्षा तक तो रमेश को उसके बापू ने जैसे-तैसे पढवा दिया पर परिस्थितियो के ज्वार के आगे अतत उनके भी घुटने टिक ही गय । कगाली मे आटा गीला वाली कहावत ता जैसे उही के लिए प्रचलित हुई थी । रमेश की मा को लकवा हो गया । मा को तो लकवा हुआ सो हुआ, स्वय उसकी पढाई को भी लकवा मार गया । वह अच्छी तरह परिचित था कि बगैर मँट्रिक किये नौकरी की आशा रखना आकाश कुसुभवत है और इसी कारण उसकी दिली तमना थी कि वह जैसे भी सम्भव हो सके, मँट्रिक तो कर ही डाल । पर पढाई जारी रख तो भी आखिर किस आधार पर । घर में दा वक्त की बजाय प्राय एक बार ही चूल्हा प्रज्वलित किया जाता है । मा की बीमारी न उनकी गरीबी के रहे सहे कपडे भी उतार डाल । अब अपनी लाज रमे तो कैसे ?

घर की आर्थिक स्थिति जोर कमर-तोड महगाई को मध्य-नजर रखत हुए उसके बापू ने उसको किसी छोटे मोटे काम पर भेजने का निर्णय ले लिया था । रमेश की मा उसे पढान की पथधर थी, पर पेट की ज्वाला का ताण्डव नृत्य होता देख वह भी मन मगोसकर रह जाती बेचारी ।

अपनी स्टडी जारी रखन बाबत रमेश अपने अतरंग मित्रो से भी मिला, पर वे पहल से ही हरी झण्डी लिए तैयार खडे थे । जैसे, सबने कोई-न कोई वहाना बना कर उसे या ही टरका दिया । यदि थोडे-बहुत पसा की जरूरत होती तो शायद कोई हा भी कर लेता पर यहा तो सवाल पूरे सौ रुपये का था । फीस माफी की अर्जी भी हवा के झौके से उडकर उसी की पाकिट में आ जमी थी । वैसे भी स्वाय बगैर कौन किसी की सहायता करता है और रमेश की तो ऐसी कोई हालत भी नहीं थी कि किसी को उससे कुछ आशा होती ।

चारो तरफ स घिरे होन के कारण रमेश के जेहन मे अच्छे और बुरे दोना प्रकार के विचार आन लगे । परिश्रम करने का विचार दुनिया की तपती अथ-व्यवस्था से टकराकर चूर चूर हो गया । समय कहा था कि वह सौ रुपया की मजदूरी करके फीस जमा करवा दे मजदूरी करते-करत यह तो क्या अगला साल भी निकल जायगा परिवार की मुश्किल के ज्ञावात से वो कब तक मुकाबला कर सकेगा उधार मागने पर उस देगा ही कौन ?

शाम का समय था । इस वक्त कस्त्रे के एकमात्र सिनेमा हॉल पर नई फिल्म को देखने को आतुर लोगो की भीड मची थी । इसी भीड के अदर रमेश भी शामिल हो चुका था । रमेश अनजान में ही सिनेमा हाल तक आया था । टिकट-खिडकी पर लोगो की खामी भीड थी । रमेश की नजरें बार-बार टिकट खिडकी के सहारात हरे-नीले-गुलाबी नोटो पर अटक अटक जाती । साथ-ही-साथ अपनी

के प्रति रोना भी आता ।

“तीन वाली बीस में—तीन वाली ” ब्लक में टिस्ट देने वाले की आवाज गूज रही थी । कई आलसी प्रवृत्ति के धनी उसकी तरफ लपक रहे थे । उनकी जेबों से नोट निकलकर ब्लैक करने वाले की पाकिट में जा रहे थे । रमेश मन ही मन ब्लैक करने वाले की पाकिट की तुलना अपनी जेब से करने लगा । नाट कैसे आते हैं देखते ही-देखते रमेश का हाथ उस मोटी तोद वाले बाबू की जेब पर गया और सौ भौंके दो-तीन नाट रमेश के हाथ में जा गए । बिना किसी प्रशिक्षण के काय करना कितना दुरूह होता है, यह रमेश को मालूम नहीं था । उसका नोट वाला हाथ न जान कितने हाथा की चोट खा रहा था । नोट इस धक्कम मुक्काम में जाने कहाँ चले गये ।

लोगों का हजूम थाने में पहुँच चुका था । रमेश स्वयं सभी पुलिस के हाथा बुरी तरह पिट चुका था । हगामा सुन हवलदार कौशिक बाहर आए । किसी स्वयंसेवी ने धक्का दिया । रमेश कौशिक कदमों के पास जाता गिरा । क्या बात है ? कौन है यह ?” हवलदार की कड़कदार आवाज गूजी । समाशाई पीछे खिसकने लगे । मोटी तोद वाला बाबू आगे आया ।

“साहब, इसने मेरे पाकिट स पैसे निकाले ”

“कहाँ हैं पैसे ?” हवलदार कौशिक उस मोटी तोद वाले बाबू को धूर धूरकर देखते हुए बोला । बाबू सहम गया ।

“तरे पास है छाकरे ?” कौशिक ने रमेश की तरफ आँखें निकालते हुए पूछा । पर रमेश तो हवलदार के कदमों पर गिरते ही अपने होश गवा चुका था । हवलदार ने तलाशी ली । कुछ भी नहीं था । हवलदार को गुस्सा आ गया । मोटी तोद वाले की तरफ देखते हुए हवलदार दहाड़ा—“बच्चे को पीटा पस इसके पास है ही नहीं फिर यहाँ क्यों लाय हो ? बोला ? निकलो यहाँ से, फालतू चले आते हैं, परशान करने ।” हवलदार की गरज सुनकर तोद वाले बाबू के साथ-साथ सभी समाशाई चले गये । उनके जाने के बाद कौशिक का ध्यान रमेश की तरफ गया । मिपाही से पानी मगवाकर पानी के छीटे रमेश के चेहरे पर मारे । रमेश ने मिचमिचाकर आँखें खोली । कौशिक ने उसके सिर पर हाथ फेरा । ‘अब कैसे हो बेटे ?’ कौशिक की आवाज में वात्सल्य झलक रहा था । मीठी आवाज से प्रभावित रमेश उठ बैठा ।

“साहब मैं चोर नहीं हूँ मैं पढ़ना चाहता हूँ मैं चोर ’ रमेश बुक्का फाड़कर रो पड़ा । कौशिक ने उसे मात्वंना दी ।

“अच्छा बेटे, तुझे मैं पढाऊँगा तुम्हें चोर नहीं मानेदार बनाऊँगा ।’ रमेश

फिर घर गया तब हवलदार कौशिक साथ ही था। रमेश के बापू से कहकर उसने रमेश को अपन घर रख लिया, पढाया और आज ?

रमेश को ऐसा लगा जैसे उसके सामने वह छोटा बच्चा नहीं एक और इमपक्टर बठा है। उसने उच्चे को चुनकर चूम लिया। बालक हतप्रभ रह गया। रमेश की बलिष्ठ बाह उसकी तरफ बढ रही थी, जैसे दो बसाधिया किसी अपग का ऊचा उठाकर चलने का सम्वल प्रदान कर रही हो। □

वे प्रति रोना भी आता ।

“तीन वाली बीस म—तीन वाली ” बन्क म टिन्ट देन वाल की आवाज गूज रही थी । कई आलसी प्रवृत्ति के घनी उसकी तरफ लपट रह थ । उनकी जेबा से नोट निकलकर बन्क करन वाल की पाकिट म जा रह थ । रमश मन ही मन बलक करन वाले की पाकिट की तुलना अपनी जेब स करन लगा । नोट कस आत है देखते-ही-देखत रमेश का हाथ उस मोटी तोद वाल बाबू की जेब पर गया और सौ मी के दो-तीन नाट रमेश के हाथ मे आ गए । बिना किसी प्रशिक्षण क काय करना कितना डुरूह होता है, यह रमश का मालूम नहीं था । उसका नाट वाला हाथ न जान कितने हाथा की चाट खा रहा था । नोट इस धक्कम-मुक्कम म न जाने कहा चले गय ।

लोगा का हुजूम घाने म पहुच चुका था । रमेश स्वय सेवी पुलिस के हाथो बुरी तरह पिट चुका था । हगामा सुन हवलदार कौशिक बाहर आए । किसी स्वय सेवी ने धक्का दिया । रमेश कौशिक कदमो के पास जाता गिरा । क्या बात है ? कौन है यह ?” हवलदार को कडकदार आवाज गूजी । तमाशाई पीछे खिसकने लगे । मोटी तोद वाला बाबू आगे आया ।

‘साहब, इसने मरे पाकिट स पैसे निकाले ’

“कहा है पसे ?” हवलदार कौशिक उस मोटी तोद वाले बाबू को धूर-धूरकर देखते हुए बोला । बाबू सहम गया ।

“तरे पास है, छोकरे ?” कौशिक न रमेश की तरफ जाखें निकालत हुए पूछा । पर रमेश तो हवलदार के कदमा पर गिरते ही अपने होश गवा चुका था । हवलदार ने तलाशी ली । कुछ भी नहीं था । हवलदार को गुस्सा आ गया । मोटी तोद वाले की तरफ देखते हुए हवलदार दहाडा—“बच्चे को पीटा पसे इसके पास है ही नहीं फिर यहा क्यों लाय हो ? बोलो ? निकलो यहा से, फालतू चले आते है, परशान करने ।’ हवलदार की गरज मुनकर तोद वाल बाबू के साथ-साथ सभी तमाशाई चले गये । उनके जाने के बाद कौशिक का ध्यान रमेश की तरफ गया । सिपाही से पानी मगवाकर पानी के छीटे रमेश के चेहरे पर मारे । रमेश ने मिचमिचाकर आखें खोली । कौशिक न उसके सिर पर हाथ फेरा । “अब कैसे हो बेटे ?” कौशिक की आवाज मे कात्सत्य झलक रहा था । मीठी आवाज से प्रभावित रमेश उठ बैठा ।

“साहब मैं चोर नहीं हू मैं पढ़ना चाहता हू मैं चोर ’ रमेश बुक्का काडकर रो पडा । कौशिक ने उसे सात्वना दी ।

“अच्छा बेटे, तुझे मैं पढाऊगा तुम्हें चोर नहीं घानेदार बनाऊगा ।’ रमश

फिर घर गया तब हवलदार कौशिक साथ ही था। रमेश के बापू से कहकर उसने रमेश का अपने घर रख लिया, पढाया और आज ?

रमेश को एसा लगा जैसे उसके सामने वह छोटा बच्चा नहीं एक और इसपक्वटर बठा है। उसने उच्चे को चुक्कर चूम लिया। बालक हतप्रभ रह गया। रमेश की बलिष्ठ बाहे उसकी तरफ बढ़ रही थी, जैसे दो बैसाखिया किसी अपग को ऊचा उठाकर चलने का सम्बल प्रदान कर रही हा। □

एक अदद पुत्र

घनराज पवार

घर के सभी छोटे बड़े सदस्य मेटरनिटी होम में इकट्ठे हो गए थे। सभी के आंतरिक हृदय में गहरी व्याकुलता और बेकरारी थी। उनकी आँखें थोड़ी थोड़ी देर बाद स्वतः ही कुछ जानने का ऊपर उठ जाती और उधर जब दरवाजा नहीं खुलता तो गहरी निराशा में एक दूसरे को देखकर चुप जाती।

महेश की माँ के मस्तिष्क में एक विचित्र तूफान वेग के साथ उमड़ घुमड़ रहा था। वह उन सभी से कहीं अधिक हैरान व परेशान थी। उनकी बीरान और खामोश आँखा में आशा निराशा के समाचार नाच रहे थे। दिल की एक एक धड़कन अदर का हाल जानने के लिए कितनी व्यग्र थी, साधारण जन को क्या ? शायद टेलिफनी का ज्ञान भी नहीं जान सकती थी।

महेश भी उत्कांठित और अनमना-मा उस कॉरीडोर में इधर उधर टहल रहा था। अब तन के जीवन में उमने कभी इतनी बेचनी और उलझन महसूस नहीं की थी जितनी आज कर रहा था। वह रहकर एक क्षणभंगुर उसके दिल में प्रस्फुटित होनी। फलस्वरूप अब उसके लिए समय और साहस धारण करना कठिन हो गया था। इस बार उसे पूरा विश्वास था, यकीन था अपने दिल पर।

महमा प्रसूतिगृह का दरवाजा खुला। एक सफेद वस्त्रधारी नम कापत हाथा से दरवाजा खोल बाहर आई। दिल में उस बदनसीब जल्बा के प्रति गहन हमदर्दी के भाव थे। वह विचलित भीड़ का छोटा-सा रत्ना उद्विग्नता से बढ़ चला नस की ओर। सभी के दिल की घड़न नुहार की धीरनी की तरह तज तज चल रही थी। सबसे आगे महेश व्यग्रता में लपक कर नस के समीप पहुँच गया और सासा के स्पर्शन पर काबू पाते हुए कापन स्वर में पूछा, 'क्या हुआ मिस्टर ?'

नस ने ठण्डी आह भरकर अत्यन्त ही महानुभूतिपूर्ण स्वर में कहा, "मुझे अफसोस है, इस बार भी आप पुत्र में वंचित ।" कहते-कहते वह यथापक चुप हो गई।

सभी स्तब्ध व अवाग् रह गये। अजीब मुदनी उन चेहरो पर पुत गई। एक धुधली आशा थी, वह भी अघेर म बिलीन हो गयी। उह अपनी धमनियो म चलन वाला रक्त सद होता महसूस हुआ।

मा को लगा, नस का जवाब सुनने से पहले बहू मर क्यो न गई ?

उसके मन मे बहू के प्रति नफरत क अकुर ने जडे और गहरी कर दी। अतर का दद फिर हरा हो गया। उस मालूम होता कि अतत नस द्वारा एसा ही मन-हूस समाचार सुनने को मिलगा तो शायद वह डाक्टर से कुमनणा कर बहू को प्रसूतिगह मे ही मार डालने की साजिश रच डालती।

इस वार क प्रसव मे बेबस गीता की किस्मत दाव पर लगी हुई थी। जिसे वह हार चुकी थी। हजारों रुपये उस पर खच हो चुके थे। जादू टाना, इष्ट देव के यज्ञ और तीथ यात्राआ के अतिरिक्त कई मशहूर डाक्टरा स उसका इलाज हो चुका था, फिर भी वह अपन परिवार को पुत्र न दे सकी। इतना ही क्यो उसकी स्वय की बुझी हुई निराश आखा म आशा क दीप टिमटिमाने लगे थे। लेकिन होनहार को भला कौन टाल सकता है ? होता वही है जो भाग्य को मजूर होता है। इन दम दिना म उसे प्रसूतिगह की गद्देदार शैया काटे बनकर चुभती रही। रोटी का एव कौर भी हलक से नीचे न उतरा। जब भी वह इस पाचवी मासूम पुत्री को देखती, आखा म विपाद क अश्रु सिलमिलाने लगत। मन अपार वेदना और त्रासदी मे भर उठता। दिल की पीडा और अधिक् गहराती जाती। वह इन दिनो सुखकर पीली पड गई।

आज पूरे दस दिन बाद महश गीता को पाचवी अबोध बच्ची के साथ रिक्शे मे घर ला रहा था। दोना के चेहरो पर मौन स्तब्धता छाई हुई थी। अनायास गीता के मस्तिष्क म पिछला जीवन साकार हो उठा। मरुश ! गीता का पति। करीब बारह बष पूव गीता ने महश के सग पवित्र अग्नि के फेरे लिए थे। वह गीता को अपनी आखा म बसाये रखता। दिन भर घर से बाहर निकलन का नाम न लेता। यार दोस्त उसे ईद का चाद बहुर पुकारते थे। उसरी सास तो जब कभी पास-पड़ोस की औरतो मे बैठनी तो बहू के सदाचार और मुदरता के दखान बग्त न अघाती थी। बहू की शालीनता और बुद्धि की प्रशंसा के पुल बाध देती। महश भी अपने यार दोस्तो मे उसक रूप गुण की बडाइ करत न थकता था। उन दिनो वह यही सोचती कि बचपन के सजोये मतरगी सपन साकार हो उठे हैं। उसके हाठो पर थिरकने वाली सदावहार मुस्कान नाच उठती। लगता जैसे खुशिया के उपवन मे हसते-बूदत खुशियो के फूल चुन-चुनकर थोली भर ली हा। समुगल म रहत उम कभी भी जभावा की अनुभूति नही हुई। लइमी की अमीम वृषा से घर म वे मभी वस्तुए मौजूद थी जिमसे उमका जीवन एश्वय पूण और सम्पन्नता से गुजर जाय। अब व दिन जब भी उसके मस्तिष्क के थराखा से झाकत

हैं, तो कलेजे में एग हूब-भाी उठ जाती है। उन दिना की मधुग् स्मतिपा अदर-ही अदर उस तडपा दती। आज वह इमी घर में उपशित प्रताडित और तिरस्कृत जीवन जी रही है। सभी उम हिवारत में दग्गत हैं, क्योंकि वह इम परिवार को पुत्रिया ही दे सकी, पुत्र रत्न न द सकी।

रिक्शा घर के सामने एक झटने से आगर एक गया और गीता के चिन्तन की गहन तडा को पूणविराम लग गया। महेश अयमनस्व-भा विराया चुनार गीता का उपशित व उदाम नजरा से देख घर के अदर बढ गया। गीता निराश दष्टि में अपा मुहाग को जात दखती रह गई।

घर की दहलीज पर पैर पडत ही सभी न उसकी ओर इम प्रकार दखा जस कोई फटेहाल भियारिन द्वार पर आ गई हो, जिसे देखनर घूणा में सभी ने नाक-भाी सिकोड मुह फेर लिया हो। किसी के दिल में उस मासूम प्यारी गुडिया-मी बच्ची को विहगम दष्टि में भी देखने की चाहत व जिनामा जागत न हो सकी। यह उसके लिए एक गहरा आघात था। उसके दिल में दद की जो फाम थी, अन्तमन में चुभती चली गई।

भारतीय परम्परानुसार गीता आग बढकर साम के पाव छून लगी ता। माम न दुर्भावना और घूणा से मुह फेर लिया। मास न उसे जलती आखा में देखते हुए परे धकेल कर व्यग्य भरे शब्दों में बहा, "तुम जैसी बहू मेर पताहू का अरमान कभी पूण नहीं कर सकोगी। क्या सोचनर पाव लगती हो?"

मास के शब्दों ने गीता के कानों में गम गम लावा भर दिया। वह उपर से नीचे तक तडप उठी। इम समय वह अपन का दुनिया भर की स्त्रिया में सबसे अधिव असहाय और व्यथित महसूस कर रही थी।

गीता को घर की दीवारों साप बनार डसने को दौड रही थी। सारे घर में अकेली। कोई भी तो उसका नहीं। अपने, पराये बन गए। महेश दस बज आफिस जाता और प्राय देरी से घर लौटता था। वह स्टेनो के पद पर था। इससे पूव महेश उम अपन हृदय में बिठाए रखता था। जबकि मा, हमेशा बहू के विरुद्ध उमे उक्ताती रहती। पर मा की उक्साहट का उस पर कोई अमर नहीं हुआ। लेकिन इस बार वह गीता से अधिव मेल-जाल नहीं रखता था। यही मलान और तडप गीता को सालती रहती था। नारी जिसे दकता मानती है, उस पति का व्यवहार भी उमके दिल में तीर चलाता जाता था। गीता को एक विचित्र झुझलाहट और रिक्तता ने आ घेरा।

गीता अपनी सास, ननद, पति सभी को प्रमन रखना चाहती, उनका दिल जीतना चाहती थी, क्योंकि अब वह स्वयं अपने अस्तित्व से निराश हो चुकी थी। उसकी वीरान आखा में सहानुभूति और संवेदना की तीव्र भूख थी।

वह घर को झाड-बुहार कर स्वच्छ रखती, बेतरतीब वस्तुआ को व्यवस्थित

रख ड्राइंग रूम करीब स सजाती, गिडगियो के पर्दे व चालरे जरा पी मरी हो जान पर धुल पर्ने म बदल दती । पर उसके इम दिल घालरर वाम करन की ओर कोई जाख उठा कर भी नही दयता था । जायकेदार जीर स्वादिष्ट भोजन बनाने पर भी साम व ननद उसम मीन मख अवश्य निवाल दती । दिन भर जन बरत और सतत मशीन की तरह धिना धके-दारे घर का सम्पूर्ण काय करती, फिर भी एक अजीब व्यवहार था ववम गीता के साथ । तब उसका कोमल हृदय अबुलाहट और बदहवासी से भर उठता । उन सभी के बीच उपक्षा और हिंकारत की अश्य दीवार दिन-ब-दिन ऊपर उठती जाती थी ।

गीता की नही मुन्नी मासूम पुत्रिया जब हसती-खेलती दादी के पास चली जाती तो रोज रोज की डाट डपट और उपेक्षित व्यवहार से सहम जाती । सभी पुत्रिया नित प्रतिदिन की वीरानिया और घुटन के वातावरण मे मुर्झा गई थी । गीता यह सब देख नारी की विडम्बना पर एकांत म आठ आठ जासू बहा देती ।

उस दिन गीता ऊपर म कमर म खिडकी के समीप बठी नवजात बच्ची को स्तनपान करा रही थी जहा म नीचे डयीडी की वाते स्पष्ट सुनी जा सकनी थी । उसक बाना म पडोसिन व नाम का वार्तालाप सुनाई दिया । वह आश्चर्यचकित और विस्मित-सी बठी मुनन लगी ।

सास ने एक लम्बी व ठण्डी जाह भरत हुए कहा, “मैंन अपने हीर जैसे बेटे को वाय सीप दी । मरा ही भाग्य फूटा हुआ था । इससे तो अच्छा था, महेश कुआरा ही रहता । मेरे स्वर्गीय पति की इस वेशुमार धन दौलत को भोगने वाला और उनका नाम लेने वाला इस दुनिया म कोई न हागा ।

पडोसिन माजी के प्रच्छन्न दद की अनुभूति से परिचित थी । उसन सात्वना के शब्दा मे कहा, “एसा अशुभ मत बोलो, महेश की मा ! इसन तुम्ह पाच पुत्रिया दी है, फिर यह बाझ कसी ! भगवान ने चाहा तो इस घर म भी हसता-खेलता पुत्र अवश्य दौडेगा ।

और सास मडर उठी । जाखा स शोल बरसाती व्यग्य भरी वाणी म कहा, “इस कम्बधत के पेट म पुत्र की जड ही नही, जिस पर फल लगेंग । यह तो मरे वधा को मिटाकर ही दम लगी ।” उसके स्वर मे तत्वो व कडवाहट थी ।

‘तो क्या हुआ । तुम कोई लडका गोद ले लना ।’ पडोसिन के स्वर म आजिजी का भाव था ।

“गोद का बेटा परायाहोता है, जो हमारे धटे की तरह हमारी साल-सम्भाल नही कर सकेगा । मैं तो केवल मरे बेट के खून स जमा पुत्र ही चाहती हू, जिसम अपनत्व व आत्मीयता होगी ।’

“ऐमे दिल छोटा न करो । एक दिन इस घर म पौत्र अवश्य जाएगा । मेरा विश्वास झूठा नही हो सक्ता ।’

सास ने कुछ साचने हुए फिर से एक लम्बी आह भरत हुए कहा, “जब तो शीघ्र ही इस घर में एक नयी बहू आएगी। बात चल रही है और रिश्ता पक्का होने ही वाला है। नई बहू अपनी कोख में हमारा उत्तराधिकारी ही जनेगी। यह वास्तव कदापि नहीं।”

मास का आखिरी वाक्य एक विपले नश्वर व समान उसके दिल में चुभता चला गया—“अब तो शीघ्र ही इस घर में एक नई बहू आएगी। यह वाक्य उसके जेहन में एक जबदस्त बवण्डर मचा रहा था। उसकी साच की बलिया में वह दृश्य उत्पन्न हो गया जिसमें सौत को लाने से उसकी मान प्रतिष्ठा को धक्का लगाने वाला था। सौत उसकी पुत्रियों पर न जाने क्या-क्या जुम डापेगी। नई बहू बन जाएगी मानकिन और वह उसकी महारिन। इतना ही क्यों, वह हम मा-बेटियों को ईप्या व नफरत की दृष्टि से देखेगी। इस पुण्य प्रधान समाज में किसी स्त्री के पुत्र पैदा होता है तो इसका श्रेय जाता है पुरुष के सिर पर। जब पुत्रियों का जन्म होता है, तो इसका दोष मढ़ा जाता है नारी पर। बाहरे समाज की मायता। विधि की विडम्बना का कोई अर्थ नहीं। अब आग पता नहीं उसे किस प्रकार के घुरे दिन इस नरक में और बिताने होंगे। विपले जुमले और तान की भाषा सुनते-सुनते अदर-ही-अदर गौली लकड़ी की तरह सुलगना होगा। उसके दिल का पीडा जाखा की राह अश्रुधार बन बरसत लगी।

गमिया के दिन होने से गीता और महेश ऊपर के कमरे में माते थे। उन दोनों की मसहरी पास-पास ही थी, पर लगना था वे बहुत दूर दूर थे। गीता का मस्तिष्क चिन्तन और व्यथा से जब पूर्ण रूप से बोझिल हो उठा तो उसने महेश की ओर मुखातिब होकर कहा, “प्राणनाथ! सुना है आप दूसरा विवाह रचा रहे हैं।”

“मैं दूसरा विवाह नहीं चाहता, लेकिन मा ही मुझे इसके लिए मजबूर कर रही है।” वह थोड़ी देर शांत रह कर फिर कहता है, “मेरे दूसरे विवाह पर तुम्हें कुछ तो न होगा।”

“पति की खुशी ही पत्नी का धर्म है। आप दूसरे विवाह से खुश हैं तो मैं आप को खुश ही देखना चाहती हूँ। मुझे आप ही का सहारा है।” गीता के हाँका पर एक उदास-सी मुस्कराहट तर गई। फिर उसने दोनों जबड़े मजबूती से भीच लिए मानो वह कोई भयकर पीडा को बरबस पीने का उपक्रम कर रही हो। सहसा उसे एक पम्फलेट का ख्याल आया, जिस सध्या व समय उसकी पटौमिन ने उसे दिया था। उस पर देश की मशहूर लेडी डॉक्टर श्रीमती भागव द्वारा निराश स्त्रियाँ के लिए पुत्र प्राप्ति का मजमून था। मली-बूचा में उस लडा डॉक्टर के हाथों व जादू की चर्चा जोगे पर थी। उनका इलाज सैंकडों स्त्रियाँ ने पुत्रों को जन्म दिया था। सुनकर उसकी आया व गहराये अधकार में आशा की घुघली ज्योति टिमटिमान लगी थी। उसने महेश से डॉक्टर भागव का जिन

हिचकिचाते हुए किया, क्योंकि इसके पूर्व भी डॉक्टरों के चक्कर में हज़ारा रुपये फूक दिये थे।

महेश ने एक लम्बी ठण्डी आह भर निराशा भरे शब्दों में कहा, “अवश्य जाच कराइये। मैं तयार हूँ।”

दूसरे दिन वे दोनों डाक्टर भागव के पास पहुँचकर सभी पिछली रिपोर्टों दिखाई जिनका अब तक इलाज चला था। डाक्टर भागव न देर तक उन रिपोर्टों का अध्ययन किया फिर उहाने महेश को एक कमरे में ले जाकर ध्यानपूर्वक जाच पड़ताल कर दवा लिख दी। उधर श्रीमती भागव भी गीता को भीतर ले जाकर आवश्यक चक् अप किया। सम्पूर्ण जाच पड़ताल कर श्रीमान व श्रीमती भागव ने आपस में सलाह मशविरा कर दवाइया लिख दी। गीता को पूर्ण विश्वास और ढाढस दिलाते हुए श्रीमती भागव ने कहा, “अब तक जिन डाक्टरों ने तुम्हारी जाच पड़ताल की है, उन्होंने ध्यानपूर्वक मज नहीं देखा। अब तुम सावधानीपूर्वक समय पर दवाइया लेती रहोगी तो भगवान तुम्हें अवश्य पुत्र देगा।”

“सच! दवाई लेते हैं तो किसी प्रकार की लापरवाही नहीं बरतूंगी।” उत्साह से उसके मुँह से निकला था। उसके निराश नेत्रों की पुतलिया में खुशी की एक अजीब आभा उत्पन्न होने लगी। मानो रंगिस्तान की मग मरीचिका में बहुत भटकने के बाद उस पानी की एक झलक मात्र दूर कहीं दिखाई दे गयी हो।

घर आकर उहाने नियमानुसार दवाइया खाना प्रारम्भ कर दिया। लेकिन माजी की प्रताड़ना और ताने के तीर उसे भीतर से तोड़कर रख देते। और ऐसा ही बदतर व्यवहार नन्द का उमके साथ था। फिर भी वह मूक और उदास बनी टूटी जिदगी को बल लगाकर इस आस में खींच रही थी कि वह इस बार श्रीमती भागव व इलाज से माजी को एक जदद उत्तराधिकारी अवश्य देगी।

गीता की छठी सन्तान के प्रसव के दिन ज्या ज्या समीप आ रहे थे, उसकी बेचनी और व्यग्रता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। मन रह-रहकर अज्ञात भय से काप उठता था। इस बार के प्रसव में पुत्र न दे सकी तो सभी उसके साथ न जाने और क्या बदतर व्यवहार करे। उसने दृढ़ निश्चय कर लिया कि इस बार का प्रसव नैहर में ही हूँ सकेगा और वह अपने पिता व घर लखनऊ चली गयी।

इधर माजी निराशा के अथाह सागर में बनी न उभरी। वह तो हमेशा यही बात कहती—“इस बहू से मैं कुल का नाम नहीं बनाय रख सकती। मैं तो अब मत्श की दूसरी शादी अवश्य रचाऊंगी।” पौत्र को खेलते देखने की हसरत और अरमान ने उहें जून की सीमा तक पहुँचा दिया था। महेश के विवाह के लिए उहोंने अपने सगे-सम्बन्धियों में दौड़ धूप औरतज कर दी। एक रिश्ता तय होने जा रहा था, जिन लटकी के पिता की कहीं दूर नौबरी होने की वजह से व आ नहीं पा रहे थे। ये कानपुर वाले लालाजी थे, जिन्हें अपने सरकारी दौरे की व्यस्तता

और किसी अपरिहाय कारण से आगे में देरी हो रही थी। इनमें कई बार पत्र-व्यवहार हो चुके थे। माजी बगी बेसत्री और अधीरता में दवा इतजार कर रही थी।

आदिर लगभग तीन माह बाद लालाजी इतजार की घड़िया समाप्त कर माजी के समक्ष प्रकट हुए। माजी न बड़ी गमजाशी में उनका स्वागत व छातिर-तकज्जो की। उनसे मान-सम्मान में कहीं कोई कमी न रह। उहान समय हर व्यवस्था का जायजा लिया। माजी के मन में यह प्रयत्न चाहत थी कि किसी प्रकार यह रिश्ता तय हो जाये और पौत्र का दवाव सागर हो जाये।

माजी ने समय और मजौदगी से खुशामद भर स्वर में लालाजी से कहा, "मेरा पुत्र हीरे के समान लाज्जा में एव है। स्वभाव और रूप गुण में उसका मानी नहीं। आपकी बेटी इस घर में राज करेगी। हमारे पाम भगवान का दिया हुआ सप बुछ है। हम तो केवल सौम्य और शालीनता से ओत प्राप्त एक बहू चाहिए जो मेरे पौत्र के सपन को मृत रूप में द मक।

लालाजी गरीब व्यक्ति थे। वे पुत्री के रिश्ते के लिए कई स्थान पर घूम आये थे। हर जगह उह दहज का दानव अपनी विनगन अवस्था में खडा मिला था। और दमी दहज की कमी से उनकी पुत्री ने अछाडभवा चप पार कर लिया था। उहोंने मन-ही मन सोचा कि चलो यहा दहज की बचत तो हो ही जाएगी। अयत्र दहज दना पड़ेगा। आज के इस महगाई के युग में पचास हजार का दहज जुटा पाना हिमालय पर आरोहण के मदर्श है। भरा-पूरा और सम्पन्न घर है, नि सदेह पुत्री यहा मौज मस्ती में रहेगी। इतना ही नहीं, इस घर में जितना मान-सम्मान और प्रतिष्ठा उमकी पुत्री की होगी, उतनी पूव विवाहिता की नहीं। रहा महश की उम्र का सवाल, ता इसमें भी दोनों में कोई खास फक नहीं। मगर दूसरे ही पल विचार आया कि पूव विवाहिता बहू का तलाक दिलवा दिया जाये तो उनकी पुत्री का जीवन सुखमय और उल्लासपूर्ण व्यतीत हो सकेगा। इस समय वे जमा चाह्य माजी कर देगी।

लालाजी ने अपना आत्त प्रकट करते हुए कहा, "हमें यह रिश्ता मजूर है। मगनी का राह-रस्म आज ही अभी इस वकत हो जाय लेकिन ।' कहते हुए वे बुछ मकु राये।

"आप नि सकाच अपनी बात कहिए। हम अभी या बाद में भी दहज की माग व भी नहीं करेंगे।' माजी ने लालाजी की हिचकिचाहट और घबराहट का दूसरा ही अय लगाने हुए कहा।

लालाजी साच रह थे कि वे अपनी मन की बात कमे कहें। दरअसन तलाक की बात कहने पर वे स्वयं को सकुचित और लज्जित अनुभव कर रह थे। एक विभिन्न कशमकश में म गुजर रह थे वे इस समय।

माजी लालाजी के चेहर और सम्पूर्ण अस्तित्व को एकटक बड़े गौर से निहार रही थी। सोच रही थी—वे अदर-ही अदर किसी बात के लिए छटपटा रह हैं। कोई न-कोई ऐसा प्रसंग अवश्य है जिसे वे कह नहीं पा रहे हैं। उनके मस्तिष्क में एक विचार कौंधा—लालाजी को विवाह के लिए रूप्यो की आवश्यकता होगी इसीलिए वे बात करते हुए सकोच कर रहे हैं।

माजी ने तुरन्त कहा, 'आपको विवाह के लिए रूप्यो की जरूरत हो तो मैं आपको बीस हजार रूपय दे देती हूँ। जिन्हें कभी भी लौटाने की आवश्यकता नहीं। मगर भगनी का दस्तूर आज ही हो जाना चाहिए।'

अब लालाजी ने पुत्री के सुखी भविष्य के लिए अपना मन कड़ा कर लिया। उन्होंने कहा, 'मेरा मतलब रूपय नहीं। मैं चाहता हूँ उस पूर्व विवाहिता को तलाक दे दी जाए ताकि मेरी पुत्री का जीवन आनन्द और प्रसन्नता से गुजर सके।' कहकर उन्होंने माजी की तरफ देखा।

माजी चिर बेजारी और झुझलाहट से भलाई-बुराई और नीति-अनीति की सभी बातें भूल गयी थी। पौत्र की हसरत और चाहत ने उन्हें अधा बना दिया था। उन्होंने तुरन्त कहा, "मैं आज ही वकील से मिलकर ।

खट खट खट । दरवाजे पर दस्तक हुई। माजी ने उधर देखा—महेश दूमरे कमरे में था। उसने आगे बढ़कर दरवाजा खोला। बाहर पोस्टमैन हाथ में टेलीग्राम लिए खड़ा था। महेश ने चौंकर टेलीग्राम लिया और उत्कण्ठित व कौतूहल-वश आख उस पर गड़ा दी। लिखा था 'सन बोन कम सून'। प्रेपक के स्थान पर उसके श्वनुर का नाम अंकित था। पढ़कर महेश खुशी से उछल पड़ा। उसका रोया-रोया खिल उठा। लगा जैसे मुरझाये हुए पौधे को पर्याप्त खाद व पानी मिल गया हो और फिर से लहलहा उठा हो। प्रसन्नता और हसी के मार उसके मुह से शब्द नहीं फूट रहे थे। वह उछल-कूद मचाता माजी के पास गया और मुस्कराते हुए कहा, "मम्मी तुम्हारा पौत्र आ चुका है।" सुनकर माजी के मुह से खुशी भरी चीख निकल गयी। वीरान और मायूस चेहरे पर ताजे फूल खिल आय। लगा जैसे जल विन मछली को पानी का अयाह समुद्र मिल गया हो। तब तक नन्द भी महेश के पाम आकर खड़ी हो गयी। टेलीग्राम की तहरीर पढ़त ही कुछ क्षण विस्मित व अवाक-सी रहने के बाद माजी की तरह ही उसके चेहरे पर खुशिया का सँलाव उमड़ पड़ा।

पास ही बठे लालाजी को तो लगा जैसे किसी ने उनको जोरदार एक धूसा मारकर अतिशय भीड़ वाले चौराहे पर नगा कर दिया हो। पल भर पहले वे बहुत खुश थे, अब पानी-पानी होकर अपने-आप में सिमट सिबुड़े बठे थे।

माजी के खुशी के बोहराम ने पूरे घर को सिर पर उठा लिया था। वे खुशी की अतिरक्त म चिल्लाने लगी, 'मेरे बुल के सितारे को भगवान ने भेज दिया है।

अब मेरे वंश का नाम कभी समाप्त न होगा। अरे महेश सुधा! जल्दी बाजार से पचास किलो लड्डू लाओ। अरे सुना तुम सबन। मोहल्ले का कोई घर एसा न रह, जहा लड्डू वितरण न हो। ” और उहान पडोसिया को यह शुभ समाचार देन के लिए उचक-उचककर एक घर से दूसरे घर तक दौड लगानी प्रारम्भ कर दी।

माजी का भरतनाट्यम और कथक देख लालाजी वहा मे इस प्रकार गायब हो गए जैसे गध के सिर से सींग।

माजी गली से गुजरने वाले प्रत्येक व्यक्ति को बुला बुलाकर लड्डू बाट रही थी। साथ ही बहू की प्रणसा भी कर रही थी। पास पडोसियो ने देखा कल तक तो उस बहू फूटी जाख नही सुहाती थी, और आज उमी बहू का बहिसाब गुणगान गाया जा रहा है।

माजी हप और उत्लास म बाजार गया। और एक खूबमूरत बनारसी साडी बहू के लिए और पौन के लिए ढेर सारे खिलौने, कपडे, मिठाइया खरीद लायी। दूसर दिन महेश और माजी मन मे असीम उत्साह और खुशिया लिए गीता के मायके लखनऊ रवाना हो गये। □

अनुत्तरित प्रश्न

रामनिवास शर्मा

रिक् !

रिक् एक समस्या है।

इस समस्या का न जादि है और न अत।

समाधान ?

समाधान एक समस्या है।

यह बालक—

एक मासूम चेहरा, समस्या और समाधान के अधबीच में अपने अस्तित्व का आधार खोजता है। यह आधार भी अस्तित्व को स्वीकार करता हुआ नकारता है। समाज इस चेतन समस्या को जवचेतन के रूप में देखता है और समाधान के लिए भाग्य के भरोसे पर छाड़ देता है। परिवरिश की जिम्मेदारी, विशाल हृदय के नाम पर छिटकाकर स्वयं सभी जिम्मेदारियाँ स आख भीचन का अभिनय करता है। सात्वता के शब्द सहज भाव स कह देता है। परंतु अपन को निलेप रखते हुए एक महान जिम्मेदारी को हसकर उडा देना चाहता है। यह समाज की विडम्बना है या भाग्य की? इस विडम्बना में उलझा है एक मासूम, एक अतजान, अबोध अव्यक्त चेहरा।

यह ससार कितना विषम है। व्यवहार के धरातल पर हर बात को सोचता है परन्तु अपनी स्वायपरता को कही भी नजर-अंदाज नहीं करता है। हर बात को, नाते रिश्ते को उसी धरातल पर देखता है। वतमान को आख खोलकर देखता है। भूत के प्रति चेतन है और अविष्य को उसी आधार पर जागरूकता से देखता है। कही डुराव नहीं। एक भ्रम को पालता है, पापण करता है। सबको सोचने को, समझने को मजबूर करता है और स्वयं निलिप्त होकर सबका मूल्यांकन करता है। वहीं भूल तो नहीं है। सब सहज है। सामान्य है।

असह्य वेदना।

एक गहरी पीडा ।

कई महीना तक ।

एक भार, चतन भार को पट म लिए उठना-बठना, घाना पीना, साना जीवन के सभी वाय नियमग्रह होकर करना ।

जीवन और मौन क बीच म दा प्राणा का लहर जूसना । परिवार की मद् भावना अपना रा गह एक गय भाग पर बज्ज की अनवगत रूप स प्रेरणा दता रहता है । दुश्चिन्ता जा म घिरकर अपने को तिल तिलकर जलाना और अनजान-अनदस प्राणी का पोषण करना, कितनी विडम्बना से करा है ? इसमें भी एक अभिनव मुत्र प्राप्त करना, यह कितना ध्रमपूण छलावा है । यह सब होत हुए भी एक गहरी बदना जा अवणनीय ह उसका सहत हुए इस ससार म एक नवीन प्राणी का जन्म दना स्वय का मृत्यु के मुख म जाकर वापस लाना, लौटन क बराबर है या मैं कहूँ, मृत्यु के फाटक पर दस्तक देकर शीघ्रता स वापस जाना है । दरी की, तो मृत्यु का आलिगन है । समय पर मुड गये, तो जीवन का चरण है ।

सारा परिवार फूल उठना है, नया जीवन पान पर खुशी हा उठती ह । बधाइयो का एक लम्बा ताना बध जाता है । पग भारी हानि म लहर प्रभव करने तक की मारा विपदाएँ खून क नाले म बह जाती है । चेहरे पर अभिट मुर्दानगी हात हुए भी एक जात्मसत्ताप की छामा होती है ।

बासी की घाली बजती है । नग मागा जाता है दिया जाता है ।

क्या यह सब भुलाया जा सकता है ? विस्मृत किया जा सकता है ?

नहीं नहीं । तो फिर ?

कितना अजीब प्रश्न है । सिर्फ यह प्रश्न ही नहीं है ? प्रश्ना की एक लम्बी कतार ह । जिसम प्रश्ना म से प्रश्ना की एक लम्बी झड़ी है, जिसम एक प्रश्न का हल निकलता है और अनेक अनुत्तरित प्रश्न खडे हो जान है ।

क्या इन अनुत्तरित प्रश्ना का एक उत्तर भर पास है ?

नहीं । नहीं ।

परिवार क पास है ?

नहीं । नहीं ।

समाज क पाम है ?

नहीं । नहीं ।

तो फिर इन प्रश्ना का उत्तर किसम पूछू ?

य प्रश्न इसी प्रकार मरे चारा और झझावात के रूप म वर्तुलाकार घूमत रहेंगे और मुझे एक धनीभूत पीडा में ले जाकर छाड देंगे, जहा मैं गहन अघवार म भटककर अपने दुर्भाग्य का पकडकर पुन छोडकर भटकती रहूंगी ।

क्या मैं इसी प्रकार चित्त ध्रम हाकर भटकती रहूंगी या मुझे काड रास्ता

मिलेगा ।

यह जीवन की विडम्बना है या कि भाग्य की, या इन दोनों के बीच एक महती समझौते की प्रतिनिध्या है या प्रकृति का विवृत रूप ?

मैं इन सबसे मुक्त होना चाहती हूँ । स्वतन्त्र होना चाहती हूँ । मैं अब और भ्रमपूर्ण स्थिति में जीना नहीं चाहती ।

मेरी इच्छा है एक सपाट सरल माग मिले, जिस पर मैं जीवनपर्यन्त आगे बढ़ती जाऊँ । बाधा न हो, शूल न हो ।

क्या जीवन इतनी सरल सपाट पगडंडी-सा हो सकता है ? नहीं-नहीं । यह कोरी कल्पना है । एक मीठी कल्पना है । जीने का सहारा है, परन्तु यह सहारा आधारहीन है । दिवास्वप्न है । जीवन विपमताओं में भरी एक मजूपा है । सुख-दुःख की कई करवटा में भरा जीवन है । कितना अजीब है । कब क्या हो जाए, कुछ पता ही नहीं चलता । फिर भी एक जास्था है, विश्वास है । उसके सहारे चलना पड़ता है । झेलना पड़ता है । चलना भी कितना लम्बा ? कुछ पता ही नहीं चलता । चरेवति चरेवति । चलते रहो, चलते रहो ।

इस चलने का न तो अंत है और न विश्राम ।

विश्राम ?

विश्राम तो जीवन में एक बार आएगा ।

जब न तो कोई जिज्ञासा रहेगी और न आशा । सबका अंतिम संस्कार होगा । परिष्कार होगा ।

क्या फिर नय जीवन की गुरुजात होगी ?

या चिरशान्ति । अनन्तकाल की शान्ति । मौत की भयावह शान्ति । चुप्पी की शान्ति । यह सब भ्रम है । मिथ्या है । मिथ्या विश्राम है । जघी जास्था है । जीवन का हम इसी प्रकार चलता रहेंगे ।

नदी के जल प्रवाह की तरह । कभी धारा तीव्र होगी, कभी क्षीण । परन्तु अविरल चलती रहेगी । चलती रहेगी ।

क्या वास्तव में मरा यह भ्रम है, भ्रम की छाया है या इससे परे भी कुछ कुछ है ?

सत्य है । चाह सत्य हो न हो परन्तु सत्य की जिज्ञासा तो है ही ।

फिर क्या न इसी का ही सत्य मान लिया जाए ?

नहीं । सत्य माना नहीं जाता । समझा जाता है ।

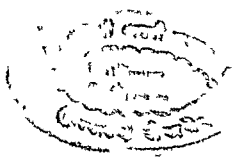
यह समझना ही बड़ा मुश्किल है । इसे तोला नहीं जाता । विश्वास किया जाता है । विश्राम भी जघी । कोई प्रश्न पूछा नहीं जाता । समझा कम जाता है, सुना जाता है ।

यही तो एक समस्या है । समझना मरल है परन्तु

क्या मुझे इसी अर्धी आस्था और विश्वास के अघर-बम्ब म झूतना हागा या इगका कोई सही रास्ता निकनगा ? दर-दर की ठोकर पाकर सारा जीवन कीचड म विलबिलात मीडे की तरह गुजारना पडेंगा या आत्मगौरव स घडी होकर एक सच्चे इंसान की तरह ? सच्चाइ और इंसान म कितना भ्रम है ? इमम वाई तुफ नही बना भेद है । विघ्नम है । पागण्ड है । आवरण की छाया म चलन वाला एक धधा है । जिस्मफराशी की बात है । सब नग हैं । एकदम नग ह । पशुआ मे बदतर । परन्तु एक शराफत का आवरण आडे रहत हैं । सब एक-दूमे को जानते ह परन्तु गममदार की तरह मौन हैं । चुप्पी साधे पडे हैं । हर बात को तटस्थ दशक की तरह दपत हैं और चरम परिचित हर समय मुस्कराकर चल दत हैं । यही सबसे बडी विडम्बना है ।

क्या मुझे इसी विडम्बना म जीना हागा या उज्ज्वल आनोक म ?





डॉ० डिसूजा

दशरथ कुमार शर्मा

डिसूजा परिवार से सोहन की आत्मीयता बढ़ाने में रेलवे के समपार फाटक न बड़ा महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

हुआ था कि श्रीमती सुजाता डिसूजा एक दिन सुबह-सुबह तेजी के साथ अपने विद्यालय जा रही थी और रेलवे का समपार फाटक उनके देखते-देखते तेजी के साथ बन्द हो गया। इस घटना से श्रीमती डिसूजा के चेहर पर उसी प्रकार के भाव उत्पन्न हुए जस किसी मनचले नौजवान के व्यवहार के कारण किसी महिला के चेहरे पर भाव उत्पन्न हो जाया करते हैं।

बद हो जाने का तो मुझे ध्यान नहीं लेकिन खुलने के मामले में तो रेलवे के समपार फाटक मनचले होते ही हैं। बूले तो पांच मिनट बाद खुल जाये वरना आधे घंटे तक कोई पता नहीं। दोहरी लाइन होने पर मालगाड़ी गुजर जाए तो सवारी गाड़ी पीछे रह जाती है। सोहन ने, जो बहुत ही नियमों से चलने वाला था, अपने दोनो हाथों में उनकी साइकिल को अघर उठाकर समपार फाटक के पार पहुंचा दिया। डिसूजा बहनजी ने भी सुरत पीछे पीछे पहुंचकर बड़ी प्रसन्नता के साथ धन्यवाद देते हुए कभी घर आने का निमंत्रण भी सोहन को दे दिया। मिला शिक्षा अधिकारीजी को भी उसी दिन श्रीमती डिसूजा के विद्यालय में पहुंचकर देर से आने वालों की सूची बनानी थी।

श्रीमता डिसूजा का नाम उस दिन उनकी सूची में नहीं आया। इसका श्रेय भी सोहन का मिला तथा उमरी सज्जनता का समाचार उसी दिन दोपहर तक डॉ० डिसूजा तक पहुंच चुका था। और उसके बाद उन दोनों की हैलो हैलो होने लग गई थी। संयोग की ही बात है, कुछ दिनों बाद डॉ० डिसूजा अपने घर की तरफ जा रहे थे। रेलवे का समपार फाटक बन्द होता इससे पूर्व ही उन्होंने अपना स्कूटर तज करत हुए तथा गन्त श्रुवात हुए उसे पार कर लिया।

फाटक पार करत ही उनके चेहरे पर एक विजता भावक जसी प्रसन्नता थी।

सोहन न उह उनरी फुर्ती पर बघाट ररर उनकी प्रसन्नता म और मुद्धि कर दी। वैम भी जय पति-पत्नी गारा गजरीय मया म हा, तो पति क पास स्क्ूटर व फुर्ती दाता वा हाता आवश्यक हा जाता है। डिमूजा माह्य आग्रहपूर्वक सोहन को अपन स्क्ूटर पर बिठारर अपन घर ल गए।

डिमूजा रहाजी न माहन का भाव भीना स्वागत किया और बताया कि उस दिन विद्यालय म लट पहुचन वान लागा को प्रधानाग्यापक, जिला शिक्षा अधिकारी व उम दिन समय पर पहुचन वान लागा 7 अपनी-अपनी सुविधानुसार समय की पावती का महत्व बताया, जिला शिक्षा अधिकारी कार्यालय स बाद म आने वाली निरीक्षण रिपोर्ट म भी अलग मे इस घटना का वणन किया गया, व भविष्य म ध्यान रखन के लिए निर्देश दिए गए।

और उम दिन सोहन न भोजन भी डिमूजा परिवार के महा ही किया, उनके आकषण मकान मे बडी प्रशमा की तथा सबसे अधिा प्रशमा उहनि इस बात की की कि किरायेदार के लिए बिलगुल स्वतंत्र हिस्सा बनवाया है। बिजली व पानी व अलग मीटर, स्वतंत्र बाहर का दरवाजा, अलग ही शौचालय स्नानघर व आगन। मकान मालिका व किरायदार म कही भी टकरान की काई गुजाइश नही।

उन दोनों क गौर वण का दखन हुए माहन न य भी कहा कि इतनी सूझबूझ के साथ तो मकान काई एग्ला इडियन ही बना सकना है। इस एग्ला इडियन शब्द स डिमूजा दम्पति बडे प्रमत्त हुए और इ ती शब्द ने सोहन के लिए रामबाण का काय किया। मौका देखकर सोहन न स्वय के उदारवादी, शातिप्रिय, परिश्रमी व व्यवहार कुशल होन का वणन भी कर दिया साथ ही अपने परिार की रुढिवादी विचारधारा से भी अवगत करा दिया।

इनना होने के बाद ता डिमूजा परिवार का सोहन को अपन मकान म किरायदार के रूप म आने क लिए मादर निमंत्रण दना ही था। निमंत्रण स्वीकार कर लेने के बाद साहन ने उह इस बात स भी अवगत करा दिया कि उस जैसा किरायेदार मिलना मुश्किल है। वह स्वय का मकान बनवा लेन तक उनके यहा ही रहेगा, तथा हर दो साल बाद किराय म दा प्रतिशत की वद्धि स्वय ही उनके कहे बिना करेगा।

बाफ़ी मना करने पर भी सोहन न उन्हें मकान का एक माह का अधिम किराया देकर उनके मकान मे आने की तारीख व समय बताकर यह भी जता दिया कि यह नियमा व समय का कितना पावद है। डिमूजा दम्पति प्रसन्न थे कि उहे एक अच्छा किरायेदार मिल गया तो साहन की प्रमत्तता उसी प्रकार की थी जसे कोई छात्र किसी चलचित्र क प्रथम दिन व प्रथम शो म ही रियायती दर पर टिकट प्राप्त कर लेता है और वह भी जिना परिचय पत्र दिखाय हुए।

अपने द्वारा दिये गए निर्धारित दिनाक व समय स साहन न डॉ० डिमूजा के

यह विरायेदार के रूप में रहना शुरु कर दिया। कुछ दिन बाद उस पता चला कि श्रीमती सुजाता डिमूजा पूर्व में सुजाता वर्मा थी। पशु चिकित्सक डा० डिमूजा से उनका प्रेम विवाह हुआ था।

सुजाता अपने अंग्रेजी पढ़े लिखे माता पिता की इक्कीती व लाइली पुत्री थी, तो डिमूजाजी भी अपने माता पिता की एकमात्र सतान थे। सुजाता के पिता किसी कार्यालय में कार्यालय अधीक्षक थे। उनके परिवार में गज्जवा का कुछ अधिक ही महत्व था, तथा मा व पुत्री की इस ओर कुछ अधिक ही रचि थी। बाजार के अधिकतर काय सुजाता स्वय ही करती थी।

एक दिन गाय के बीमार पड़ने पर सुजाता को स्वय ही उसे पशु-चिकित्सालय डा० डिमूजा के पास ले जाना पड़ा, और डा० डिमूजा भी गाय की पूछ पकड़ते हुए उसी दिन सुजाता के घर पहुँच गये। कुछ दिना तक तो सुजाता के माता पिता भी डिमूजा साहज को गऊभक्त ही समझते रहे और डिमूजा साहज को भी वर्मा साहब का पूरा परिवार उनकी गाय की तरह ही भोला-भाला लगा।

भगवान की कृपा से दोनों का विवाह शांति के साथ यायालय में सम्पन्न हो गया। समाज व धर्म की कोई क्वाकट उनके बीच में नहीं आई तथा वर्मा व डिमूजा समुदाय में भी एक दूसरे के प्रति कोई आन्धोश उत्पन्न नहीं हुआ।

सुजाता वर्मा ने अपने को डॉ० डिमूजा की धार्मिक विचारधारा में पूर्णरूप से ढालकर भी, करवाचीय का व्रत करना नहीं छोड़ा था और डॉ० डिमूजा के लिए उनका यही व्रत सबसे अधिक आनन्ददायक रहा। एक बार गभीर रूप से बीमार डा० डिमूजा को अस्पताल में भर्ती कराया गया। सोहन ने इस अवसर पर डिमूजा परिवार को पूरा सहयोग दिया तथा अपना रक्त भी दिया। वे पूर्णरूप से स्वस्थ हो गये। सोहन ने भी अपने रक्तदान का पूरा लाभ उठाया, और इमी आधार पर कौमी एकता, बालचर, रेडक्रास, आदि कई क्षेत्रों से प्रशसा-पत्र प्राप्त कर लिए।

कुछ समय बाद डॉ० डिमूजा के मकान को दो भागों में बाँटती हुई दीवार ऊँची उठनी शुरू हो गयी। पता चला कि डा० डिमूजा ने अन्तर्राष्ट्रीय आवास वष की सफलता के लिए अपना आधा मकान सोहन को विश्वास में बेच दिया है।

कहानी के अंत में सोहन का परिचय देना भी आवश्यक हो जाता है। श्री सोहन लाल शर्मा शिक्षा विभाग में एक अध्यापक थे तथा डा० डिमूजा का पूरा नाम डॉ० डेनिस एण्ड्र्यू डी डिमूजा था। □

नसीहत

रवि पुरोहित

“गुड मानिंग सर।”

“गुड मानिंग मिस्टर पर्यायवाची।”

“और कस हैं सर आप?”

“ठीक हू।”

“ठीक कैसे है?”

“।”

यार पर्यायवाची! तुम्हारा भी जवाब नहीं है। किसी प्रकार बाज आत ही नहीं हो। जब कह देता हू ठीक नहीं हू तो पूछने हा कि ठीक क्या नहीं हू और जब कह देता हू कि ठीक हू तो पूछने हो कि ठीक कसे हू? यह भी भला प्रश्न है कोई? यदि यही प्रश्न मैं तुमसे पूछू तो ?”

“मैं जवाब दगा।”

“क्या?”

“यही कि जस कल इस वक्त ठीक था वसे ही आज ठीक हू।”

मिस्टर पर्यायवाची के इस जवाब पर पूरे ऑफिस मे एक ठहाका गूज उठा। वह था भी वाकई बड़ा लचीला आदमी। स्वयं म बड़ा के साथ वह बहुत ही सम्यता, शालीनता व अदब से पेश आता था और अपने स्टाफ वाला के साथ बड़े ही नाटकीय अदाज मे। वह कभी भी किसी को बोर नहीं होने देता था। उसका स्वभाव हा कुछ ऐसा था कि वह हर आदमी के माथ एडजस्ट होने की क्षमता रखता था। मुह देखकर बात करना उसका प्रमुख गुण था और यही कारण था कि उसे स्टॉफ द्वारा हर एक का पर्यायवाची घोषित कर दिया गया था जबकि वास्तव मे उसका नाम स्पश था।

“तुम्हारा यह जवाब तो उस बात का पर्याय है मिस्टर पर्यायवाची, बीत कल का अस्तित्व कायम रखने का तो वही मतलब हुआ कि एक तीली को जलाकर

बुझा देना और फिर उसी तीली को पुनः प्रज्वलित करने की कोशिश करना।
इमको भोडेपन या नासमझी के अलावा किस शब्द की सजा दे सकते हो ?”

“इसका मतलब तो यही हुआ कि आपके अनुसार जली तीली को दुबारा नहीं जलाया जा सकता ? नहीं, यह बात नहीं है सर ! जली तीली को भी पुनः प्रज्वलित किया जा सकता है।”

“अच्छा मेरे बाप ! वद कर तरी यह बकवास। सुबह सुबह ही राम-नाम के वक्त क्यो दिमाग चाटन पर अमादा हो रहा है ?”

सभी कमचारी अपनी-अपनी चेयर पर जा जमे थे सो पर्यायवाची फिर क्यो न जमे, वह भी जा जमा। मैनेजर, जैसा कि उसकी रोज की आदत थी, की गलती आज भी नहीं की थी। वह बोला था—“अच्छा तो मेरे प्यारे वदरो, अब सभी अपना-अपना काम शुरू कर दो।”

मनेजर रोज यही कहने के लिए हैबिच्युअल था, सो कभी भी कोई उसकी इस बात का बुरा नहीं मानता था और रोजाना मैनेजर के इस सम्बोधन के साथ ही बगैर कोई जवाब दिये अपना काय शुरू कर देते थे। सभी कमचारियो ने, सिवाय पर्यायवाची के अपना काय शुरू कर दिया था। पर्यायवाची सिर खुजाता हुआ बोला था—“ओ० के० वास हनुमान !”

उसके इस जवाब पर एक बार फिर वक की वह बिल्डिंग ठहाकी से गूज उठी। हसते हसते सब का पेट दुखने लगा था। इसलिए पानी का एक एक गिलास पीकर सभी अपन अपने काय म मशगूल हो गए।

पर्यायवाची भी फाइलो म उलझकर रह गया मगर जैसे ही उसकी नजर कॅश बुक की तरफ गयी, वह लगभग झपट-सा पडा था कॅश-बुक पर। उसने लिफाफा खोला तो पता लगा कि मैनेजर साहब के लटके की शादी होन जा रही है और वह पत्र उसी का निमन्त्रण था, पर्यायवाची के नाम से ही। शायद मैनेजर साहब ने सरप्राइज देने के लिए निमन्त्रण-पत्र को कॅश बुक मे फसाकर छोड दिया था।

“नहीं नहीं यह नहीं हो सकता !” निमन्त्रण-पत्र पढने के बाद पर्यायवाची लगभग चिल्ला ही पडा था।

“क्या नहीं हो सकता मिस्टर पर्यायवाची ?” सभी कमचारी अपनी-अपनी चेयस छोडकर एग बृत्तावार घेरे म खडे हो गय थे, पर्यायवाची के इद गिद। इतन में मनेजर साहब भी पहुंच गय थे।

“क्या नहीं हो सकता मिस्टर ? जरा हम भी तो जानें ?” इस बार पुन वही प्रश्न उछाला था मनेजर साहब ने।

“यह शादी नहीं हो सकती नहीं हो सकती !” पर्यायवाची हडबडाता हुआ-सा और अपने ललाट पर से पसीना पाछता हुआ बाला था।

“क्या नहीं हो सकती ? आपम पहले इजाजत नहीं ली गयी, क्या इसलिए ?”

जो हाना है वह ता होगा ही मिस्टर, अपने नहीं बहन मे क्या यह शादी नहीं होगी ?' मनेजर मुस्कराता हुआ बोला था ।

"हां, जो होना है वह तो हांगा ही मगर आपको यह शादी अभी करनी नहीं चाहिए ।" पर्यायवाची राम देने वाल अदाज मे बोला था ।

"लेकिन क्या नहीं करनी चाहिए ? क्या आपन शादी नहीं की जो मुझे अपने लडके की शादी न करन का सुझाव दे रहे हैं ?" मनेजर पास वाली यात्री चैयर पर बठना हुआ बोला था ।

'क्याकि अभी तक प्रवीण बेरोजगार है ।' पर्यायवाची न रहस्य उगला था ।

"तो फिर इसका मतलब यह हुआ कि बेरोजगार आदमी कुवाग ही रहगा । क्या बेरोजगार की शादी करना कोई अपराध है ?" मनेजर झुझलाता हुआ-सा बोला था ।

"बेरोजगार की शादी करना अपराध तो नहीं लेकिन अत्याचार जरूर है । अभी आप प्रवीण की शादी करके उसकी स्वयं की आकांक्षा, तमनाओ तथा अभिलाषाओ का गला घाटेंगे । जाकिर उसकी भी तो कुछ बनने की चाह होगी । क्या बचारे पर यह बोझ नाद रह हा ?" पर्यायवाची खासा-सा होकर बोला था ।

'सुझाव के लिए धन्यवाद मिस्टर पर्यायवाची । और इसके बाद अगर आग कुछ कह वहा से उठकर चले गए थ । उनकी भाव भंगिमा से साफ जाहिर होता था कि व पर्यायवाची के सुझाव से सहमत नहीं थे ।

मभी कमचारी भी अपनी-अपनी चैयस पर बैठ गये थे । मगर पर्यायवाची वहीं और भटक गया था । उसके अतीत न अपना सम्पूर्ण बोझ उमकी विचार शक्ति पर डाल दिया था ।

उस वक्त रूपश उफ पर्यायवाची बी० कॉम० का विद्यार्थी था यानी कि अभी एक वष की पढाई स्नातक होने के लिए जोर करनी थी । मगर इही दिना उसके घर वाला को उसकी शादी करन का ऐसा नशा चढा जो उत्तर न उत्तर । उसन घर वालो को बहुत समझाया कि शादी कोई येन नहीं, जिमे जब चाहा खल लिया । वह बहुत चीखा चिल्लाया मगर उसकी कोई मुन तब ना । उसकी चीख चिल्लाहट और समझावन को मिट्टी का डेला समनवर मिट्टी के ही सुपुद कर दिया जाता ।

जब रूपश न महमूस किया कि इस प्रकार बात बनन वाली नहीं है तो वह एक दिन पिताजी के आगे बिफर ही पडा था । उमन वगावत का झण्डा फह्य ही दिया था—"मुझे मरे पैरा पर खडा हो जान दीजिए । क्या आप लोग मुझे जबरदस्ती इस मोह-जाल मे फगाकर अवनति क मुज म ढकल रहे है ? क्या मरा जीवन नरक बना रह है आप लोग ? बालिए पिताजी ?"

"हमने दुनिया दयी है । तुम अभी बच्चे हा, कुछ नहीं जानन । हम जो कुछ भी करेंगे, तुम्हारी भलाई के लिए ही करेंगे ।' उसके पिताजी न अपनी आवा पर

मोटे शीशे और टूटी डण्डी वाला ऐनक चड़ात हुए अपन अनुभव का बखान किया था ।

“अभी आपने कहा कि मैं बच्चा हूँ और कुछ नहीं जानता, इसीलिए तो मैं आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि अभी मुझे बड़ा हो जाने दीजिए, कुछ जानन दीजिए।’ रूपश रीत रीत बोला था ।

“मैंने वह दिया ना । जो मैं कह चुका हूँ, वही होगा, तुम जाकर अपनी पढाई करो ।’ इस बार पिताजी न उसे झिड़क दिया था ।

अन्तत वही हुआ जो शाश्वत होता चला आया है यानी कि बाल विवाहों की श्रेणी में एक और नाम दज । पहले बगावत की थी मगर बाद में उमें घर वालों की जिद्द के आगे झुकना ही पडा । अपने मन में सोची हुई और उमडती अभि लापाआ, आकाक्षाओं और तमनाओं को अपन ही हाथों उखाडकर दूर फेंक देना पडा ।

रूपश की शादी हुए अभी पूरा साल भर ही न हुआ था कि घर में बच्चों की किलकारी गूज उठी यानी कि वह एक बच्चे का बाप बन गया । घर के हर सदस्य के मुख पर छाई उस वक्त की खुशी की झलक दृष्टव्य थी । मौहल्ले में मिठाइयां बांटी जा रही थी मगर रूपश ? उसके चेहरे पर चिन्ता की रेखाएं उभर आई थी । मन-व्यथा की परत पहल से भी अधिक मोटी महसूस करने लगा था ।

रूपश को स्नातक हुए तीन वर्ष हो गए । इस तीन वर्ष के अंतराल में वह तीन बच्चों का बाप बन गया । लेकिन रोजगार के नाम पर अब भी निराशा ही थी । तीन वर्ष पूर्व बाल विवाहों की श्रेणी में उसका नाम जोड़ा गया था तो अब बेरोजगारों की श्रृंखला में भी अब्बल नम्बर पर पहुँच चुका था ।

उन दिनों घर वालों के व्यवहार में भी पर्याप्त परिवर्तन आन लगा था । पहले जो हसकर उसको बतियात थे अब उही की जाखा में स्वयं के लिए नफरत और तिरस्कार के भाव देखकर वह सिहर उठता । तानो-कटाधों और व्यग्य-बाणा की तो उस रीती बनावट खिनाई जाने लगी थी ।

रूपश पिताजी की आंखों के सामने पढ़ने से ही घबराने लगा था मगर एक दिन पिताजी न उसे अपन पास बुलाकर स्पष्ट ही कह दिया था कि अब वह खुद समझदार हो गया है पांच बच्चों का बाप भी बन गया है । अब उस कोई काम-धंधे पर लग ही जाना चाहिए । आखिर अकेला आदमी गृहस्थों का खर्च कब तक चलायगा । उसने पिताजी ने व्यग्य-बाणों द्वारा उसे बोध डाला था— ‘और तुम तो पढ़े लिखे भी हो । वतमान में तो एक अनपढ़ गवार व्यक्ति भी चेजे पर जाकर नित्य 15 20 रूपय कमा लेता है । अगर और कोई काम नहीं मिलता है तो आइसक्रीम ही बेचनी क्या नहीं शुरू कर देते ? गर्मों का मौसम है चलेगी भी खूब । या फिर गोल गप्प बनाकर बेचन शुरू कर दो ।’

रूपश आत्मिक रूप से तो वैश्व ही टूटा हुआ था, उपर ग पिताजी द्वारा व्यंग्य वाणी की वर्षा । और जब पात्रा बच्च पापा-पापा कहकर उमन चारा तरफ घूम जान तो मार शर्म के उमका सिर झुक जाता । उसने वरवार मा को कहत गुना था कि "देखो छोरा, चारो बाप आम्हो कती चीजा ल्यायो है थार वास्त ।" मा भी यह बात व्यंग्य के रूप में ही कहती थी ।

दो बच्चे होने के बाद रूपश ने अपनी पत्नी के अप्रेक्षण हेतु पिताजी से अनुमति चाही थी तो उन्होंने स्पष्ट कहा था—“मर जीत-जी तो मैं यह जीव हत्या होने नहीं दूंगा । अप्रेक्षण तो वे करवात हैं जिनकी वमान की हिम्मत नहीं होती, अभी तुम्हें कौन-सा जोर आ गया ? कमाकर तो मैं लाना हूँ ।”

पिताजी के इस तर्क का जवाब उमके पास सिवाय चुप्पी के कुछ भी नहीं था । वह अपना मन मसोस कर रह गया । देखने में भी विनिधत्त-सा दिखाई देने लगा था ।

जिम दिन रूपश की मविम लगी थी उस दिन उन सभी ने उमके शुभ चिंतन का लबादा फिर से ओढ़ लिया था । मा जा ताने दन बकती नहीं थी, ने उम दिन पूरे मोहल्ले में मिठाई बाटी थी और हर एक को यही कह रही थी कि हम तो पहले ही पता था कि हमारा लाल एक दिन उड़ा अफसर बनगा, इसीलिए तो हमने उसे इतने दिन फाई नौकरी नहीं करवा दी ।

पर्यायवाची भोच रहा था कि आपिर इन सबमें यह परिवर्तन एक माय क्यों कर आ गया है ? क्या ये भी अपन पूवजो के पर्यायवाची हैं जो उनके द्वारा प्रतिपादित मायताओं को नया आयाम देत चल जा रहे हैं ? यदि ऐसा है तो यह लेन देन पूवजो से शुरू हुआ । हम तो सिर्फ निमित्त मात्र हैं फिर दोष का भागी उन्हां पूवजो को क्या नहां माना जाता ?

पर्यायवाची ने महमूस किया कि उसके सामने की टबल पर पड़ी लेजर, केश बुक और विल-ब्रहिया इत्यादि स्वतः ही एक दूसरे के ऊपर जम गई है । अचानक उन फाइलो ने पर्यायवाची के बेटे-बेटिया का रूप ले लिया और वे उसे एक ही खाट पर एक-दूसरे के ऊपर मोत हुए दिखाई दिखाई देने लगे । वह धीरे से बड़ बड़ाया था—“भोज मारा बेटो ! यह भी शुरू है कि आप भाई-बहिनों ने घर की दीवार बाहर तो नहीं गिरने दी और आपस में ही ममझीता कर लिया ।” उसने महमूस किया कि उसके बेटे-बेटिया हिल रहे हैं तो वह लगभग चिल्ला ही पड़ा था—“अर तालायको, बद करो तुम्हारी यह धक्कम-पेल । कुछ तो शम करो, आखिर मैं तुम्हारा बाप हूँ ।”

वास्तव में हुआ यह था कि ड्यूटी टाइम आफ हा गया था और उसका एक साथी ही उसके आगे से सभी फाइलें इकट्ठी कर रहा था तो वे अचानक फिल कर गिर गई थी । यही सब उसको कुछ और ही दिखाई दिया था, भावनाओं में

बह जाने के कारण ।

“क्या बात है मिया ? बाह को हल्ला मचा रहे हो ? घर नहीं चलना है क्या अब, छुट्टी हा गई है । तुम क्या सोच म घुल जा रहे हो सुबह से ? यदि मंजर अपने लडके की शादी करता ह तो वह जाने उसका काम जाने, अपनी बला स ।” उसका माथी हसता हुआ सा बोला था ।

पर्यायवाची के विचारा का महल ढह गया और वह चेयर स उठकर धके कदमा से घर की तरफ बढ़ने लगा ।

“क्या बात है रूपेश बाबू ? हमस नाराज हैं क्या, जा कभी नजर उठाकर भी नहीं देगत इधर ?”

रूपेश न अपनी नजरें उठाई तो उठी की उठी ही रह गई । उपरोक्त स्वर उसके पडोस म रहने वाली एक लडकी चम्पा का था । रूपेश सोच रहा था कि जब आदमी के दिन फिरते हैं तो घर वाला के साथ साथ पडोसी भी बदल जाते ह । वह भी वक्त था, जम यही चम्पा एक दिन अपनी एक सहैली से कह रही थी, उसको मुनाकर ही कहा गया था—‘अरे रूपा, तुम्ह पता है आजकल रूपेश बाबू क्या काम करते हैं ?’

“अरे भाई मैं क्या जानू ? तुम बताओगी तभी तो पता चलेगा ना ?” रूपा ने जवाब दिया था ।

“अरे बाह ! तुम्ह इतना ही पता नहीं, रूपेश इज डुइग वेरीगुड वक इन दीज डेज ।’ चम्पा का व्यंग्य मिश्रित हसता हुआ स्वर ।

“अरे भाइ कुछ बताओगी भी या ऐसे ही बकती रहोगी ?”

“अरे, अभी कहा ना ! वरी गुड वक ।” चम्पा ने रहस्य पर लिपटी चद्दर की गाठ को और अधिक मजबूत करत हुए जवाब दिया था ।

“अब गुड गुट ही बगती रहोगी या गुड का स्वाद भी चखाओगी ?”

‘आह हम तो बदनसीब ह, ऐसी हमारी तकदीर कहा जो इस गुड का स्वाद चख सकें । काश ऐसा हाता ।’

और आज वही रूपा इस कदर बावली हो रही है मेरे दशनो के खातिर । बाह रे ईश्वर , शायद तुम्हारी पहली और आखिरी गलती इस चम्पा की बनावट ही थी । तुमन भी भूल से नहा हज्जाम की खोपडी पर महिला का लेबल लगा दिया । हज्जाम भी रहम ता खाता है ना ! शेव बनाने के बाद माला पर शॉविंग लाशन लगाकर क्रीम का तैपन कर उहे फिर से चमकाकर शायद इतनी देर तक उन बेचारा को छीलता रहता है, उस गलती का प्रायश्चित्त इस रूप म करता है । बेचारा सभ्य हज्जाम ! और यह स्साली कुलटा, अपनी गलती का प्रायश्चित्त मुझसे लिपट लेकर करना चाहती है ? ऊह ! म भी कहा जाडी मिलाने चला ह । कदा ^१ जीर कहा गू तली । □

रूपश आत्मिक रूप में तो वीम ही टूटा हुआ था, उपर में पिताजी द्वारा व्यंग्य वाणी की वर्षा । और जब पापा वच्चे पापा पापा कहकर उमर चरग तरफ घूम जात तो मारे शर्म में उसका सिर झुक जाता । उसने कटे वार मा को बहुत गुना था कि "दर्रो छोरा, थारा बाप आग्यो कती चीजा त्याया है थारे वास्त ।" मा भी यह बात व्यंग्य के रूप में ही कहती थी ।

दा वच्चे होने के बाद रूपश ने अपनी पत्नी के ऑप्रेशन हेतु पिताजी से अनुमति चाही थी ता उन्होंने स्पष्ट कहा था—“मर जीत-जी तो मैं यह जीव हत्या होने नहीं दगा । ऑप्रेशन तो व ररवात है जिनकी वमान की हिम्मत नहीं हाती, अभी तुम्हें कौन-सा जोर आ गया ? वमावर तो मैं लाता हू ।”

पिताजी के इस तब का जवाब उसके पास सिवाय चुप्पी के कुछ भी नहीं था । वह अपना मन मसोस कर रह गया । देखा में भी विक्षिप्त-सा दिखाई देने लगा था ।

जिस दिन रूपश की मर्किस लगी थी उस दिन उन सभी ने उसने शुभ चिन्तका का लवादा फिर से जोड़ लिया था । मा जो ताने दत थरती नहीं थी, ने उन दिन पूरे मोहल्ले में मिठाई बाटी थी और हर एक को यही कह रही थी कि हम ता पहले ही पता था कि हमारा लाल एक दिन बड़ा अफसर बनेगा, इसीलिए तो हमने उसे दूतन दिन कोई नौकरी नहीं करन दी ।

पर्यायवाची मोच रहा था कि आखिर इन सबमें यह परिवर्तन एक साथ क्यों कर आ गया है ? क्या ये भी अपने पूवजों के पर्यायवाची हैं जो उनके द्वारा प्रतिपादित मान्यताओं को नया आयाम देते चर आ रहे हैं ? यदि ऐसा है तो यह लन-देन पूवजा से शुरू हुआ । हम तो सिर्फ निमित्त मात्र हैं फिर दोष का भागी उही पूवजों को क्यों नहीं माना जाता ?

पर्यायवाची ने महसूस किया कि उसके सामने की टेबल पर पड़ी लेजर, केश बुरु और बिल-बेहिया इत्यादि स्वत ही एक दूसरे के ऊपर जम गइ है । अचानक उन फाइलो ने पर्यायवाची के बेटे-बेटियों का रूप ले लिया और वे उस एक ही खाट पर एक दूसरे के ऊपर स्रोत हुए दिखाई दिखाई देने लगे । वह धीरे से बड़ बड़ाया था—“मोज मारो बेटो । यह भी शुरु है कि आप भाई बहिनो ने घर की दीवार बाहर तो नहीं गिरने दी और आपमें में ही समझौता कर लिया ।” उसने महसूस किया कि उसके बेटे बेटिया हिल रहे हैं तो वह लगभग चिल्ला ही पडा था—“जरे नालायको, बंद करो तुम्हारी यह धक्कम-पेल । कुछ तो शर्म करो, आखिर मैं तुम्हारा बाप हू ।”

वास्तव में हुआ यह था कि डचूनी टाइम ऑफ हो गया था और उसका एक साथी ही उसके आगे से सभी फाइलें इकट्ठी कर रहा था तो वे अचानक किसल कर गिर गई थी । यही सब उसको कुछ और ही दिखाई दिया था, भावनाओं में

वह जाने के कारण ।

“क्या बात है मिया ? काहे को हल्ला मचा रह हो ? घर नहीं चलना है क्या अब, छुट्टी हा गई है । तुम क्या सोच म घुल जा रहे हो सुबह से ? यदि मनेजर अपने लडके की शादी करता है ता यह जाने उसका काम जाने, अपनी बला स ।” उसका भायी हसता हुआ-सा बोला था ।

पर्यायवाची क विचारो का महल ढह गया और वह चेयर से उठकर थके कदमो स घर की तरफ बढने लगा ।

“क्या बात है रूपेश बाबू ? हमसे नाराज हैं क्या जो कभी नजर उठाकर भी नहीं देयत इधर ?

रूपेश न अपनी नजरें उठाइ तो उठी की उठी ही रह गई । उपरोक्त स्वर उसके पडौस म रहने वाली एक लडकी चम्पा का था । रूपेश सोच रहा था कि जब जादमी के दिन फिरते हैं तो घर वालों के साथ साथ पडौसी भी बदल जात हैं । वह भी वक्त था, जत्र यही चम्पा एक दिन अपनी एक महेली से कह रही थी, उसको सुनाकर ही कहा गया था—‘अर रूपा, तुम्ह पता है आजकल रूपेश बाबू क्या काम करत हैं ?’

“अरे भाई मैं क्या जानू ? तुम बताओगी तभी तो पता चलेगा ना ?” रूपा ने जवाब दिया था ।

“अरे बाह ! तुम्ह इतना ही पता नहीं, रूपेश इज डुइग वेरीगुड बक इन दीज डेज ।” चम्पा का व्यंग्य मिश्रित हसता हुआ स्वर ।

“अर भाइ कुछ बताओगी भी या ऐसे ही बकती रहोगी ?”

“अरे, अभी कहा ना । वेरी गुड बक ।’ चम्पा न रहस्य पर लिपटी चद्दर की गाठ को और अधिक मजबूत करत हुए जवाब दिया था ।

“अब गुड गुड ही कर्ती रहागी या गुड का स्वाद भी चखाओगी ?”

‘ओह हम तो बदनसीब हैं, एसी हमारी तकदीर कहा जो इस गुड का स्वाद चख सकें । काश एसा होता ।’

और आज वही रूपा इस कदर बाबली हो रही है भरे दशना के खातिर । बाह रे ईश्वर , शायद तुम्हारी पहली और जाखिरी गलती इस चम्पा की बनावट ही थी । तुमने भी भूल मे नहा हज्जाम की खापडी पर महिला का लेबल लगा दिया । हज्जाम भी रहम तां खाता है ना । शेव बनाने के बाद गालो पर शेविंग लोशन लगाकर क्रीम का लेपन कर उहे फिर स चमकाकर, शायद इतनी देर तक उन बेचारा को छीलता रहता है, उस गलती का प्रायश्चित्त इस रूप म करता है । बेचारा सम्य हज्जाम ! और यह स्साली कुलटा, अपनी गलती का प्रायश्चित्त मुअसे लिपट लेकर करना चाहती है ? ऊह ! मैं भी कहा जोडी मिलान चला हू । कहा तो राजा भोज और कहा गनू तेली !

ग्रहनाता चाद

श्याममुंदर भारती

वग म जो पुटन थी भीड़ की बजह से, शहर से बाहर निकलना क बाद वह नहीं रही थी। जगल की सीर गुरू हाता-हान एक अजाब तरह की मन्भावन महक क साथ ठड़ी हुआ क ज्ञानि बस की गिड़किया म म आन लग थ। य गर्मी और गर्मी के बीच क ही कोई दिन थ, जब धूप म तपती लगती थी और छांव म ठंड का अहसास होता था। इसी तरह क ठंठे और गम मीगम का कोई एक दिन था, जब मैं छोट छात्र गाया के लिए चला वाली निजी बस म म निमी एक बस म मपर कर रहा था। मुझे उम गांव जाना था, जहा आज म मेला गुरू होने वाला था। अग्रसर के लिए 'मले का आया दगा हाल मुझे लिखना है इसकी सूचना मुझे एक दिन पहले ही दे दी गई थी। यही उद्देश्य था मरा, जिगने लिए मैं सफर कर रहा था।

एक तो रात बहुत देर तक काम करता रहा था इस कारण, और फिर खाना होन म पहन मागरा दही के साथ खा लिया था। फिर शहर से बाहर निकलने ही बस की गिड़किया से हवा क ठंडे-ठंडे ज्ञाने आने लग थे जिमकी बजह से बस क खाना होन क थोड़ी देर बाद ही पलक भारी होन लगी था और झपकिया आत-आत कब नींद जा गई, कुछ पता ही नहीं चला।

किसी न मरा कथा झिझोडा तो मैंने चौंकर आखें खाली—मामने कक्कर पडा मुक्करा रहा था। मर आखें खोलत ही उसने अजीब तरह म हसत हुए मुह बनाया और बोला— 'बाबू साब, उतरणी नी के?'

मैं आखें मलता हुआ उठा और थला कधे पर डाल बस से नीचे उतर गया। झाड़वर भी शामद मेरी ही उडीक म था सो मेरे नीचे उतरत ही बस घर घराट करती स्टार्ट हुई जोर चल दी।

मैं बहुत देर तक वही खडा जाती हुई बस के' हुआ रहा। बस आया स ओझल हो गई तो मैंने इधर

वहा स थोड़ी दूरी पर चाय की होटल-सी दिखाई दी। मैं वहा तन गया और बाहर पडे माचे पर बठठा हुए हाटल वाले स थाला—“भायला, एक पसल चाय तो बणा दे।”

मैन अपनी बात पूरी नही की तब तक एक छोरे ने पानी से भरा लोहे का डिब्बा लाकर मुझे पकना दिया। मैंन उठकर जाखा पर पानी के छोट दिए, मुह घाया जोर दो घट लेकर बठ गीला किया। तब तक चाय आ गई। मैंन चाय की एक दो चुस्किया ली तब तक एक दा ग्राहब और आ पहुंचे वहा और छीण से बनी बेंच पर बठकर आपस म बतियाने लग। उनम स एक न घोती म घासी हुइ कोयली निकाली और उसम स तम्बाकू निकालकर चिलम भरी। इधर उधर से दूढ मूज का काया बनावर उस पर रखा। साफी गीली करके लपेटी और कोये पर तोली रखने क बाद बस पीचकर लपट उठा दी। इतने मे उनके आग चाय आ गई। जिमक हाथ म चिलम थी उसन चिलम को पत्थर के सहारे खडी की और फिर तीना चाय पीन और बातें करन लगे। उनकी बातों स पता चला कि वे भी मले जा रह थे। इसी बीच एक के हाथ के टिटल से चिलम गिर पडी और तम्बाकू बिखर गई। देखकर उनमे से एक बोला—“फूटे भाग फकीर के, भरी चिलम गिर जाए।’ आर फिर तीना एक साथ हम पडे। मुझे भी हसी आ गई। होटल वाले को भी और काम करन वाले छोरे को भी। मैं उनके मुह से सुन चुका था, फिर भी यू ही पूछ लिया—“भेले जा रह हा ?’

“हा ।” उनम स एक ने लम्बी हामी भरी क मेरी ओर उमुख होता हुआ बोला—“आप री बिराजणों ?”

“मैं शहर मे रहता हू ।”

“अठै ?”

“भेले जाना है ।’

“तो चालो । वह प्रसनता दशाता हुआ बोला—“एक से भले दो, दो से भले तीन,’ वह गावई हिंदी बोलन लगा था—“आपके समेत ता जापा चार हो जावेंगे। माय ता क्या ह के साप का ई भला। पछे मिनख के साथ तो भाग से मिलता है।’ कहते कहते उसने गिलाम ऊपर उठाकर मुचे दिखाया जोर बोला—“थोड़ी चायडी चूयडी पी ला, पछे चालागा ।’

वे तीनों चाय पी चुके तो मैंन हाटल वान को पैसे दिए क उनकी ओर देखता हुआ बोला—“अब चलें ।”

मेरे पूछते ही उहोने गदन के लटन से हामी भरी और उठकर चलते हुए मुझे साथ चलने का इशारा किया। अब हम गाव की सीब स थोडा बाहर पगडडी पर चल रह थ। थोड़ी दूर तक चारा ही चुपचाप अपनी-अपनी घुन मे चलते रह। मैंने साचा—मैं चुप हू इमलिए य भी चुप है। लेकिन मैं तो जानबूझकर चुप था।

उनको उलीचन की गरज न। आधा देगा हाल ने साथ-साथ ताता गुता हाल भी ता लाग गिर व साथ पठन ही है। इग विण में गुण था। भरा चुप रहना ठीक रहा। थोड़ी दर बाद उनम स एन न मौन तोडा—“दू पूछू व शहर व बायू का गाव व मले को चाय बिया हाया ?”

‘वम यू ही ।’ मैंन सक्षिप्त उत्तर दिया—“मुझे पगद है—मन मेले ।

‘पगद ह तव ता बात । नी बात है ” यह धय और उत्साह के साथ बालने लगा— पगद वाली बात तो भली है पण अब वा बातें कहा पल यहा मिंदर के चौकेर एसा मना जमता, ऐसा मला जमता के दूजी वान छोडो। गहर न वमो-वैमी आनीस्यान दुवान यहा आवर लगती थी। गूई म लये हसवाणी तर और कीडों स लगा के कुजर तव की बियवाली और जाण वहा-वहा की भजन मर्लिया आती और आग्यी आग्यी रात था घमचक मचातो के मत पूछो। जातक मो मो वामा म पैदल चलकर आत। और ग्रास दिन तो राजाजी बापजी गुद पधारते दरमण गालर। लाग-नुगाया की एमी गरदी पडती व वाली फेंको ता नीच नहीं पडे। इती भीड इता मिनघ। पण मजाल के जो काई ऐमी वसी माडी बात हा जावे।” यहा तव आते-आत वह थाडा बुम गया—“पण बायू साव, अब विणवा ता मला है और विणवा दरसन है याव पूछा ता दरसणा को ता नाम है कोरो वानी ता ठगा वा मला है ठगा वा। अब तो सुच्चा-नफगा ही ग्यठ हारे है। भला मिनघा जोर घराण सी बह बवारी व आण व तो बखत ही नहीं रहा अब। दखो जिघर ही भिस्टवाडा दयो। जिघर ही चौरा कूटा।’ वो एव बाग जो गुरु हुआ तो फिर बिना खे वहता ही गया—“मजे की बात ता या है बायू साव, व इता सब होता थका भी काई कहण-मुणण वाला नहीं है। जिमकी जो मरजी पडे, कर रैया है। बोलता बोलता वह थाडा हवा और फिर दानो हाथ आसमान की थार ऊपर उठा कर कहनलगा—‘हे सावरिया धणी, तीन तिलोकी वा नाथ, तू बडो है अच्छो बखत दखाया र भगवान इण मानखे को के हवाल हासी अब यू ही जाण।’ कहत-कहत उसा मेरी ओर दखा जोर बात की सारी उदासी को एव आर घबेलत हुए उत्साह के साथ वाला—‘ला वो देखो वो मले वा झडा और वो रोसणी की क्षपाक्षप दीखण लाग री ० ।’

मैंन सिर उठाकर देखा दूर बत्तिया झिलमिनाती नजर आ रही थी। मेले के करीब पहुंचने पहुंचत उन तीना न ‘राम राम’ कहकर विदा नी और मैं मले की सीव म घुस गया।

उसके कह अनुसार मले ही पहले मी बात अब नहीं रही होगी, फिर भी मेले का तामझाम कुछ कम नहीं लग रहा था। चारो ओर दुकानें ही दुकानें सजी हुई थी। तरह-तरह की। साधारण घर बिकरी की चीजा से लेकर मनिहारी की नयी नयी फैसन की चीजें भी बिकरी के लिए आई हुई दीख रही थी दुकाना और ठेला पर।

लेकिन अब तक अधेरा छा चुका था इसलिए बाजार में छीड़ होने लगी थी। ठेलो और फुटपाथों के सामान एक एक कर ढांपे जाने लगे थे।

अब आराम करके कल सुबह जल्दी काम शुरू कर दूंगा, यही सोचना हुआ मैं अपनी धुन में चलता जा रहा था। मुझे रात टिकने के लिए कोई जगह भी ढूँढनी थी और काफी दूर से पैदल चलकर आन के कारण भूख भी जब महसूस होने लगी थी।

खासा आग निकल जाने पर एक ढाब पर मरी नजर पड़ी। 'शुद्ध वैष्णव भोजन का बाड टगा था। एक आर गोबर से लीपी चौकी पर बठी एक लुगाई रोटिया सेंक रही थी और जेट लगाती जा रही थी। मैं सोचा, आग ही थका हुआ हूँ। अब वहाँ टापता फिरूंगा घाने के लिए। यही खा खू लूँ। ऐसा विचार मैं ढाबे के बाहर पड़े लकड़ी के पाट पर जाकर बठ गया। मुझे देखते ही ढाबवाली ने वहाँ काम करने वाल लडके को आवाज लगाई—'छोरे बाबू साब के पाणी लगा चाल फुरती कर " और फिर मेरे सामने देखकर बोली—'हुकम करा बाबू साब, पेसल चाय बढिया खाणा जोरदार एकदम गरमा गरम हुकम करो " उसकी नजरे वापस छार की जार मुड गइ—'अरे ऐरे ढीला ठकणा चाल फुरती कर बाबू साब को अदर बठाय ।"

ढाबवाली की उम्र चालीस पैतालीस के आरपार रही होगी। शरीर भारी, आवाज में मरदानगी। हाथा में फुर्ती और ग्राहकों के साथ बाली में जाजिजी। मैं पाट से उठकर ढाबे के अदर बठ गया। तीन चार बच्चा के आगे टबुलें रखी थी। वह छारा पहले तो जमन की गिलास और जग भर कर मेरे आगे रख गया और फिर फुर्ती से खाना भी ले आया। भूख अब तक जाकरी हो चुकी थी सा मैं गपगप खान लगा। खाना—मेले का ढाबा देघत हुए बजा नहीं था। और कुछ भूख भी स्वाद बढा देती है। मैं खाना खा रहा था और अब तक नगरा के सामने सगुजर सारे दृश्य का पुनरावलोकन भी करता जा रहा था। साच रहा था कि मेले का आघा दखा हाल कुछ इस जदाज म तिखा जाय कि अखवार पढन वाता की आखो के सामने मेला प्रत्यक्ष हा जाये। मैं ऐसे ही कुछ विचारा में डूबा था। मुह का कौर ता अपने आप ही चबाया जा रहा था। विचारों के घागे से बघा मैं लटक रहा था। मरी ध्यान शृणला का सहमा एक थटका लगा। ढाबेवाली लगभग काजती हुई पुकार रही थी—'रे छोरला पावर कम दीख रासणी धीमी पडे है एक अडो (बल्व) मोटो लाय दे चाल ।'

ढाबेवाली ने अडा शब्द बोलत हुए कुछ ऐसा बनाया कि मुझे कण्डकटर की सूरत याद जा गई। बस में मरा बघा झिझोड कर उठान के बाद वह ड्राइवर की ओर देखकर मुस्कराया था। तब उसने भी मुह कुछ इस तरह बनाया था कि केवल एकसन की बजाय अगर उसन शब्द मुह से बाहर निकाला हाता तो कडा बढा,

झडा या अडा इही मे मिलता-जुलता कौइ शब्द होता । लेकिन मतलब ? मूरख वही बा । य स्साल ड्राइवर कडक्टर भी बडी चालू चीज होते है । वँसा मुह बनाया था उसने ? मैं उसनी नकल-सी करन लगा । यहा तक कि छोरा रोटी लिए मेरे पास खडा था लेकिन मैं इम समय बस मे कडक्टर से आमने-सामन था । मेरे मुह से अचानक निकल गया—अडा ।

खिण खिण खिण छोरे ने दात काट दिये । वह अपन मुह को पूरी कोहनी स टापकर अपनी हसी दबाता हुआ बोना—“आप टिक कहा हो ?”

मैं एक बटके क साथ अपनी जगह लौटा । छोरा छाटा था, फिर भी मुझे बहुत शिक्का हुई । क्या साचा होगा बेचारे ने ! वैष्णव ढावे मे अडे की माग ? मुयें अपन आप पर चिढ जाई कि कैसी कँसी हरकतें मुझसे कभी कभी हो जाती है ।

“कही नही !” मैंने सहज होने का उपक्रम करते हुए कहा—“अभी तक तो कोई ठिकाणा नही । डाग पे डेग है ।” कहते-कहने मैं थोडा रका और उसकी मिजमिजी जाया म घुमता हुआ वाला—“है कोई ठिकाणा तेरी जाण मे ?”

“जरूर । उसकी आखें नाचन लगी—“मला आज स ईं सरू हाया है । सो इतरी गरदी नी है । ठाणा तो आपण अठै ईं है” लेकिन मर जप टू डेट लिवास से उसे थोड़ी शका हुई—“आप रँवोगा अठ ?”

मेरे हा करत ही वह वाला—“आप भोजन जौमी नहवे म मैं जापका थला ठाण कर आवू ।” कहते हुए उमन मेर थैले की जोर हाथ बग्याया । मैंने उछालकर जपना हाथ आग किया—“नही, इसम कीमती सामान है । कैमरा बगैरा । इस यही पत्ता रहने दे ।”

दात्रवाली हम दाना की बातें सुन रही थी । मेरे थैले के लिय मना करत ही वह हथलिया पर सागरा धेपती धेपती ठहरी और वाली—‘बाजू साब, बेफिकर रँवो, यो नथकी वो ढावा है । ज गिराब की मूर्ई ईं गमजावें तो उसकी जूती और मेरा भाया । पराई माहगा की डिगली प यूक ईं दू ता मुझे फिट्ट बट दणा । मूपा हुआ तो साप भी नही राखै बाजू साब । आप बेफिकर रँवो ।’ वह उसी लय म आग बानी—‘छोरा र बाजू साब का थैला ठाण धर, चाल फुरती कर ।’

मुझे ढात्रवाली का इम तरह धाराप्रवाह बालना बहुत अच्छा लगा । मैं एक बार थोना हमा और वापस खाना खान लग गया । छोर न मरा थला अपन बंधे पर लटकाया जोर चाड़ी-सी देर म ही वह कही ठाण रग्य आया ।

मैंन खाना खाकर बुल्ली की और हाथ धान के बाण खान क पम दन क लिए जेठ म हाथ डाला कि वह बोली—‘ अभी नहीं बाजू साब । सारा हिमाव जान बघत करत जाणा । ’ कहती हुई वह छारे की आर उमुख हुई—“बाजू साब का रेगट करण की जगा बता क आ ।

मैं छोर क साथ हा लिया । ढाब क पिछवाढे छाटा-नी बारी म स हातर यह

एक ओरडी थी, जिसे फिल्मी नायक नायिकाओं के कलेंडरा से सजा कर नयी फैशन देने की कोशिश की गई थी। एक ओर माचा बिछा था जिस पर साफ-सुथरे बिस्तर लग था। छोरा अपनी मिर्जामिजी आखा को टमकारता हुआ बाला—
 “साब, शहर की होटल जैसा ठाट तो यहा नी है पण ” वह आग भी कुछ कहना चाहता था लेकिन—“बखत पर जा है सो ठीक है।” कहते हुए मैंने उसे बीच में ही टोक दिया—“क्या नाम है तेरा ?”

“कनियी।” उसने तुरंत उत्तर दिया। मुझे कनैया के कनियकरण पर हसी आ गई। वह बोला—“पाणी का जग घर दिया है। और किणी चीज की जरूरत पडे तो मेर का हला पाड लणा।” कहकर वह आरडी से बाहर निकल गया। मैं, जब तक खासा थक चुका था और रात भी हो चुकी थी। सो नीद बराबर थपकिया देन लगी थी। मैंने पट उतारकर तह करके तकिय के नीचे रखी और थंने से निवालकर तहमद बाधी। फिर इधर उधर नजर फेंकी। आरडी में तार खींचकर बोड पर बल्ब लगाया था। उसी पर जीरो का बल्ब भी जल रहा था और जरूरत पडे तो स्टूल पर टेबुल पया भी रखा था। लेकिन ठंड थी और मुझे इसकी आवश्यकता महसूस नहीं हुई। मैं किवाट भिटाकर लाइट ऑफ की और सा गया।

पलक बस भारी हुई ही थी कि ओरडी के किवाडा पर ठन-ठन की धीमी सी दस्तक सुनाई दी। मैंने नीद की थपकियो को एक ओर धकेलत हुए पूछा—
 ‘कौन ?’

“मैं हू बाबू साब कनियी।”

‘किवाड यू ही भेडे हुव है। धकेल कर जा जा।’

“साब।” वह बाहर से ही फुसफुमाया—“साबजी लाया हू जापने वो हुकम दिया था नी वा अडा।” अंतिम शब्द उसने बहुत ही दबाकर बोला था।

“अडा ?” मैं अचम्भे में था कि इतने में ओरडी के किवाड धीरे न चररडड ड करते हुए खुले जीरो बल्ब के प्रकाश में मैं देखा मैं साफ-साफ देख रहा था एक सुंदर ग्रामीण बाला मुस्कराती हुई अंदर घुमी और जीर उसने धीरे से किवाट भिटाकर कुडी प्यटा दी।

लच बाँक्स

प्रमिला शर्मा

राजेश त्रिपाठी न बच्चे क लच बाँक्स पर पची लगाई और मुड रहे थे कि एक अपरिचित युवती न उहें रागा—

“एक मिनट, क्या आपका पन देंगे ?”

राजेश न काट की जेस स पन नियाल कर युवती के हाथ म दे दिया । युवती लच बाँक्स पर काइ नाम लिख रही थी और राजेश की आखें विस्मय से युवती को ऊपर म नीचे तक देखकर नजरें घुमाकर एकवारगी डबडबाने को उचत हुई ।

वेशभूषा से स्पष्ट झलक रहा था कि यह युवती विधवा है । खाली-खाली रोमल कलाइया, एकदम सफेद माडी म लिपटी उसकी सुपुष्ट देह और लावण्यमय निर्विकार भाव स अभिभूति चेहरा जोर विदिया विहीन भाल की सपाट बयानी इस धारणा की पुरजार् पुष्टि कर रही थी ।

युवती का पन लौटाना, स्नूल की आधी छट्टी की घटी का बजना और खिल खिलात बच्चा का शोर शरावा इम कदर फला कि राजेश त्रिपाठी के मस्तिष्क म काध रही विचार शृंखलाजा के तार यकायक जाने कही खो गय ।

राग और सध्या भी अपने अपने लच बाँक्स उठाये एक तरफ चल दिये । यू तो कक्षा मे पढन वाल बच्चा म मेल-जोल हाता ही है पर भूरी आखा वाली सध्या त्रिपाठी जोर वाचाल स्वभाव के राग अग्रवाल मे प्रगाढ मत्री दोस्ती का एक उदा हरण है । कक्षा म पढत हुए दोनो न जान कब मिले और धीरे धीरे उनका मिलना अटूट दास्ती म बदल गया ।

अब दोनो लच एक साथ करते, किताबो का आदान प्रदान करत और दुनिया जहान की बातें करत ।

लच बाक्स का ढक्कन हटात ही राग उछल पडा “ओह, जाज तो मम्मी न गाजर का हलुआ भेजा है ।’

सध्या न लच बाक्स खोला और वही रोजमर्रा वाली आलू की सब्जी और

बदमूरत पराठा देखकर उन्माद हो गई।

राग ने कहा—“क्या सोच रही हा, सो यह हनुआ खाओ। बंभे में उतना सारा मैं थोड़े ही खा सकूंगा।”

सध्या ने प्रत्युत्तर दिया—“रोज रोज तुम्हारा लच बाग़ चट कर जा। यह क्या अच्छी बात है।”

“दखो हम दोनों दाम्पत्य हैं न, तो दोस्ता क वी परहज घाडे ही होता है।”

“राग, तुम्हारे लच बाँक्स में तरह-तरह की चीजें आती हैं जा तुम्हारी मम्मी बना कर भेजती हैं और मुझे तो रोज ही यह उबाऊ सब्जी खानी पड़ती है क्याकि कहते हैं मरी मम्मी भगवान के घर चली गई है। अब मैं उन्हें जानती तक नहीं पापा बेचार कहा तब मेरा म्याल रगें, उन्हें नौकरों पर भी तो जाना पड़ता है। एक नौकर है जो घर का मारा काम दखता है। यह तुम्हारा लच बाँक्स मुझे खाने न मिलता ता पता भी न चलता कि दुनिया में खाने की ढेर सारी अच्छी अच्छी चीजें हैं।”

यह कहते-कहते सध्या रभासी हो गई। तब राग ने उसे धीरे-धीरे बघाने हुए समझाया—“बस पगली, अच्छे बच्चे वही रोते हैं, तुम्हारे पापा कितना ख्याल रखते हैं और तुम्हारी मम्मी बहुत अच्छी होगी तभी तो भगवान के घर चली गई है।”

“और मुनो, तुम फिर न करो, जो भी खाने की चीज मुझे बता दिया करो। मरी मम्मी मान बत रोज रात को यह पूछती है—‘मुन्न, कल लच बाँक्स में क्या भेजू।’

दोनों बच्चे खाने में व्यस्त हो गये फिर गिम्स समाप्त होने की घटी बज गई तो सब बच्चे अपनी कक्षाओं में लौट गये।

दूसरे दिन सध्या का नया बस्ता देखकर राग उत्सुकतावश पूछ बैठा—

“यह बस्ता कौन-सी दूकान से खरीदा?”

और सध्या प्रसन्न होकर बताने लगी “यह बस्ता तो मेरे पापा दिल्ली से लाये हैं। टूर में जाते ही रहते हैं, मेरे लिए कोई-न-कोई नई चीज ल ही आते हैं। इस बार तो ढेर सारी चीजें लाये हैं—चाबी वाले खिलौने, कपडे आदि।”

“राग, तुम मेरे घर आना, मैं तुम्हें यह सब चीजें दिखलाऊंगी।”

राग ने कहा “नहीं, वही तुम्हारे पापा मुझ में नाराज होकर बात भी न करें कि मैं तुम्हारे खिलौने कहीं तोड़ दूंगा।”

“नहीं राग, मेरे पापा तो बहुत अच्छे हैं। मैंने तुम्हारे बारे में उन्हें बताया है और कहा है कि पापा, आप ढेर सारी चीजें तो लाते हो, पर खाने की चीजें तो

मुझे राग के लच बाक्स से ही मिलती है।”

दोनों बच्चे रिसस की छट्टी में अपना लच बाँक्स लेन जा रहे थे कि लौटते हुए उह अपन मम्मी पापा दिखे। बच्चा ने हाथ हिलाकर उह 'टा-टा' किया।

“देखो राग, वो जो नील सूट में थे वही तो ग्रेट पापा ह।”

“कितना अच्छे है” और राग बताने लगा “वा सफेद साडी में जो थी न, वही ता मेरी मम्मी है।”

सध्या ने पूछा—“तुम्हारी मम्मी सफेद कपड़े ही क्यों पहनती हैं।”

“राग वो बताती है पापा नहीं है इसलिए उह वैसे ही कपड़े पहनने पडत है। रोज पापा की तस्वीर पर फूलों का हार चढाती है फिर भी पापा आज तक लौटकर नहीं जाय।”

“सध्या क्या बताऊ यही तो मर पर की कहानी है। मेर पापा मेरी मम्मी की तस्वीर पर फूल चढाते ह पर एक बार भी आकर उहोने मुझसे प्यार नहीं किया।”

लच बाक्स खोलने से पहले सध्या ने राग को एक बडिया सा पत्र दिया “लो, यह पत्र तुम्हारे लिए बार्डरू है।” राग उछल पडा। सध्या बताती जा रही थी कि मैंने पापा से कह दिया है कि जहा भी जाए मेरे दोस्त राग के लिए भी कुछ न कुछ लाए।

“बेटी, नीकर बता रहा था। आजकल तुम्हारा लच बाक्स वैसे ही आता है।

“छी पापा, मैं तो हाथ तक नहीं लगाती, वो मेरा दोस्त है ना राग, उसकी मम्मी एसी-एसी चीजें बनाकर भेजती है कि बस, खाने में मजा जा जाता है।”

“तब तो राग खुद भखा रह जाता होगा।

‘नहीं उसने बता दिया है कि मेरी मम्मी नहीं है तभी तो राग की मम्मी डबल खाना भेजती है।’

‘क्या करते है राग के पिता’

सध्या हसासी हा जाती है “वो इस दुनिया में नहीं है। लच बाक्स देन वह खुद ही आती है।”

राजेश त्रिपाठी के दिमाग में एक चित्र घूम गया।

राग को उसकी मम्मी कहानी सुना रही थी और बता रही थी कि अच्छे दोस्त कैसे होते हैं।

राग ने जेब में पत्र निकाल कर दिखाते हुए कहा “मम्मी, मेरी दोस्त सध्या के पापा कितने अच्छे है मेरे लिए भी यह अच्छा सा पत्र लाये हैं।”

अगले दिन लच बाक्स देने आय राजेश त्रिपाठी ने पूछा “मेरी बच्ची के दोस्त राग की मम्मी आप ही तो नहीं है।”

और उस महिला ने स्वीकृति में सिर हिलाया।

लच के बन्त सध्या न राग म कहा "क्या तुम्हारी मम्मी और तुम हमारे घर आकर नहीं रह सकते हो?"

'पर यह कम हो सनता है?"

"क्यो नहीं हो सकता, तुम्हार पापा नहीं है और मरी मम्मी नहीं है।

"पर मुश्किल यह है कि उनको कहे कसे और एक चक्कर यह भी ता है कि तुम त्रिपाठी लगात हा और हम अग्रवाल।"

"है तो क्या हुआ, हम दानो एक-दूसरे के लच वाक्स का खाना खात है फिर भी उ हाने कभी हमका टोका नहीं।"

"देखा राग, तुम अपनी मम्मी से बात करना, मैं अपन पापा से पूछूगी। हम उह कहंग कि आपको हमसे बहुत प्यार है और आप लोग यह भी कहत हो कि बच्चो म भगवान होता है तो फिर एक बात हमारी मान लीजिए।'

"पर, सधयो वो तो शादी-वादी कुछ होती है।"

सध्या न कहा— "हम नहीं जानत वा क्या है। हम तो इतना ही पता है कि तुम्हे पापा चाहिए और गुझे मम्मी।"

लच वाक्म खाली हो रहा था और दोनो बच्चे एक-दूसर का हिम्मत दिला रह थ "डरना मत, यह बात जरूर करना क्याकि हमारे अदर का भगवान बोल रहा है " और रिसस पूरी होन की घटी वज गई।

□

सम्पर्क-सूत्र

- 1 सावित्री परमार, पालीवाल भवन, घजाने वाला का रास्ता, चादपोल, जयपुर
- 2 माधव नागदा, रा०उ०मा० विद्यालय, राजसमद (उदयपुर)
- 3 शोताशु भारद्वाज 138 विद्या विहार, पिलानी (झुझुनु)
- 4 मुरलीधर शर्मा 'विमल', प्र०अ०, रा०मा०वि० कावडा (वीकानर)
- 5 अरनी रावट स, पोस्ट आफिस के सामने, भीमगज मडी, कोटा 2
- 6 राधाशिशन चादवानी, वाम्पे मडिकल स्टार के पीछे, कोटगट, वीकानेर
- 7 पुष्पलता कश्यप, रा०वा०मा० विद्यालय, महामन्दिर, जोधपुर
- 8 मुदशन राघव, I डी/107 जयनागयण व्यास कालानी, बीकानेर
- 9 रूपा पारीज, जगमन का कुआ, वीकानर
- 10 सत्य शकुन, हनुमान हत्या, वीकानर
- 11 दीनदयाल शर्मा, पुस्तकाध्यक्ष, रा०मा० विद्यालय, हनुमानगढ सगम
- 12 गोपाल प्रसाद मुदगल सी-65 रनजीत नगर, भरतपुर
- 13 सलीम खा फरीद, हमामपुर, सीकर
- 14 श्याममनोहर व्यास, 15 पचवटी, उदयपुर
- 15 रामजुमार जोझा, बुद्धि विहार, नोहर (श्रीगगनगर)
- 16 कमर मेवाडी, चादपोल, काकरोली (उदयपुर)
- 17 श्यामसुन्दर तिवाडी, कोशीथल (भीलवाडा)
- 18 जगदीश प्रसाद सैनी प्र०अ०, रा०मा०वि० प्रीतमपुरी (सीकर)
- 19 नदलाल परमरामाणी, व्या०, रा०उ०मा०वि० भवराना (उदयपुर)
- 20 कमलेश शर्मा, व्या०, रा०वा०उ०मा०वि०, बारा (कोटा)
- 21 पूनाराम कमाणी, अध्या०, प०स० श्रीडूगरगढ (चूर)
- 22 धनराज पवार, प्र० अ०, राउप्रावि, दावा बाया बालोतरा, बाडमेर
- 23 रामनिवास शर्मा, प्रिमीपल, गिरधरदास मूधडा बाल भारती, वीकानेर
- 24 दशरथ कुमार शर्मा, प्र० अ० रामावि, पचेवर, टाक
- 25 रवि पुरोहित, द्वारा श्री भीष्मदेव पुरोहित, श्री डूगरगढ-331803
- 26 श्यामसुन्दर भारती, फतेहसागर, जोधपुर
- 27 प्रमिला शर्मा, अ०, राप्रावि, पडौली राठौड, बासवाडा





चित्रा मुद्गल

जन्म	10 दिसम्बर, 1944, मद्रास
शिक्षा	फाइन आर्ट्स
कहानी सग्रह	'जहर ठहरा हुआ', 'लाक्षागृह', 'अपनी वापसी', 'इस हमाम में' [1987 का 'साहित्यिक कृति पुरस्कार' हिन्दी अकादमी दिल्ली], 'प्यारह लम्बी कहानियाँ' [1987 का राजा राधिका-रमण प्रसाद सिंह पुरस्कार-राजभाषा विभाग बिहार], 'मेरी रचना प्रनिया', 'जगदवा बाबू गाव आ रह हैं' [शीघ्र प्रकाश्य]
उपन्यास	'एक जमीन अपनी'
बालकथा सग्रह	'सबक', 'जगल का राज' पुरस्कृत [हिन्दी अकादमी, दिल्ली]
विविध	'तहखाना में बन्द आइना के अक्स'
संपादन	

- (1) असफल दाम्पत्य की कहानियाँ
- (2) टूटते परिवारों की कहानियाँ
- (3) दूसरी औरत की कहानी
- (4) पुरस्कृत कहानियाँ

दूरदर्शन के लिए टेलीफिल्म वारिस का निर्माण।